

नमो नमो निम्मलदंसणस्स  
बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः  
पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नमः

आगम-१

# आचार आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[ M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि ]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प- १



४५ आगम वर्गीकरण					
क्रम	आगम का नाम	सूत्र	क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१	२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२	२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३	२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४	२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५	२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६	३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७	३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८	३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९	३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्रव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०	३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११	३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१	३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्रिय	उपांगसूत्र-२	३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३	३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४	३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५	३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६	४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७	४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८	४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९	४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०	४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११	४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२	४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतुःशरण	पयन्नासूत्र-१	---	-----	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य					
आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्रम	साहित्य नाम	बुकस	क्रम	साहित्य नाम	बुकस
1	<b>मूल आगम साहित्य:-</b>	<b>147</b>	6	<b>आगम अन्य साहित्य:-</b>	<b>10</b>
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- आगम कथानुयोग	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	<b>आगम अनुवाद साहित्य:-</b>	<b>165</b>		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- आगमसूत्र गुजराती अनुवाद	[47]		<b>आगम साहित्य- कुल पुस्तक</b>	<b>516</b>
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- आगमसूत्र सटीक गुजराती अनुवाद	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		<b>अन्य साहित्य:-</b>	
3	<b>आगम विवेचन साहित्य:-</b>	<b>171</b>	1	तत्त्वार्थसाहित्य-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	सूत्रार्थसाहित्य-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	व्याकरण साहित्य-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	व्याख्यान साहित्य-	04
	-4- आगम चूर्ण साहित्य	[09]	5	जिनभक्ति साहित्य-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	विधि साहित्य-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	आराधना साहित्य	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	परिचय साहित्य-	04
4	<b>आगम कोष साहित्य:-</b>	<b>14</b>	9	पूजन साहित्य-	02
	-1- आगम सहकोसो	[04]	10	तीर्थकर संक्षिप्त दर्शन	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	प्रकीर्ण साहित्य-	05
	-3- आगम-सागर-कोषः	[05]	12	दीपरत्नसागरना लघुशोधनिबंध	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		<b>आगम सिवायनं साहित्य कुल पुस्तक</b>	<b>85</b>
5	<b>आगम अनुक्रम साहित्य:-</b>	<b>09</b>			
	-1- आगम विषयानुक्रम- (मूल)	02		<b>1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)</b>	<b>516</b>
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		<b>2-आगमेतर साहित्य (कुल पुस्तक)</b>	<b>085</b>
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		<b>दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन</b>	<b>601</b>

## [१] आचार अंगसूत्र-१- हिन्दी अनुवाद

### श्रुतस्कन्ध-१

#### अध्ययन-१ - शस्त्रपरिज्ञा

#### उद्देशक-१

##### सूत्र - १,२

आयुष्मन् ! मैंने सूना है । उन भगवान (महावीर स्वामी) ने यह कहा है- ..... संसारमें कुछ प्राणियों को यह संज्ञा (ज्ञान) नहीं होती । जैसे - 'मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से आया हूँ, उत्तर दिशा से आया हूँ, ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ, अधो दिशा से आया हूँ अथवा विदिशा से आया हूँ ।

##### सूत्र - ३

इसी प्रकार कुछ प्राणियों को यह ज्ञान नहीं होता कि मेरी आत्मा औपपातिक है अथवा नहीं ? मैं पूर्व जन्म में कौन था ? मैं यहाँ से च्युत होकर अगले जन्म में क्या होऊंगा ?

##### सूत्र - ४

कोई प्राणी अपनी स्वमति, स्वबुद्धि से अथवा प्रत्यक्ष ज्ञानियों के वचन से, अथवा उपदेश सूनकर यह जान लेता है, कि मैं पूर्वदिशा, या दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व अथवा अन्य किसी दिशा या विदिशा से आया हूँ । कुछ प्राणियों को यह भी ज्ञात होता है - मेरी आत्मा भवान्तर में अनुसंचरण करने वाली है, जो इन दिशाओं, अनुदिशाओं में कर्मानुसार परिभ्रमण करती है । जो इन सब दिशाओं और विदिशाओं में गमनागमन करती है, वही मैं (आत्मा) हूँ ।

##### सूत्र - ५

(जो उस गमनागमन करनेवाली परिणामी नित्य आत्मा जान लेता है) वही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी एवं क्रियावादी है ।

##### सूत्र - ६, ७

(वह आत्मवादी मनुष्य यह जानता/मानता है कि)-मैंने क्रिया की थी । मैं क्रिया करवाता हूँ । मैं क्रिया करने वाले का भी अनुमोदन करूँगा । लोक-संसार में ये सब क्रियाएँ हैं, अतः ये सब जानने तथा त्यागने योग्य हैं ।

##### सूत्र - ८-१०

यह पुरुष, जो अपरिज्ञातकर्मा है वह इन दिशाओं व अनुदिशाओं में अनुसंचरण करता है । अपने कृत-कर्मा के साथ सब दिशाओं/अनुदिशाओं में जाता है । अनेक प्रकार की जीव-योनियों को प्राप्त होता है । ..... वहाँ विविध प्रकार के स्पर्शों का अनुभव करता है । ..... इस सम्बन्धमें भगवान् ने परिज्ञा विवेक का उपदेश किया है ।

##### सूत्र - ११

अपने इस जीवन के लिए, प्रशंसा व यश के लिए, सम्मान की प्राप्ति के लिए, पूजा आदि पाने के लिए, जन्म-सन्तान आदि के जन्म पर, अथवा स्वयं के जन्म निमित्त से, मरण-सम्बन्धी कारणों व प्रसंगों पर, मुक्ति के प्रेरणा या लालसा से, दुःख के प्रतीकार हेतु-रोग, आतंक, उपद्रव आदि मिटाने के लिए ।

##### सूत्र - १२

लोक में (उक्त हेतुओं से होने वाले) ये सब कर्मसमारंभ के हेतु जानने योग्य और त्यागने योग्य होते हैं ।

##### सूत्र - १३

लोक में ये जो कर्मसमारंभ के हेतु हैं, इन्हें जो जान लेता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है । ऐसा मैं कहता हूँ

## अध्ययन-१ – उद्देशक-२

## सूत्र - १४

जो मनुष्य आतै है, वह ज्ञान दर्शन से परिजीर्ण रहता है। क्योंकि वह अज्ञानी जो है। अज्ञानी मनुष्य इस लोक में व्यथा-पीड़ा का अनुभव करता है। काम, भोग व सुख के लिए आतुर बने प्राणी स्थान-स्थान पर पृथ्वीकाय आदि प्राणियों को परिताप देते रहते हैं। यह तू देख ! समझ !

## सूत्र - १५

पृथ्वीकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीर में आश्रित रहते हैं। तू देख ! आत्मसाधक, लज्जमान है - (हिंसा से स्वयं को संकोच करता हुआ संयममय जीवन जीता है।) कुछ साधु वेषधारी 'हम गृहत्यागी हैं' ऐसा कथन करते हुए भी वे नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वीसम्बन्धी हिंसा-क्रिया में लगकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते हैं तथा पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के साथ तदारित अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

## सूत्र - १६

इस विषय में भगवान महावीर स्वामी ने परिज्ञा/विवेक का उपदेश किया है। कोई व्यक्ति इस जीवन के लिए, प्रशंसा-सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण और मुक्ति के लिए, दुःख का प्रतीकार करने के लिए, स्वयं पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, तथा हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है।

## सूत्र - १७

वह (हिंसावृत्ति) उसके अहित के लिए होती है। उसकी अबोधि के लिए होती है। वह साधक हिंसा के उक्त दुष्परिणामों को अच्छी तरह समझता हुआ, संयम-साधना में तत्पर हो जाता है। कुछ मनुष्यों के या अनगार मुनियों के समीप धर्म सूनकर यह ज्ञात होता है कि, 'यह जीव हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है और यही नरक है।'

(फिर भी) जो मनुष्य सुख आदि के लिए जीवहिंसा में आसक्त होता है, वह नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी - सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में संलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है और तब वह न केवल पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है, अपितु अन्य नाना प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

मैं कहता हूँ-जैसे कोई किसी के पैर में, टखने पर, घूटने, उरु, कटि, नाभि, उदर, पसली पर, पीठ, छाती, हृदय, स्तन, कंधे, भूजा, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, ठुड़ी, होठ, दाँत, जीभ, तालु, गले, कपोल, कान, नाक, आँख, भौंहे, ललाट और शिर का भेदन छेदन करे, (तब उसे जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा पृथ्वीकायिक जीवों को होती है।)

जैसे कोई किसी को गहरी चोट मारकर, मूर्च्छित कर दे, या प्राण-वियोजन ही कर दे, उसे जैसी कष्टानुभूति होती है, वैसी ही पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना समझना चाहिए।

जो यहाँ (लोकमें) पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्र समारंभ करता है, वह वास्तव में इन आरंभों से अनजान है।

## सूत्र - १८

जो पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्र का समारंभ नहीं करता, वह वास्तव में इन आरंभों का ज्ञाता है। यह (पृथ्वीकायिक जीवों की अव्यक्त वेदना) जानकर बुद्धिमान मनुष्य न स्वयं पृथ्वीकाय का समारंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय का समारंभ करवाए और न उसका समारंभ करने वाले का अनुमोदन करे। जिसने पृथ्वीकाय सम्बन्धी समारंभ को जान लिया वही परिज्ञातकर्मा (हिंसा का त्यागी) मुनि होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-३

## सूत्र - १९, २०

मैं कहता हूँ - जिस आचरण से अनगार होता है। जो ऋजुकृत् हो, नियाग-प्रतिपन्न-मोक्ष मार्ग के प्रति एकनिष्ठ होकर चलता हो, कपट रहित हो।

जिस श्रद्धा के साथ संयम-पथ पर कदम बढ़ाया है, उसी श्रद्धा के साथ संयम का पालन करे। विस्रोत-सिका-अर्थात् लक्ष्य के प्रति शंका व चित्त की चंचलता के प्रवाहमें न बहें, शंका का त्याग कर दे।

**सूत्र - २१**

वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत-अर्थात् समर्पित होते हैं ।

**सूत्र - २२**

मुनि की आज्ञा से लोक को-अर्थात् अप्काय के जीवों का स्वरूप जानकर उन्हें अकुतोभय बना दे । संयत रहे

**सूत्र - २३**

मैं कहता हूँ-मुनि स्वयं, लोक-अप्कायिक जीवों के अस्तित्व का अपलाप न करे । न अपनी आत्मा का अपलाप करे । जो लोक का अपलाप करता है, वह वास्तव में अपना ही अपलाप करता है । जो अपना अपलाप करता है, वह लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है ।

**सूत्र - २४**

तू देख ! सच्चे साधक हिंसा (अप्काय की) करने में लज्जा अनुभव करते हैं । और उनको भी देख, जो अपने आपको 'अनगार' घोषित करते हैं, वे विविध प्रकार के शस्त्रों द्वारा जल सम्बन्धी आरंभ-समारंभ करते हुए जल-काय के जीवों की हिंसा करते हैं । और साथ ही तदाश्रित अन्य अनेक जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा का निरूपण किया है । अपने इस जीवन के लिए, प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण और मोक्ष के लिए दुःखों का प्रतिकार करने के लिए कोई स्वयं अप्काय की हिंसा करता है, दूसरों से भी अप्काय की हिंसा करवाता है और अप्काय की हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है । यह हिंसा, उसके अहित के लिए होती है तथा अबोधि का कारण बनती है ।

वह साधक यह समझते हुए संयम-साधन में तत्पर हो जाता है ।

भगवान से या अनगार मुनियों से सूनकर कुछ मनुष्यों को यह परिज्ञात हो जाता है, जैसे-यह अप्कायिक जीवों की हिंसा ग्रन्थि है, मोह है, साक्षात् मृत्यु है, नरक है ।

फिर भी मनुष्य इसमें आसक्त होता है । जो कि वह तरह-तरह के शस्त्रों से उदककाय की हिंसा-क्रिया में संलग्न होकर अप्कायिक जीवों की हिंसा करता है । वह केवल अप्कायिक जीवों की ही नहीं, किन्तु उसके आश्रित अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है ।

मैं कहता हूँ-जल के आश्रित अनेक प्रकार के जीव रहते हैं ।

**सूत्र - २५**

हे मनुष्य ! इस अनगार-धर्म में, जल को 'जीव' कहा है । जलकाय के जो शस्त्र हैं, उन पर चिन्तन करके देख

**सूत्र - २६**

भगवान ने जलकाय के अनेक शस्त्र बताए हैं ।

**सूत्र - २७**

जलकाय की हिंसा, सिर्फ हिंसा ही नहीं, वह अदत्तादान भी है ।

**सूत्र - २८**

हमें कल्पता है । अपने सिद्धान्त के अनुसार हम पीने के लिए जल ले सकते हैं । हम पीने तथा नहाने के लिए भी जल का प्रयोग कर सकते हैं ।

**सूत्र - २९**

इस तरह अपने शास्त्र का प्रमाण देकर या नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा जलकाय के जीवों की हिंसा करते हैं।

**सूत्र - ३०**

अपने शास्त्र का प्रमाण देकर जलकाय ही हिंसा करने वाले साधु, हिंसा के पाप से विरत नहीं हो सकते ।

**सूत्र - ३१**

जो यहाँ, शस्त्र-प्रयोग कर जलकाय के जीवों का समारम्भ करता है, वह इन आरंभों से अनभिज्ञ है । जो

जलकायिक जीवों पर शस्त्र-प्रयोग नहीं करता, वह आरंभों का ज्ञाता है, वह हिंसा-दोष से मुक्त होता है। बुद्धिमान मनुष्य यह जानकर स्वयं जलकाय का समारंभ न करे, दूसरों से न करवाए, उसका समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे। जिसको जल-सम्बन्धी समारंभ का ज्ञान होता है, वही परिज्ञातकर्मा (मुनि) होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

### अध्ययन-१ - उद्देशक-४

#### सूत्र - ३२

मैं कहता हूँ-वह कभी भी स्वयं लोक (अग्निकाय) के अस्तित्व का, अपलाप न करे। न अपनी आत्मा के अस्तित्व का अपलाप करे। क्योंकि जो लोक (अग्निकाय) का अपलाप करता है, वह अपने आप का अपलाप करता है। जो अपने आप का अपलाप करता है वह लोक का अपलाप करता है।

#### सूत्र - ३३

जो दीर्घलोकशस्त्र (अग्निकाय) के स्वरूप को जानता है, वह अशस्त्र (संयम) का स्वरूप भी जानता है। जो संयम का स्वरूप जानता है वह दीर्घलोक-शस्त्र का स्वरूप भी जानता है।

#### सूत्र - ३४

वीरों ने, ज्ञान-दर्शनावरण आदि कर्मों को विजय कर यह (संयम का पूर्ण स्वरूप) देखा है। वे वीर संयमी, सदा यतनाशील और सदा अप्रमत्त रहने वाले थे।

#### सूत्र - ३५, ३६

जो प्रमत्त है, गुणों का अर्थी है, वह हिंसक कहलाता है। ..... यह जानकर मेधावी पुरुष (संकल्प करे) - अब मैं वह (हिंसा) नहीं करूँगा जो मैंने प्रमाद के वश होकर पहले किया था।

#### सूत्र - ३७

तू देख ! संयमी पुरुष जीव-हिंसा में लज्जा का अनुभव करते हैं। और उनको भी देख, जो हम अनगार हैं यह कहते हुए भी अनेक प्रकार के शस्त्रों से अग्निकाय की हिंसा करते हैं। अग्निकाय के जीवों की हिंसा करते हुए अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा का निरूपण किया है। कुछ मनुष्य इस जीवन के लिए प्रशंसा, सन्मान, पूजा के लिए, जन्म-मरण और मोक्ष के निमित्त, तथा दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, स्वयं अग्निकाय का समारंभ करते हैं। दूसरों से अग्निकाय का समारंभ करवाते हैं। अग्निकाय का समारंभ करने वालों का अनुमोदन करते हैं।

यह (हिंसा) उनके अहित के लिए होती है। यह उनकी अबोधि के लिए होती है।

वह उसे भली भाँति समझे और संयम-साधना में तत्पर हो जाए। तीर्थकर आदि प्रत्यक्ष ज्ञानी अथवा श्रुत-ज्ञानी मुनियों के निकट से सूनकर कुछ मनुष्यों को यह ज्ञात हो जाता है कि जीव-हिंसा-ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।

फिर भी मनुष्य जीवन, मान, वंदना आदि हेतुओं में आसक्त हुए विविध प्रकार के शस्त्रों से अग्निकाय का समारंभ करते हैं। और अग्निकाय का समारंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणों की भी हिंसा करते हैं।

#### सूत्र - ३८

मैं कहता हूँ - बहुत से प्राणी-पृथ्वी, तृण, पत्र, काष्ठ, गोबर और कूड़ा-कचरा आदि के आश्रित रहते हैं। कुछ सँपातिम प्राणी होते हैं जो उड़ते-उड़ते नीचे गिर जाते हैं। ये प्राणी अग्नि का स्पर्श पाकर संघात को प्राप्त होते हैं। शरीर का संघात होने पर अग्नि की उष्मा से मूर्च्छित हो जाते हैं। बाद में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

#### सूत्र - ३९

जो अग्निकाय के जीवों पर शस्त्र-प्रयोग करता है, वह इन आरंभ-समारंभ क्रियाओं के कटु परिणामों से अपरिज्ञात होता है। जो अग्निकाय पर शस्त्र-समारंभ नहीं करता है, वास्तव में वह आरंभ का ज्ञाता हो जाता है। जिसने यह अग्नि-कर्म-समारंभ भली भाँति समझ लिया है, वही मुनि है, वही परिज्ञात-कर्मा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-५

## सूत्र - ४०

मैं संयम अंगीकार करके वह हिंसा नहीं करूँगा। बुद्धिमान संयम में स्थिर होकर मनन करे और प्रत्येक जीव अभय चाहता है। यह जानकर (हिंसा न करे) जो हिंसा नहीं करता, वही व्रती है। इस अर्हत्-शासन में जो व्रती है, वह अनगार है।

## सूत्र - ४१

जो गुण (विषय) है, वह आवर्त/संसार है। जो आवर्त है वह गुण है।

## सूत्र - ४२, ४३

ऊंचे, नीचे, तीरछे, सामने देखने वाला रूपों को देखता है। सूनने वाला शब्दों को सूनता है। ऊंचे, नीचे, तीरछे, विद्यमान वस्तुओं में आसक्ति करने वाला, रूपों में मूर्च्छित होता है, शब्दों में मूर्च्छित होता है। यह (आसक्ति) ही संसार है। जो पुरुष यहाँ (विषयों में) अगुप्त है। इन्द्रिय एवं मन से असंयत है, वह आज्ञा-धर्म-शासन के बाहर है।

## सूत्र - ४४, ४५

जो बार-बार विषयों का आस्वाद करता है, उनका भोग-उपभोग करता है, वह वक्रसमाचार अर्थात् असंयममय जीवनवाला है। ..... वह प्रमत्त है तथा गृहत्यागी कहलाते हुए भी वास्तव में गृहवासी ही है।

## सूत्र - ४६

तू देख ! ज्ञानी हिंसा से लज्जित/विरत रहते हैं। 'हम गृहत्यागी हैं', यह कहते हुए भी कुछ लोग नाना प्रकार के शस्त्रों से, वनस्पतिकायिक जीवों का समारंभ करते हैं। वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए वे अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

इस विषयमें भगवान ने परिज्ञा की है - इस जीवन के लिए, प्रशंसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, वह स्वयं वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, करनेवाले का अनुमोदन करता है। यह उसके अहित के लिए होता है। उसकी अबोधि के लिए होता है।

यह समझता हुआ साधक संयम में स्थिर हो जाए। भगवान से या त्यागी अनगारों के समीप सूनकर उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है - यह (हिंसा) ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है। फिर भी मनुष्य इसमें आसक्त हुआ, नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पतिकाय का समारंभ करता है और वनस्पतिकाय का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

## सूत्र - ४७

मैं कहता हूँ - यह मनुष्य भी जन्म लेता है, यह वनस्पति भी जन्म लेती है। यह मनुष्य भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है। यह मनुष्य भी चेतना युक्त है, यह वनस्पति भी चेतना युक्त है। यह मनुष्य शरीर छिन्न होने पर म्लान हो जाता है। यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है। यह मनुष्य भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है। यह मनुष्य शरीर भी अनित्य है, यह वनस्पति शरीर भी अनित्य है। यह मनुष्य शरीर भी अशाश्वत है, यह वनस्पति शरीर भी अशाश्वत है। यह मनुष्य शरीर भी आहार से उपचित होता है, आहार के अभाव में अपचित होता है, यह वनस्पति का शरीर भी इसी प्रकार उपचित-अपचित होता है। यह मनुष्य शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है। यह वनस्पति शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

## सूत्र - ४८

जो वनस्पतिकायिक जीवों पर शस्त्र का समारंभ करता है, वह उन आरंभो/आरंभजन्य कटुफलों से अनजान रहता है। जो वनस्पतिकायिक जीवों पर शस्त्र का प्रयोग नहीं करता, उसके लिए आरंभ परिज्ञात है। यह जानकर मेधावी स्वयं वनस्पति का समारंभ न करे, न दूसरों से समारंभ करवाए और न समारंभ करने वालों का अनुमोदन करे जिसको यह वनस्पति सम्बन्धी समारंभ परिज्ञात होते हैं, वही परिज्ञातकर्मा (हिंसात्यागी) मुनि है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-६

## सूत्र - ४९, ५०

मैं कहता हूँ-ये सब त्रस प्राणी हैं, जैसे-अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक। यह संसार कहा जाता है। मंद तथा अज्ञानी जीव को यह संसार होता है।

मैं चिन्तन कर, सम्यक् प्रकार देखकर कहता हूँ-प्रत्येक प्राणी परिनिर्वाण चाहता है।

## सूत्र - ५१

सब प्राणियों, सब भूतों, सब जीवों और सब सत्त्वों को असाता और अपरिनिर्वाण ये महाभयंकर और दुःखदायी हैं। मैं ऐसा कहता हूँ। ये प्राणी दिशा और विदिशाओं में, सब ओर से भयभीत/त्रस्त रहते हैं।

## सूत्र - ५२

तू देख, विषय-सुखाभिलाषी आतुर मनुष्य स्थान-स्थान पर इन जीवों को परिताप देते रहते हैं।

त्रसकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीरों में आश्रित रहते हैं।

## सूत्र - ५३

तू देख ! संयमी साधक जीव हिंसा में लज्जा का अनुभव करते हैं और उनको भी देख, जो 'हम गृहत्यागी हैं' यह कहते हुए भी अनेक प्रकार के उपकरणों से त्रसकाय का समारंभ करते हैं। त्रसकाय की हिंसा करते हुए वे अन्य अनेक प्राणों की भी हिंसा करते हैं। इस विषय में भगवान ने परिज्ञा है।

कोई मनुष्य इस जीवन के लिए प्रशंसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म-मरण और मुक्ति के लिए, दुःख का प्रतीकार करने के लिए, स्वयं भी त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है तथा हिंसा करते हुए का अनुमोदन भी करता है। यह हिंसा उसके अहित के लिए होती है। अबोधि के लिए होती है।

वह संयमी, उस हिंसा को/हिंसा के कुपरिणामों को सम्यक् प्रकार से समझते हुए संयममें तत्पर हो जाए। भगवान से या गृहत्यागी श्रमणों के समीप सूनकर कुछ मनुष्य यह जान लेते हैं कि यह हिंसा ग्रन्थि है, मृत्यु है, मोह है, नरक है। फिर भी मनुष्य इस हिंसा में आसक्त होता है। वह नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकायिक जीवों का समारंभ करता है। त्रसकाय का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवों का भी समारंभ करता है।

## सूत्र - ५४

मैं कहता हूँ-कुछ मनुष्य अर्चा के लिए जीवहिंसा करते हैं। कुछ मनुष्य चर्म के लिए, माँस, रक्त, हृदय, पित्त, चर्बी, पंख, पूँछ, केश, सींग, विषाण, दाँत, दाढ़, नख, स्नायु, अस्थि और अस्थिमज्जा के लिए प्राणियों की हिंसा करते हैं। कुछ प्रयोजन-वश, कुछ निष्प्रयोजन ही जीवों का वध करते हैं। कुछ व्यक्ति (इन्होंने मेरे स्वजनादि की) हिंसा की, इस कारण हिंसा करते हैं। कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजन आदि की) हिंसा करता है, इस कारण से हिंसा करते हैं। कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजनादि की हिंसा करेगा) इस कारण हिंसा करते हैं।

## सूत्र - ५५

जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, वह इन आरंभ (आरंभजनित कुपरिणामों) से अनजान ही रहता है जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा नहीं करता है, वह इन आरंभों से सुपरिचित है। यह जानकर बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं त्रसकाय-शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से समारंभ न करवाए, समारंभ करने वालों का अनुमोदन भी न करे।

जिसने त्रसकाय-सम्बन्धी समारंभों (हिंसा के हेतुओं/उपकरणों/कुपरिणामों) को जान लिया, वही परिज्ञात कर्मा मुनि होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-७

## सूत्र - ५६

अतः वायुकायिक जीवों की दुगंछा करने में समर्थ होता है।

**सूत्र - ५७**

साधनाशील पुरुष हिंसा में आतंक देखता है, उसे अहित मानता है। जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को भी जानता है। जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है। इस तुला का अन्वेषण कर, चिन्तन कर।

**सूत्र - ५८**

इस (जिन शासन में) जो शान्ति प्राप्त-(कषाय जिनके उपशान्त हो गए हैं) और दयार्द्रहृदय वाले मुनि हैं, वे जीव-हिंसा करके जीना नहीं चाहते।

**सूत्र - ५९**

तू देख ! प्रत्येक संयमी पुरुष हिंसा में लज्जा का अनुभव करता है। उन्हें भी देख, जो 'हम गृहत्यागी हैं' यह कहते हुए विविध प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय का समारंभ करते हैं। वायुकाय-शस्त्र का समारंभ करते हुए अन्य अनेक प्राणियों की हिंसा करते हैं।

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा निरूपण किया है। कोई मनुष्य, इस जीवन के लिए, प्रशंसा, सन्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मोक्ष के लिए, दुःख का प्रतीकार करने के लिए स्वयं वायुकाय-शस्त्र का समारंभ करता है, दूसरों से वायुकाय का समारंभ करवाता है तथा समारंभ करने वालों का अनुमोदन करता है। वह हिंसा, उसके अहित के लिए होती है। वह हिंसा, उसकी अबोधि के लिए होती है।

वह अहिंसा-साधक, हिंसा को समझता हुआ संयम में सुस्थिर हो जाता है।

भगवान के या गृहत्यागी श्रमणों के समीप सूनकर उन्हें यह ज्ञात होता है कि यह हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है। फिर भी मनुष्य हिंसा में आसक्त हुआ, विविध प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय की हिंसा करता है। वायुकाय की हिंसा करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा करता है।

**सूत्र - ६०**

मैं कहता हूँ-संपातिम-प्राणी होते हैं। वे वायु से प्रताड़ित होकर नीचे गिर जाते हैं। वे प्राणी वायु का स्पर्श होने से सिकुड़ जाते हैं। जब वे वायु-स्पर्श से संघातित होते हैं, तब मूर्च्छित हो जाते हैं। जब वे जीव मूर्च्छा को प्राप्त होते हैं तो वहाँ मर भी जाते हैं। जो वहाँ वायुकायिक जीवों का समारंभ करता है, वह इन आरंभों से वास्तव में अनजान है।

जो वायुकायिक जीवों पर शस्त्र-समारंभ नहीं करता, वास्तव में उसने आरंभ को जान लिया है। यह जानकर बुद्धिमान मनुष्य स्वयं वायुकाय का समारंभ न करे। दूसरों से वायुकाय का समारंभ न करवाए। वायुकाय का समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे। जिसने वायुकाय के शस्त्र-समारंभ को जान लिया है, वही मुनि परिज्ञातकर्मा (हिंसा का त्यागी) है ऐसा मैं कहता हूँ।

**सूत्र - ६१**

तुम यहाँ जानो ! जो आचार में रमण नहीं करते, वे कर्मों से बंधे हुए हैं। वे आरंभ करते हुए भी स्वयं को संयमी बताते हैं अथवा दूसरों को विनय-संयम का उपदेश करते हैं। ये स्वच्छन्दचारी और विषयों में आसक्त होते हैं। वे आरंभ में आसक्त रहते हुए पुनः पुनः कर्म का संग करते हैं।

**सूत्र - ६२**

वह वसुमान् (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप धनयुक्त) सब प्रकार के विषयों पर प्रज्ञापूर्वक विचार करता है, अन्तःकरण से पापकर्म को अकरणीय जाने, तथा उस विषय में अन्वेषण भी न करे। यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वयं षट्-जीवनिकाय का समारंभ न करे। दूसरों से समारंभ न करवाए। समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे।

जिसने षट्-जीवनिकाय-शस्त्र का प्रयोग भलीभाँति समझ लिया, त्याग दिया है, वही परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-२ – लोकविजय****उद्देशक-१****सूत्र - ६३**

जो गुण (इन्द्रियविषय) हैं, वह (कषायरूप संसार का) मूल स्थान है। जो मूल स्थान है, वह गुण है। इस प्रकार विषयार्थी पुरुष, महान परिताप से प्रमत्त होकर, जीवन बीताता है। वह इस प्रकार मानता है, 'मेरी माता है, मेरा पिता है, मेरा भाई है, मेरी बहन है, मेरी पत्नी है, मेरा पुत्र है, मेरी पुत्री है, मेरी पुत्र-वधू है, मेरा सखा-स्वजन-सम्बन्धी-सहवासी है, मेरे विविध प्रचुर उपकरण, परिवर्तन, भोजन तथा वस्त्र है। इस प्रकार - मेरेपन में आसक्त हुआ पुरुष, प्रमत्त होकर उनके साथ निवास करता है।

वह प्रमत्त तथा आसक्त पुरुष रात-दिन परितप्त/चिन्ता एवं तृष्णा से आकुल रहता है। काल या अकाल में प्रयत्नशील रहता है, वह संयोग का अर्थी होकर, अर्थ का लोभी बनकर लूटपाट करने वाला बन जाता है। सहसाकारी-दुःसाहसी और बिना विचारे कार्य करने वाला हो जाता है। विविध प्रकार की आशाओं में उसका चित्त फँसा रहता है। वह बार-बार शस्त्र-प्रयोग करता है। संहारक बन जाता है।

इस संसार में कुछ-एक मनुष्यों का आयुष्य अल्प होता है। जैसे-

**सूत्र - ६४**

श्रोत्र-प्रज्ञान के परिहीन हो जाने पर, इसी प्रकार चक्षु-प्रज्ञान के, घ्राण-प्रज्ञान के, रस-प्रज्ञान के और स्पर्श प्रज्ञान के परिहीन होने पर (वह अल्प आयु में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।) वय-अवस्था को तेजी से जाते हुए देखकर वह चिंताग्रस्त हो जाता है और फिर वह एकदा मूढ़भाव को प्राप्त हो जाता है।

**सूत्र - ६५**

वह जिनके साथ रहता है, वे स्वजन उसका तिरस्कार करने लगते हैं, उसे कटु व अपमानजनक वचन बोलते हैं। बाद में वह भी उन स्वजनों की निंदा करने लगता है। हे पुरुष ! वे स्वजन तेरी रक्षा करने में या तुझे शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तू भी उन्हें त्राण, या शरण देने में समर्थ नहीं है। वह वृद्ध पुरुष, न हँसी-विनोद के योग्य रहता है, न खेलने के, न रति-सेवन के और न शृंगार के योग्य रहता है।

**सूत्र - ६६**

इस प्रकार चिन्तन करता हुआ मनुष्य संयम-साधना के लिए प्रस्तुत हो जाए। इस जीवन को एक स्वर्णिम अवसर समझकर धीर पुरुष मुहूर्त्तभर भी प्रमाद न करे। अवस्थाएं बीत रही हैं। यौवन चला जा रहा है।

**सूत्र - ६७**

जो इस जीवन के प्रति प्रमत्त है, वह हनन, छेदन, भेदन, चोरी, ग्रामघात, उपद्रव और उत्त्रास आदि प्रवृत्तियों में लगा रहता है। 'अकृत काम मैं करूँगा' इस प्रकार मनोरथ करता रहता है। जिन स्वजन आदि के साथ वह रहता है, वे पहले कभी उसका पोषण करते हैं। वह भी बाद में उन स्वजनों का पोषण करता है। इतना स्नेह-सम्बन्ध होने पर भी वे (स्वजन) तुम्हारे त्राण या शरण के लिए समर्थ नहीं हैं। तूम भी उनको त्राण व शरण देने में समर्थ नहीं हो।

**सूत्र - ६८**

(मनुष्य) उपभोग में आने के बाद बचे हुए धन से, तथा जो स्वर्ण एवं भोगोपभोग की सामग्री अर्जित-संचित करके रखी है उसको सुरक्षित रखता है। उसे वह कुछ गृहस्थों के भोग के लिए उपयोग में लेता है। (प्रभूत भोगोपभोग के कारण फिर) कभी उसके शरीर में रोग की पीड़ा उत्पन्न होने लगती है।

जिन स्वजन-स्नेहीयों के साथ वह रहता आया है, वे ही उसे (रोग आदि के कारण धृणा करके) पहले छोड़ देते हैं। बाद में वह भी अपने स्वजन-स्नेहीयों को छोड़ देता है।

हे पुरुष ! न तो वे तेरी रक्षा करने और तुझे शरण देने में समर्थ हैं, और न तू ही उनकी रक्षा व शरण के लिए समर्थ है।

**सूत्र - ६९, ७०**

प्रत्येक प्राणी का सुख और दुःख ..... अपना-अपना है, यह जानकर (आत्मद्रष्टा बने) ।

**सूत्र - ७१**

जो अवस्था (यौवन एवं शक्ति) अभी बीती नहीं है, उसे देखकर, हे पण्डित ! क्षण (समय) को/अवसर को जान ।

**सूत्र - ७२**

जब तक श्रोत्र-प्रज्ञान परिपूर्ण है, इसी प्रकार नेत्र-प्रज्ञान, घ्राण-प्रज्ञान, रसना-प्रज्ञान और स्पर्श-प्रज्ञान परिपूर्ण हैं, तब तक - इन नानारूप प्रज्ञानों के परिपूर्ण रहते हुए आत्महित के लिए सम्यक् प्रकार से प्रयत्नशील बने । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-२ - उद्देशक-२****सूत्र - ७३**

जो अरति से निवृत्त होता है, वह बुद्धिमान है । वह बुद्धिमान विषय-तृष्णा से क्षणभर में ही मुक्त हो जाता है ।

**सूत्र - ७४**

अनाज्ञा में-(वीतराग विहित-विधि के विपरीत) आचरण करने वाले कोई-कोई संयम-जीवन में परीषह आने पर वापस गृहवासी भी बन जाते हैं । वे मंदबुद्धि-अज्ञानी मोह से आवृत्त रहते हैं ।

कुछ व्यक्ति - 'हम अपरिग्रही होंगे' - ऐसा संकल्प करके संयम धारण करते हैं, किन्तु जब काम-सेवन (इन्द्रिय विषयों के सेवन) का प्रसंग उपस्थित होता है, तो उसमें फँस जाते हैं । वे मुनि वीतराग-आज्ञा से बाहर (विषयों की ओर) देखने/ताकने लगते हैं ।

इस प्रकार वे मोह में बार-बार निमग्न हो जाते हैं । इस दशा में वे न तो इस तीर (गृहवास) पर आ सकते हैं और न उस पार (श्रमणत्व) जा सकते हैं ।

**सूत्र - ७५**

जो विषयों के दलदल से पारगामी होते हैं, वे वास्तव में विमुक्त हैं । अलोभ (संतोष) से लोभ को पराजित करता हुआ साधक काम-भोग प्राप्त होने पर भी उनका सेवन नहीं करता (लोभ-विजय ही पार पहुँचने का मार्ग है)

**सूत्र - ७६**

जो लोभ से निवृत्त होकर प्रव्रज्या लेता है, वह अकर्म होकर (कर्मावरण से मुक्त होकर) सब कुछ जानता है, देखता है । जो प्रतिलेखना कर, विषय-कषायों आदि के परिणाम का विचार कर उनकी आकांक्षा नहीं करता, वह अनगार कहलाता है ।

(जो विषयों से निवृत्त नहीं होता) वह रात-दिन परितप्त रहता है । काल या अकाल में सतत प्रयत्न करता रहता है । विषयों को प्राप्त करने का ईच्छुक होकर धन का लोभी बनता है । चोर व लूटेरा बनता है । उसका चित्त व्याकुल व चंचल बना रहता है । और वह पुनः-पुनः शस्त्र-प्रयोग करता रहता है । वह आत्म-बल, ज्ञाति-बल, मित्र-बल, प्रेत्य-बल, देव-बल, राज-बल, चोर-बल, अतिथि-बल, कृपण-बल और श्रमण-बल के संग्रह के लिए अनेक प्रकार के कार्यों द्वारा दण्डप्रयोग करता है ।

कोई किसी कामना से एवं कोई भय के कारण हिंसा आदि करता है । कोई पाप से मुक्ति पाने की भावना से हिंसा करता है । कोई किसी आशा से हिंसा-प्रयोग करता है ।

**सूत्र - ७७**

यह जानकर मेधावी पुरुष पहले बताए गए प्रयोजनों के लिए स्वयं हिंसा न करे, दूसरों से हिंसा न करवाए तथा हिंसा करने वाले का अनुमोदन न करे । यह मार्ग आर्य पुरुषों ने बताया है । कुशलपुरुष इन विषयों में लिप्त न हों ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-२ – उद्देशक-३

## सूत्र - ७८

यह पुरुष अनेक बार उच्चगोत्र और अनेकबार नीच गोत्र को प्राप्त हो चुका हो। इसलिए यहाँ न तो कोई हीन है और न कोई अतिरिक्त है। यह जानकर उच्चगोत्र की स्पृहा न करे। यह जान लेने पर कौन गोत्रवादी होगा? कौन मानवादी होगा? और कौन किस एक गोत्र में आसक्त होगा? इसलिए विवेकशील मनुष्य उच्चगोत्र प्राप्त होने पर हर्षित न हो और नीचगोत्र प्राप्त होने पर कुपित न हो। प्रत्येक जीव को सुख प्रिय है।

## सूत्र - ७९

यह तू देख, इस पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार कर। जो समित है वह इसको देखता है। जैसे-अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, कानापन, लूला-लंगड़ापन, कुबड़ापन, बौनापन, कालापन, चितकबरापन आदि की प्राप्ति अपने प्रमाद के कारण होती है। वह अपने प्रमाद के कारण ही नाना प्रकार की योनियों में जाता है और विविध प्रकार के आघातों-दुखों का अनुभव करता है।

## सूत्र - ८०

वह प्रमादी पुरुष कर्म-सिद्धान्त को नहीं समझाता हुआ शारीरिक दुःखों से हत तथा मानसिक पीड़ाओं से उपहत - पुनः पुनः पीड़ित होता हुआ जन्म-मरण के चक्र में बार-बार भटकता है। जो मनुष्य, क्षेत्र-खुली भूमि तथा वास्तु-भवन-मकान आदि में ममत्व रखता है, उनको यह असंयत जीवन ही प्रिय लगता है। वे रंग-बिरंगे मणि, कुण्डल, हिरण्य-स्वर्ण और उनके साथ स्त्रियों का परिग्रह कर उनमें अनुरक्त रहते हैं।

परिग्रही पुरुष में न तप होता है, न दम-इन्द्रिय-निग्रह होता है और न नियम होता है। वह अज्ञानी, ऐश्वर्य पूर्ण सम्पन्न जीवन जीने की कामना करता रहता है। बार-बार सुख-प्राप्ति की अभिलाषा करता रहता है। किन्तु सुखों की अ-प्राप्ति व कामना की व्यथा से पीड़ित हुआ वह मूढ़ विपर्यास को ही प्राप्त होता है।

## सूत्र - ८१

जो पुरुष ध्रुवचारी होते हैं, वे ऐसा विपर्यासपूर्ण जीवन नहीं चाहते। वे जन्म-मरण के चक्र को जानकर द्रढ़तापूर्वक मोक्ष के पथ पर बढ़ते रहें।

## सूत्र - ८२

काल का अनागमन नहीं है, मृत्यु किसी क्षण आ सकती है। सब को आयुष्य प्रिय है। सभी सुख का स्वाद चाहते हैं। दुःख से धबराते हैं। वध अप्रिय है, जीवन प्रिय है। वे जीवित रहना चाहते हैं। सब को जीवन प्रिय है।

वह परिग्रह में आसक्त हुआ मनुष्य, द्विपद और चतुष्पद का परिग्रह करके उनका उपयोग करता है। उनको कार्य में नियुक्त करता है। फिर धन का संग्रह करता है। अपने, दूसरों के और दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों से उसके पास अल्प या बहुत मात्रा में धनसंग्रह हो जाता है। वह उस अर्थ में गूढ़ हो जाता है और भोग के लिए उसका संरक्षण करता है। पश्चात् वह विविध प्रकार से भोगोपभोग करने के बाद बची हुई विपुल अर्थ-सम्पदा से महान् उपकरण वाला बन जाता है।

एक समय ऐसा आता है, जब उस सम्पत्ति में से दायद हिस्सा लेते हैं, चोर चूरा लेते हैं, राजा उसे छीन लेते हैं या वह नष्ट-विनष्ट हो जाती है। या कभी गृह-दाह के साथ जलकर समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार वह अज्ञानी पुरुष, दूसरों के लिए क्रूर कर्म करता हुआ अपने लिए दुःख उत्पन्न करता है, फिर उस दुःख से त्रस्त हो वह सुख खोजता है, पर अन्त में उसके हाथ दुःख ही लगता है। वह मूढ़ विपर्यास को प्राप्त होता है।

भगवान ने यह बताया है। ये मूढ़ मनुष्य संसार-प्रवाह को तैरने में समर्थ नहीं होते। वे अतीरंगम हैं, तीर-किनारे तक पहुँचने में समर्थ नहीं होते। वे अपारंगम हैं, पार पहुँचने में समर्थ नहीं होते।

वह (मूढ़) आदानीय (संयम-पथ) को प्राप्त करके भी उस स्थान में स्थित नहीं हो पाता। अपनी मूढ़ता के कारण वह असत्मार्ग को प्राप्त कर उसी में ठहर जाता है।

**सूत्र - ८३**

जो द्रष्टा है, (सत्यदर्शी है) उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं होती ।

अज्ञानी पुरुष, जो स्नेह के बंधन में बंधा है, काम-सेवन में अनुरक्त है, वह कभी दुःख का शमन नहीं कर पाता । वह दुःखी होकर दुःखों के आवर्त में बार-बार भटकता रहता है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-२ – उद्देशक-४****सूत्र - ८४**

तब कभी एक समय ऐसा आता है, जब उस अर्थ-संग्रही मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के रोग-उत्पात उत्पन्न हो जाते हैं । वह जिनके साथ रहता है, वे ही स्व-जन एकदा उसका तिरस्कार व निंदा करने लगते हैं । बाद में वह भी उनका तिरस्कार व निंदा करने लगता है । हे पुरुष ! स्वजनादि तुझे त्राण देने में, शरण देने में समर्थ नहीं हैं । तू भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं है । दुःख और सुख-प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना है, यह जानकर (इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे) । कुछ मनुष्य, जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते, वे बार-बार भोग के विषय में ही सोचते रहते हैं ।

**सूत्र - ८५**

यहाँ पर कुछ मनुष्यों को अपने, दूसरों के अथवा दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से अल्प या बहुत अर्थ-मात्रा हो जाती है । वह फिर उस अर्थ-मात्रा में आसक्त होता है । भोग के लिए उसकी रक्षा करता है । भोग के बाद बची हुई विपुल संपत्ति के कारण वह महान् वैभव वाला बन जाता है । फिर जीवन में कभी ऐसा समय आता है, जब दायदा हिस्सा बँटाते हैं, चोर उसे चूरा लेते हैं, राजा उसे छीन लेता है, वह अन्य प्रकार से नष्ट-विनष्ट हो जाती है । गृह-दाह आदि से जलकर भस्म हो जाती है ।

अज्ञानी मनुष्य इस प्रकार दूसरों के लिए अनेक क्रूर कर्म करता हुआ (दुःख के हेतु का निर्माण करता है) फिर दुःखोदय होने पर वह मूढ़ बनकर विपर्यास भाव को प्राप्त होता है ।

**सूत्र - ८६**

हे धीर पुरुष ! तू आशा और स्वच्छन्दता त्याग दे । उस भोगेच्छा रूप शल्य का सृजन तूने स्वयं ही किया है । जिस भोगसामग्री से तुझे सुख होता है उससे सुख नहीं भी होता है । जो मनुष्य मोहकी सघनतासे आवृत हैं, ढंके हैं, वे इस तथ्य को कि पौद्गलिक साधनों से कभी सुख मिलता है, कभी नहीं, वे क्षण-भंगुर हैं, तथा वे ही शल्य नहीं जानते यह संसार स्त्रियों के द्वारा पराजित है । हे पुरुष ! वे (स्त्रियों से पराजित जन) कहते हैं - ये स्त्रियाँ आयतन हैं (किन्तु उनका) यह कथन, दुःख के लिए एवं मोह, मृत्यु, नरक तथा नरक-तिर्यच गति के लिए होता है ।

सतत मूढ़ रहने वाला मनुष्य धर्म को नहीं जान पाता । भगवान् महावीर ने कहा है - महामोह में अप्रमत्त रहे । बुद्धिमान पुरुष को प्रमाद से बचना चाहिए । शान्ति और मरण को देखने वाला (प्रमाद न करे) यह शरीर भंगुरधर्मा हे, यह देखने वाला (प्रमाद न करे) ।

ये भोग (तेरी अतृप्ति की प्यास बुझाने में) समर्थ नहीं है । यह देख । तुझे इन भोगों से क्या प्रयोजन है ?

**सूत्र - ८७**

हे मुनि ! यह देख, ये भोग महान् भयरूप हैं । भोगों के लिए किसी प्राणी की हिंसा न कर । वह वीर प्रशंसनीय होता है, जो संयम से उद्विग्न नहीं होता । 'यह मुझे भिक्षा नहीं देता' ऐसा सोचकर कुपित नहीं होना चाहिए थोड़ी भिक्षा मिलने पर दाता की निंदा नहीं करनी चाहिए । गृहस्वामी दाता द्वारा प्रतिबंध करने पर शान्त भाव से वापस लौट जाए । मुनि इस मौन (मुनिधर्म) का भलीभाँति पालन करे ।

**अध्ययन-२ – उद्देशक-५****सूत्र - ८८**

असंयमी पुरुष अनेक प्रकार के शस्त्रों द्वारा लोक के लिए कर्म समारंभ करते हैं । जैसे-अपने लिए, पुत्र,

पुत्री, पुत्र-वधू, ज्ञातिजन, धाय, राजा, दास-दासी, कर्मचारी, कर्मचारिणी, पाहुने आदि के लिए तथा विविध लोगों को देने के लिए एवं सायंकालीन तथा प्रातःकालीन भोजन के लिए। इस प्रकार वे कुछ मनुष्यों के भोजन के लिए सन्निधि और सन्निचय करते रहते हैं।

### सूत्र - ८९

संयम-साधना में तत्पर हुआ आर्य, आर्यप्रज्ञ और आर्यदर्शी अनगार प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करता है। वह 'यह शिक्षा का समय-संधि है' यह देखकर (भिक्षा के लिए जाए)। वह सदोष आहार को स्वयं ग्रहण न करे, न दूसरों से ग्रहण करवाए तथा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन नहीं करे।

वह (अनगार) सब प्रकार के आमगंध (आधाकर्मादि दोषयुक्त आहार) का परिवर्जन करता हुआ निर्दोष भोजन के लिए परिव्रजन करे।

### सूत्र - ९०

वह वस्तु के क्रय-विक्रय में संलग्न न हो। न स्वयं क्रय करे, न दूसरों से क्रय करवाए और न क्रय करने वाले का अनुमोदन करे। वह भिक्षु कालज्ञ है, बलज्ञ है, मात्रज्ञ है, क्षेत्रज्ञ है, क्षणज्ञ है, विनयज्ञ है, समयज्ञ है, भावज्ञ है। परिग्रह पर ममत्व नहीं रखने वाला, उचित समय पर उचित कार्य करने वाला अप्रतिज्ञ है।

### सूत्र - ९१

वह राग और द्वेष-दोनों का छेदन कर नियम तथा अनासक्तिपूर्वक जीवन यात्रा करता है। वह (संयमी) वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद प्रोच्छन, अवग्रह और कटासन आदि (जो गृहस्थ के लिए निर्मित हों) उनकी याचना करे।

### सूत्र - ९२

आहार प्राप्त होने पर, आगम के अनुसार, अनगार को उसकी मात्रा का ज्ञान होना चाहिए। ईच्छित आहार आदि प्राप्त होने पर उसका मद नहीं करे। यदि प्राप्त न हो तो शोक न करे। यदि अधिक मात्रा में प्राप्त हो, तो उसका संग्रह न करे। परिग्रह से स्वयं को दूर रखे।

### सूत्र - ९३

जिस प्रकार गृहस्थ परिग्रह को ममत्व भाव से देखते हैं, उस प्रकार न देखे - अन्य प्रकार से देखे और परिग्रह का वर्जन करे। यह मार्ग आर्यो ने प्रतिपादित किया है, जिससे कुशल पुरुष (परिग्रह में) लिप्त न हो। ऐसा मैं कहता हूँ

### सूत्र - ९४

ये काम दुर्लभ है। जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता, यह पुरुष कामभोग की कामना रखता है (किन्तु यह परितृप्त नहीं होती, इसलिए) वह शोक करता है फिर वह शरीर से सूख जाता है, आँसू बहाता है, पीड़ा और परिताप से दुःखी होता रहता है।

### सूत्र - ९५

वह आयतकक्षु-दीर्घदर्शी लोकदर्शी होता है। यह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है, तीरछे भाग को जानता है। (कामभोग में) गृद्ध हुआ आसक्त पुरुष संसार में अनुपरिवर्तन करता रहता है।

यहाँ (संसार में) मनुष्यों के, (मरणधर्माशरीर की) संधि को जानकर (विरक्त हो)।

वह वीर प्रशंसा के योग्य है जो (कामभोग में) बद्ध को मुक्त करता है। (यह देह) जैसा भीतर है, वैसा बाहर है, जैसा बाहर है वैसा भीतर है। इस शरीर के भीतर-भीतर अशुद्धि भरी हुई है, साधक इसे देखें। देह से झरते हुए अनेक अशुचि-स्रोतों को भी देखें। इस प्रकार पंडित शरीर की अशुचिता को भली-भाँति देखें।

### सूत्र - ९६

वह मतिमान् साधक (उक्त विषय को) जानकर तथा त्यागकर लार को न चाटे। अपने को तिर्यक्मार्ग में, (कामभोग के बीच में) न फँसाए। यह पुरुष सोचता है - मैंने यह कार्य किया, यह कार्य करूँगा (इस प्रकार) वह दूसरों को ठगता है, माया-कपट रचता है, और फिर अपने रचे मायाजाल में स्वयं फँसकर मूढ़ बन जाता है।

वह मूढ़भाव से ग्रस्त फिर लोभ करता है और प्राणियों के साथ अपना वैर बढ़ाता है। जो मैं यह कहता हूँ वह इस शरीर को पुष्ट बनाने के लिए ही ऐसा करता है। वह कामभोग में महान श्रद्धा रखता हुआ अपने को अमर की भाँति समझता है। तू देख, वह आर्त तथा दुःखी है। परिग्रह का त्याग नहीं करने वाला क्रन्दन करता है।

### सूत्र - ९७

तुम उसे जानो, जो मैं कहता हूँ। अपने को चिकित्सा-पंडित बताते हुए कुछ वैद्य, चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं। वह अनेक जीवों का हनन, भेदन, लुम्पन, विलुम्पन और प्राण-वध करता है। 'जो पहले किसी ने नहीं किया, ऐसा मैं करूँगा,' यह मानता हुआ (जीव-वध करता है)। जिसकी चिकित्सा करता है (वह भी जीव-वध में सहभागी होता है)। (इस प्रकार की हिंसा-प्रधान चिकित्सा करने वाले) अज्ञानी की संगति से क्या लाभ है? जो ऐसी चिकित्सा करवाता है, वह भी बाल-अज्ञानी है। अनगार ऐसी चिकित्सा नहीं करवाता। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-२ – उद्देशक-६

### सूत्र - ९८

वह उसको सम्यक् प्रकार से जानकर संयम साधना से समुद्यत होता है। इसलिए वह स्वयं पापकर्म न करे, दूसरों से न करवाए (अनुमोदन भी न करे)।

### सूत्र - ९९

कदाचित् किसी एक जीवकाय का समारंभ करता है, तो वह छहों जीव-कार्यों में (सभी का) समारंभ कर सकता है। वह सुख का अभिलाषी, बार-बार सुख की ईच्छा करता है, (किन्तु) स्व-कृत कर्मों के कारण, मूढ़ बन जाता है और विषयादि सुख के बदले दुःख को प्राप्त करता है। वह अपने अति प्रमाद के कारण ही अनेक योनियों में भ्रमण करता है, जहाँ पर कि प्राणी अत्यन्त दुःख भोगते हैं। यह जानकर परिग्रह का संकल्प त्याग देवे। यही परिज्ञा कहा जाता है। इसी से (परिग्रह-त्याग से) कर्मों की शान्ति होती है।

### सूत्र - १००

जो ममत्व-बुद्धि का त्याग करता है, वह ममत्व का त्याग करता है।

वही द्रष्ट-पथ मुनि है, जीसने ममत्व का त्याग कर दिया है। यह जानकर मेधावी लोकस्वरूप को जाने। लोक-संज्ञा का त्याग करे, तथा संयम में पुरुषार्थ करे। वास्तव में उसे ही मतिमान् कहा गया है - ऐसा मैं कहता हूँ।

### सूत्र - १०१

वीर साधक अरति को सहन नहीं करता, और रति को भी सहन नहीं करता। इसलिए वह वीर इन दोनों में ही अविमनस्क रहकर रति-अरति में आसक्त नहीं होता।

### सूत्र - १०२

मुनि (मधुर एवं कटु) शब्द (रूप, रस, गन्ध) और स्पर्श को सहन करता है। इस असंयम जीवन में होने वाले आमोद आदि से विरत होता है।

मुनि मौन (संयम) को ग्रहण करके कर्म-शरीर को धुन डालता है।

### सूत्र - १०३

वे समत्वदर्शी वीर साधक रूखे-सूखे का समभाव पूर्वक सेवन करते हैं। वह मुनि, जन्म-मरणरूप संसार प्रवाह को तैर चूका है, वह वास्तव में मुक्त, विरत कहा जाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

### सूत्र - १०४

जो पुरुष वीतराग की आज्ञा का पालन नहीं करता वह संयम-धन से रहित है। वह धर्म का कथन करने में ग्लानि का अनुभव करता है, (क्योंकि) वह चारित्र की द्रष्टि से तुच्छ जो है। वह वीर पुरुष (जो वीतराग की आज्ञा के अनुसार चलता है) सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करता है और लोक-संयोग से दूर हट जाता है, मुक्त हो जाता है। यही न्याय्य (तीर्थकरों का) मार्ग कहा जाता है।

**सूत्र - १०५**

यहाँ (संसार में) मनुष्यों के जो दुःख बताए हैं, कुशल पुरुष उस दुःख को परिज्ञा-विवेक बताते हैं। इस प्रकार कर्मों को जानकर सर्व प्रकार से (निवृत्ति करे)। जो अनन्य (आत्मा) को देखता है, वह अनन्य में रमण करता है। जो अनन्य में रमण करता है, वह अनन्य को देखता है।

(आत्मदर्शी) साधक जैसे पुण्यवान व्यक्ति को धर्म-उपदेश करता है, वैसे ही तुच्छ को भी धर्म उपदेश करता है और जैसे तुच्छ को धर्मोपदेश करता है, वैसे ही पुण्यवान को भी धर्मोपदेश करता है।

**सूत्र - १०६**

कभी अनादर होने पर वह (श्रोता) उसको (धर्मकथी को) मारने भी लग जाता है। अतः यहाँ यह भी जाने धर्मकथा करना श्रेय नहीं है। पहले धर्मोपदेशक को यह जान लेना चाहिए की यह पुरुष कौन है? किस देवता को मानता है?

वह वीर प्रशंसा के योग्य है, जो बद्ध मनुष्यों को मुक्त करता है। वह ऊंची, नीची और तीरछी दिशाओं में, सब प्रकार से समग्र परिज्ञा/विवेकज्ञान के साथ चलता है। वह हिंसा-स्थान से लिप्त नहीं होता।

वह मेधावी है, जो अहिंसा का समग्र स्वरूप जानता है, तथा जो कर्मों के बंधन से मुक्त होने की अन्वेषणा करता है। कुशल पुरुष न बंधे हुए हैं और न मुक्त हैं।

**सूत्र - १०७**

उन कुशल साधकों ने जिसका आचरण किया है और जिसका आचरण नहीं किया है (यह जानकर श्रमण) उनके द्वारा अनाचरित प्रवृत्ति का आचरण न करे। हिंसा को जानकर उसका त्याग कर दे। लोक-संज्ञा को भी सर्व प्रकार से जाने और छोड़ दे।

**सूत्र - १०८**

द्रष्टा के लिए कोई उद्देश (अथवा उपदेश) नहीं है। बाल बार-बार विषयों में स्नेह करता है। काम-ईच्छा और विषयों को मनोज्ञ समझकर (सेवन करता है) इसीलिए वह दुःखों का शमन नहीं कर पाता। वह दुःखों से दुःखी बना हुआ दुःखों के चक्र में ही परिभ्रमण करता रहता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-३ – शीतोष्णीय****उद्देशक-१****सूत्र - १०९**

अमुनि (अज्ञानी) सदा सोये हुए हैं, मुनि (ज्ञानी) सदैव जागते रहते हैं ।

**सूत्र - ११०, १११**

इस बात को जान लो कि लोक में अज्ञान अहित के लिए होता है । लोक में इस आचार को जानकर (संयम में बाधक) जो शस्त्र हैं, उनसे उपरत रहे ।

जिस पुरुष ने शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श को सम्यक् प्रकार से परिज्ञात किया है- (जो उनमें रागद्वेष न करता हो) । वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् और ब्रह्मवान् होता है ।

जो पुरुष अपनी प्रज्ञा से लोक को जानता है, वह मुनि कहलाता है । वह धर्मवेत्ता और ऋजु होता है । (वह) संग को आवर्त-स्रोत (जन्म-मरणादि चक्रस्रोत) के रूप में बहुत निकट से जान लेता है ।

**सूत्र - ११२**

वह निर्ग्रन्थ शीत और उष्ण (सुख और दुःख) का त्यागी (इनकी लालसा से) मुक्त होता है तथा वह अरति और रति को सहन करता है तथा स्पर्शजन्य सुख-दुःख का वेदन नहीं करता । जागृत और वैर से उपरत वीर ! तू इस प्रकार दुःखों से मुक्ति पा जाएगा ।

बुढ़ापे और मृत्यु के वश में पड़ा हुआ मनुष्य सतत मूढ़ बना रहता है । वह धर्म को नहीं जान पाता ।

**सूत्र - ११३**

(सुप्त) मनुष्यों को दुःखों से आतुर देखकर साधक सतत अप्रमत्त होकर विचरण करे । हे मतिमान् ! तू मननपूर्वक इन (दुखियों) को देख । यह दुःख आरम्भज है, यह जानकर (तू निरारम्भ होकर अप्रमत्त भाव से आत्महित में प्रवृत्त रह) । मया और प्रमाद के वश हुआ मनुष्य बार-बार जन्म लेता है ।

शब्द और रूप आदि के प्रति जो उपेक्षा करता है, वह ऋजु होता है, वह मार के प्रति सदा आशंकित रहता है और मृत्यु से मुक्त हो जाता है । जो कामभोगों के प्रति अप्रमत्त है, पाप कर्मों से उपरत है, वह पुरुष वीर और आत्मगुप्त होता है और जो (अपने आप में सुरक्षित होता है) वह खेदज्ञ होता है, अथवा वह क्षेत्रज्ञ होता है ।

जो (शब्दादि विषयों की) विभिन्न पर्यायसमूह के निमित्त से होने वाले शस्त्र (असंयम) के खेद को जानता है, वह अशस्त्र के खेद को जानता है, वह (विषयों के विभिन्न) पर्यायों से होने वाले शस्त्र के खेद को जानता है ।

कर्मों से मुक्त आत्मा के लिए कोई व्यवहार नहीं होता । कर्म से उपाधि होती है । कर्म का भलीभाँति पर्यालोचन करके (उसे नष्ट करने का प्रयत्न करे) ।

**सूत्र - ११४**

कर्म का मूल जो क्षण-हिंसा है, उसका भलीभाँति निरीक्षण करके (परित्याग करे) । इन सबका सम्यक् निरीक्षण करके संयम ग्रहण करे तथा दो (राग और द्वेष) अन्तों से अद्रश्य होकर रहे ।

मेधावी साधक उसे (राग-द्वेषादि को) ज्ञात करके (ज्ञपरिज्ञा से जाने और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से छोड़े) । वह मतिमान् साधक (रागादि से मूढ़) लोक को जानकर लोकसंज्ञा का त्याग करके (संयमानुष्ठान में) पराक्रम करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-३ - उद्देशक-२****सूत्र - ११५**

हे आर्य ! तू इस संसार में जन्म और बुद्धि को देख । तू प्राणियों को (कर्मबन्ध और उसके विपाकरूप दुःख को) जान और उनके साथ अपने सुख (दुःख) का पर्यालोचन कर । इससे त्रैविद्य या अतिविद्य बना हुआ साधक परम (मोक्ष) को जानकर (समत्वदर्शी हो जाता है) । समत्वदर्शी पाप नहीं करता ।

**सूत्र - ११६**

इस संसार में मनुष्यों के साथ पाश है, उसे तोड़ डाल; क्योंकि ऐसे लोग हिंसादि पापरूप आरंभ करके जीते हैं और आरंभजीवी पुरुष इहलोक और परलोक में शारीरिक, मानसिक कामभोगों को ही देखते रहते हैं, अथवा आरंभजीवी होने से वह दण्ड आदि के भय का दर्शन करते हैं। ऐसे कामभोगों में आसक्त जन (कर्मों का) संचय करते रहते हैं। (कर्मों की जड़ें) बार-बार सींची जाने से वे पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं।

**सूत्र - ११७**

वह (काम-भोगासक्त मनुष्य) हास्य-विनोद के कारण प्राणियों का वध करके खुशी मनाता है। बाल-अज्ञानी को इस प्रकार के हास्य आदि विनोद के प्रसंग से क्या लाभ है? उससे तो वह (उन जीवों के साथ) अपना वैर ही बढ़ाता है।

**सूत्र - ११८**

इसलिए अति विद्वान् परम-मोक्ष पद को जानकर जो (हिंसा आदि पापों में) आतंक देखता है, वह पाप नहीं करता। हे धीर! तू (इस आतंक-दुःख के) अग्र और मूल का विवेक कर उसे पहचान! वह धीर (रागादि बन्धनों को) परिच्छिन्न करके स्वयं निष्कर्मदर्शी हो जाता है।

**सूत्र - ११९**

वह (निष्कर्मदर्शी) मरण से मुक्त हो जाता है। वह मुनि भय को देख चूका है। वह लोक में परम (मोक्ष) को देखता है। वह राग-द्वेष रहित शुद्ध जीवन जीता है। वह उपशान्त, समित, (ज्ञान आदि से) सहित होता। (अत एव) सदा संयत होकर, मरण की आकांक्षा करता हुआ विचरण करता है।

(इस जीव ने भूतकाल में) अनेक प्रकार के बहुत से पापकर्मों का बन्ध किया है।

**सूत्र - १२०**

(उन कर्मों को नष्ट करने हेतु) तू सत्य में धृति कर। इस में स्थिर रहने वाला मेधावी समस्त पापकर्मों का शोषण कर डालता है।

**सूत्र - १२१**

वह (असंयमी) पुरुष अनेक चित्तवाला है। वह चलनी को (जल से) भरना चाहता है। (तृष्णा की पूर्ति के लिए) दूसरों के वध, परिताप, तथा परिग्रह के लिए तथा जनपद के वध, परिताप और परिग्रह के लिए (प्रवृत्ति करता है)।

**सूत्र - १२२**

इस प्रकार कई व्यक्ति इस अर्थ का आसेवन करके संयम-साधना में संलग्न हो जाते हैं। इसलिए वे फिर दुबारा उनका आसेवन नहीं करते।

हे ज्ञानी! विषयों को निस्सार देखकर (तू विषयाभिलाषा मत कर)। केवल मनुष्यों के ही, जन्म-मरण नहीं, देवों के भी उपपात और च्यवन निश्चित हैं, यह जानकर (विषय-सुखों में आसक्त मत हो)। हे माहन! तू अनन्य का आचरण कर। वह (अनन्यसेवी मुनि) प्राणियों की हिंसा स्वयं न करे, न दूसरों से हिंसा कराए और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन करे।

तू (कामभोग-जनित) आमोद-प्रमोद से विरक्ति कर। प्रजाओं (स्त्रियों) में अरक्त रह। अनवमदर्शी (सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप मोक्षदर्शी साधक) पापकर्मों से उदासीन रहता है।

**सूत्र - १२३**

वीर पुरुष कषाय के आदि अंग-क्रोध और मान को मारे, लोभ को महान् नरक के रूप में देखे। इसलिए लघुबूत बनने का अभिलाषी, वीर हिंसा से विरत होकर स्रोतों को छिन्न-भिन्न कर डाले।

**सूत्र - १२४**

हे वीर! इस लोकमें ग्रन्थ (परिग्रह) को जपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से आज ही अविलम्ब छोड़ दे,

इसी प्रकार (संसार के) स्रोत भी जानकर दान्त बनकर संयममें विचरण कर । यह जानकर की यहीं (मनुष्य जन्ममें) मनुष्यों द्वारा उन्मज्जन या कर्म-उन्मुक्त होने का अवसर मिलता है, मुनि प्राणों का समारम्भ न करे। ऐसा मैं कहता हूँ

### अध्ययन-३ – उद्देशक-३

#### सूत्र - १२५

साधक (धर्मानुष्ठान की अपूर्व) सन्धि समझकर प्रमाद करना उचित नहीं है । अपनी आत्मा के समान बाह्य-जगत को देख ! (सभी जीवों को मेरे समान ही सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है) यह समझकर मुनि जीवों का हनन न करे और न दूसरों से घात कराए ।

जो परस्पर एक-दूसरे की आशंका से, भय से, या दूसरे के सामने लज्जा के कारण पाप कर्म नहीं करता, तो क्या ऐसी स्थिति में उसका कारण मुनि होता है ? (नहीं)

#### सूत्र - १२६

इस स्थिति में (मुनि) समता की द्रष्टि से पर्यालोचन करके आत्मा को प्रसाद रखे । ज्ञानी मुनि अनन्य परम के प्रति कदापि प्रमाद न करे । वह साधक सदा आत्मगुप्त और वीर रहे, वह अपनी संयम-यात्रा का निर्वाह परिमित आहार से करे ।

वह साधक छोटे या बड़े रूपों - (द्रश्यमान पदार्थों) के प्रति विरति धारण करे ।

#### सूत्र - १२७

समस्त प्राणियों की गति और आगति को भलीभाँति जानकर जो दोनों अन्तों (राग और द्वेष) से दूर रहता है, वह समस्त लोक में किसी से (कहीं भी) छेदा नहीं जाता, भेदा नहीं जाता, जलाया नहीं जाता और मारा नहीं जाता ।

#### सूत्र - १२८

कुछ (मूढमति) पुरुष भविष्यकाल के साथ पूर्वकाल का स्मरण नहीं करते । वे चिन्ता नहीं करते की इसका अतीत क्या था, भविष्य क्या होगा ? कुछ (मिथ्याज्ञानी) मानव यों कह देते हैं कि जो इसका अतीत था, वही भविष्य होगा ।

#### सूत्र - १२९

किन्तु तथागत (सर्वज्ञ) न अतीत के अर्थ का स्मरण करते हैं और न ही भविष्य के अर्थ का चिन्तन करते हैं। (जिसने कर्मों को विविध प्रकार से धूत कर दिया है, ऐसे) विधूत समान कल्पवाला महर्षि इन्हीं के दर्शन का अनुगामी होता है, अथवा वह क्षपक महर्षि वर्तमान का अनुदर्शी हो (पूर्व संचित) कर्मों का शोषण करके क्षीण कर देता है ।

#### सूत्र - १३०

उस (धूत-कल्प)योगी के लिए भला क्या अरति है और क्या आनन्द है? वह इस विषय में बिलकुल ग्रहण रहित होकर विचरण करे । वह सभी प्रकार के हास्य आदि त्याग करके इन्द्रियनिग्रह तथा मन-वचन-काया को तीन गुप्तियों से गुप्त करते हुए विचरण करे । हे पुरुष ! तू ही मेरा मित्र है, फिर बाहर अपने से भिन्न मित्र क्यों ढूँढ़ रहा है ?

#### सूत्र - १३१

जिसे तुम उच्च भूमिका पर स्थित समझते हो, उसका घर अत्यन्त दूर समझो, जिसे अत्यन्त दूर समझते हो उसे तुम उच्च भूमिका पर स्थित समझो ।

हे पुरुष ! अपना ही निग्रह कर । इसी विधि से तू दुःख से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा । हे पुरुष ! तू सत्य को ही भलीभाँति समझ ! सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहने वाला वह मेधावी मार (संसार) को तर जाता है ।

सत्य या ज्ञानादि से युक्त साधक धर्मग्रहण करके श्रेय (आत्म-हित) का सम्यक् प्रकार से अवलोकन करता है

#### सूत्र - १३२

राग और द्वेष (इन) दोनों से क्लुषित आत्मा जीवन की वन्दना, सम्मान और पूजा के लिए प्रवृत्त होता है ।

कुछ साधक भी इन के लिए प्रमाद करते हैं।

### सूत्र - १३३

ज्ञानादि से युक्त साधक दुःख की मात्रा से स्पृष्ट होने पर व्याकुल नहीं होता। आत्मद्रष्टा वीतराग पुरुष लोक में आलोक के समस्त प्रपंचों से मुक्त हो जाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

### अध्ययन-३ – उद्देशक-४

### सूत्र - १३४

वह (साधक) क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन कर देता है। यह दर्शन हिंसा से उपरत तथा समस्त कर्मों का अन्त करने वाले सर्वज्ञ-सर्वदर्शी का है। जो कर्मों के आदान का निरोध करता है, वही स्व-कृत का भेत्ता है।

### सूत्र - १३५

जो एक को जानता है, वह सब को जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।

### सूत्र - १३६

प्रमत्त को सब ओर से भय होता है, अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं होता। जो एक को झुकाता है, वह बहुतों को झुकाता है, जो बहुतों को झुकाता है, वह एक को झुकाता है।

साधक लोक के दुःख को जानकर (उसके हेतु कषाय का त्याग करे)

वीर साधक लोक के संयोग का परित्याग कर महायान को प्राप्त करते हैं। वे आगे से आगे बढ़ते जाते हैं, उन्हें फिर जीवन की आकांक्षा नहीं रहती।

### सूत्र - १३७

एक को पृथक् करने वाला, अन्य (कर्मों) को भी पृथक् कर देता है, अन्य को पृथक् करने वाला, एक को भी पृथक् कर देता है। (वीतराग की) आज्ञा में श्रद्धा रखने वाला मेधावी होता है।

साधक आज्ञा से लोक को जानकर (विषयों) का त्याग कर देता है, वह अकुतोभय हो जाता है। शस्त्र (असंयम) एक से एक बढ़कर तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होता है किन्तु अशस्त्र (संयम) एक से एक बढ़कर नहीं होता।

### सूत्र - १३८

जो क्रोधदर्शी होता है, वह मानदर्शी होता है, जो मानदर्शी होता है; जो मानदर्शी होता है, वह मायादर्शी होता है, जो मायादर्शी होता है, वह लोभदर्शी होता है; जो लोभदर्शी होता है, वह प्रेमदर्शी होता है; जो प्रेमदर्शी होता है, वह द्वेषदर्शी होता है; जो द्वेषदर्शी होता है, वह मोहदर्शी होता है; जो मोहदर्शी होता है, वह गर्भदर्शी होता है; जो गर्भदर्शी होता है, वह जन्मदर्शी होता है, जो जन्मदर्शी होता है, वह मृत्युदर्शी होता है; जो मृत्युदर्शी होता है, वह नरकदर्शी होता है; जो नरकदर्शी होता है, वह तिर्यचदर्शी होता है; जो तिर्यचदर्शी होता है, वह दुःखदर्शी होता है

(अतः) वह मेधावी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक, तिर्यच और दुःख को वापस लौटा दे। यह समस्त कर्मों का अन्त करने वाले, हिंसा-असंयम से उपरत एवं निरावरण द्रष्टा का दर्शन है।

जो पुरुष कर्म के आदान को रोकता है, वही कर्म का भेदन कर पाता है।

क्या सर्व-द्रष्टा की कोई उपधि होती है? नहीं होती। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

**अध्ययन-४ – सम्यक्त्व****उद्देशक-१****सूत्र - १३९**

मैं कहता हूँ - जो अर्हन्त भगवान् अतीत में हुए हैं, जो वर्तमान में हैं और जो भविष्य में होंगे-वे सब ऐसा आख्यान करते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा प्ररूपण करते हैं-समस्त प्राणियों, सर्व भूतों, सभी जीवों और सभी सत्त्वों का हनन नहीं करना चाहिए, बलात् उन्हें शासित नहीं करना चाहिए, न उन्हें दास बनाना चाहिए, न उन्हें परिताप देना चाहिए और न उनके प्राणों का विनाश करना चाहिए।

यह अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। खेदज्ञ अर्हन्तों ने लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर इसका प्रतिपादन किया है। जैसे कि-

जो धर्माचरण के लिए उठे हैं, अथवा अभी नहीं उठे हैं; जो धर्मश्रवण के लिए उपस्थित हुए हैं, या नहीं हुए हैं; जो दण्ड देने से उपरत हैं, अथवा अनुपरत हैं; जो उपधि से युक्त हैं, अथवा उपधि से रहित हैं, जो संयोगों में रत हैं, अथवा संयोगों में रत नहीं हैं। वह (अर्हत्प्ररूपित धर्म) सत्य है, तथ्य है यह इस में सम्यक् प्रकार से प्रतिपादित है।

**सूत्र - १४०**

साधक उस (अर्हत् भाषित-धर्म) को ग्रहण करके (उसके आचरण हेतु अपनी शक्तियों को) छिपाए नहीं और न ही उसे छोड़े। धर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा जानकर (उसका आचरण करे)। (इष्ट-अनिष्ट) रूपों (इन्द्रिय विषयों) से विरक्ति प्राप्त करे। वह लोकैषणा में न भटके।

**सूत्र - १४१**

जिस मुमुक्षु में यह बुद्धि नहीं है, उससे अन्य (सावद्याम्भ) प्रवृत्ति कैसे होगी? अथवा जिसमें सम्यक्त्व ज्ञाति नहीं है या अहिंसा बुद्धि नहीं है, उसमें दूसरी विवेक बुद्धि कैसे होगी? यह जो (अहिंसा धर्म) कहा जा रहा है, वह इष्ट, श्रुत, मत और विशेष रूप से ज्ञात है। हिंसा में (गृद्धिपूर्वक) रचे-पचे रहने वाले और उसी में लीन रहने वाले मनुष्य बार-बार जन्म लेते रहते हैं।

**सूत्र - १४२**

(मोक्षमार्ग में) अहर्निश यत्न करने वाले, सतत प्रज्ञावान्, धीर साधक! उन्हें देख जो प्रमत्त हैं, (धर्म से) बाहर हैं। इसलिए तू अप्रमत्त होकर सदा (धर्म में) पराक्रम कर। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-४ – उद्देशक-२****सूत्र - १४३**

जो आस्रव (कर्मबन्ध) के स्थान हैं, वे ही परिस्रव-कर्मनिर्जरा के स्थान बन जाते हैं, जो परिस्रव हैं, वे आस्रव हो जाते हैं, जो अनास्रव-व्रत विशेष हैं, वे भी अपरिस्रव-कर्म के कारण हो जाते हैं, (इसी प्रकार) जो अपरिस्रव, वे भी अनास्रव नहीं होते हैं। इन पदों को सम्यक् प्रकार से समझने वाला तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित लोक को आज्ञा के अनुसार सम्यक् प्रकार से जानकर आस्रवों का सेवन न करे।

**सूत्र - १४४**

ज्ञानी पुरुष, इस विषयमें, संसारमें स्थित, सम्यक् बोध पाने को उत्सुक एवं विज्ञान-प्राप्त मनुष्यों को उपदेश करते हैं। जो आर्त अथवा प्रमत्त होते हैं, वे भी धर्म का आचरण कर सकते हैं। यह यथातथ्य-सत्य है, ऐसा मैं कहता हूँ जीवों को मृत्यु के मुख में जाना नहीं होगा, ऐसा सम्भव नहीं है। फिर भी कुछ लोग ईच्छा द्वारा प्रेरित और वक्रता के घर बने रहते हैं। वे मृत्यु की पकड़ में आ जाने पर भी कर्म-संचय करने या धन-संग्रह में रचे-पचे रहते हैं। ऐसे लोग विभिन्न योनियों में बारंबार जन्म ग्रहण करते रहते हैं।

**सूत्र - १४५**

इस लोक में कुछ लोगों को उन-उन (विभिन्न मतवादों) का सम्पर्क होता है, (वे) लोक में होनेवाले दुःखों का

संवेदन करते हैं। जो व्यक्ति अत्यन्त गाढ़ अध्यवसायवश क्रूर कर्मों से प्रवृत्त होता है, वह अत्यन्त प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में उत्पन्न नहीं होता।

यह बात चौदह पूर्वों के धारक श्रुतकेवली आदि कहते हैं या केवलज्ञानी भी कहते हैं। जो यह बात केवल-ज्ञानी कहते हैं वही श्रुतकेवली भी कहते हैं।

### सूत्र - १४६

इस मत-मतान्तरों वाले लोक में जितने भी, जो भी श्रमण या ब्राह्मण हैं, वे परस्पर विरोधी भिन्न-भिन्न मतवाद का प्रतिपादन करते हैं। जैसे की कुछ मतवादी कहते हैं- 'हमने यह देख लिया है, सून लिया है, मनन कर लिया है और विशेष रूप से जान भी लिया है, ऊंची, नीची और तिरछी सब दिशाओं में सब तरह से भली-भाँति इसका निरीक्षण भी कर लिया है कि सभी प्राणी, सभी जीव, सभी भूत और सभी सत्त्व हनन करने योग्य हैं, उन पर शासन किया जा सकता है, उन्हें परिताप पहुँचाया जा सकता है, उन्हें गुलाम बनाकर रखा जा सकता है, उन्हें प्राणहीन बनाया जा सकता है। इसके सम्बन्ध में यही समझ लो कि हिंसा में कोई दोष नहीं है।' यह अनार्य लोगों का कथन है।

इस जगत में जो भी आर्य हैं, उन्होंने ऐसा कहा है - 'ओ हिंसावादियों ! आपने दोषपूर्ण देखा है, दोषयुक्त सूना है, दोषयुक्त मनन किया है, आपने दोषयुक्त ही समझा है, ऊंची-नीची-तिरछी सभी दिशाओं में सर्वथा दोषपूर्ण होकर निरीक्षण किया है, जो आप ऐसा कहते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा प्ररूपण करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व हनन करने योग्य हैं, यावत् प्राणहीन बनाया जा सकता है; यह निश्चित समझ लो कि हिंसा में कोई दोष नहीं।' यह सरासर अनार्य-वचन है।

हम इस प्रकार कहते हैं, ऐसा ही भाषण करते हैं, ऐसा ही प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा ही प्ररूपण करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसा नहीं करनी चाहिए, उनको जबरन शासित नहीं करना चाहिए, उन्हें पकड़कर दास नहीं बनाना चाहिए, न ही परिताप देना चाहिए और न उन्हें डराना-धमकाना, प्राणरहित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में निश्चित समझ लो कि अहिंसा का पालन सर्वथा दोषरहित है। यह आर्यवचन है।

पहले उनमें से प्रत्येक दार्शनिक को, जो-जो उसका सिद्धान्त है, उसे हम पूछेंगे- 'हे दार्शनिकों ! आपको दुःख प्रिय है या अप्रिय ? यदि आप कहें कि हमें दुःख प्रिय है, तब वह उत्तर प्रत्यक्ष-विरुद्ध होगा, यदि आप कहें कि हमें दुःख प्रिय नहीं है, तो आपके द्वारा इस सम्यक् सिद्धान्त के स्वीकार किए जान पर हम आपसे यह कहना चाहेंगे कि, जैसे आपको दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सभी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख असाताकारक है, अप्रिय है, अशान्तिजनक है और महाभयंकर है।' ऐसा मैं कहता हूँ।

### अध्ययन-४ - उद्देशक-३

### सूत्र - १४७

इस (पूर्वोक्त अहिंसादि धर्म से) विमुख जो लोग हैं, उनकी उपेक्षा कर ! जो ऐसा करता है, वह समस्त मनुष्य लोक में अग्रणी विज्ञ है। तू अनुचिन्तन करके देख-जिन्होंने दण्ड का त्याग किया है, (वे ही श्रेष्ठ विद्वान होते हैं)। जो सत्त्वशील मनुष्य धर्म के सम्यक् विशेषज्ञ होते हैं, वे ही कर्म का क्षय करते हैं। ऐसे मनुष्य धर्मवेत्ता होते हैं, अतएव वे सरल होते हैं, शरीर के प्रति अनासक्त या कषायरूपी अर्चा को विनष्ट किये हुए होते हैं।

इस दुःख को आरम्भ से उत्पन्न हुआ जानकर (समस्त हिंसा का त्याग करना चाहिए) ऐसा समत्वदर्शियों ने कहा है। वे सब प्रावादिक होते हैं, वे दुःख को जानने में कुशल होते हैं। इसलिए वे कर्मों को सब प्रकार से जानकर उनको त्याग करने का उपदेश देते हैं।

### सूत्र - १४८

यहाँ (अर्हत्प्रवचनमें) आज्ञा का आकांक्षी पण्डित अनासक्त होकर एकमात्र आत्मा को देखता हुआ, शरीर को प्रकम्पित कर डाले। अपने कषाय-आत्मा को कृश करे, जीर्ण कर डाले। जैसे अग्नि जीर्ण काष्ठ को शीघ्र जला डालत है, वैसे ही समाहित आत्मा वाला वीतराग पुरुष प्रकम्पित, कृश एवं जीर्ण हुए कषायात्मा को शीघ्र जला डालता है।

**सूत्र - १४९**

यह मनुष्य-जीवन अल्पायु है, यह सम्प्रेक्षा करता हुआ साधक अकम्पित रहकर क्रोध का त्याग करे। (क्रोधादि से) वर्तमानमें अथवा भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले दुःखों को जाने। क्रोधी पुरुष भिन्न-भिन्न नरकादि स्थानोंमें विभिन्न दुःखों का अनुभव करता है। प्राणीलोक को इधर-उधर भाग-दौड़ करते देख ! जो पुरुष पापकर्मों से निवृत्त हैं, वे अनिदान कहे गए हैं। इसलिए हे अतिविद्वान् ! तू (विषय-कषाय की अग्नि से) प्रज्वलित मत हो। - ऐसा मैं कहता हूँ

**अध्ययन-४ - उद्देशक-४****सूत्र - १५०**

मुनि पूर्व-संयोग का त्याग कर उपशम करके (शरीर का) आपीड़न करे, फिर प्रपीड़न करे और तब निष्पीड़न करे। मुनि सदा अविमना, प्रसन्नमना, स्वारत, समित, सहित और वीर होकर (इन्द्रिय और मन का) संयमन करे।

अप्रमत्त होकर जीवन-पर्यन्त संयम-साधन करने वाले, अनिवृत्तगामी मुनियों का मार्ग अत्यन्त दुरनुचर होता है। (संयम और मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले शरीर का) माँस और रक्त (विकट तपश्चरण द्वारा) कम कर।

यह (उक्त विकट तपस्वी) पुरुष संयमी, रागद्वेष का विजेता होने से पराक्रमी और दूसरों के लिए अनुकर-णीय आदर्श तथा मुक्तिगमन के योग्य होता है। वह ब्रह्मचर्य में (स्थित) रहकर शरीर या कर्मशरीर को (तपश्चरण आदि से) धुन डालता है।

**सूत्र - १५१**

नेत्र आदि इन्द्रियों पर नियंत्रण का अभ्यास करते हुए भी जो पुनः कर्म के स्रोत में गृद्ध हो जाता है तथा जो जन्म-जन्मों के कर्मबन्धनों को तोड़ नहीं पाता, संयोगों को छोड़ नहीं सकता, मोह-अन्धकार में निमग्न वह बाल-अज्ञानी मानव अपने आत्महित एवं मोक्षोपाय को नहीं जान पाता। ऐसे साधक को आज्ञा का लाभ नहीं प्राप्त होता। ऐसा मैं कहता हूँ।

**सूत्र - १५२**

जिसके (अन्तःकरण में भोगासक्ति का) पूर्व-संस्कार नहीं है और पश्चात् का संकल्प भी नहीं है, बीच में उसके (मन में विकल्प) कहाँ से होगा ? (जिसकी भोगकांक्षाएं शान्त हो गई हैं।) वही वास्तव में प्रज्ञानवान् है, प्रबुद्ध है और आरम्भ से विरत है। यह सम्यक् है, ऐसा तुम देखो-सोचो।

(भोगासक्ति के कारण) पुरुष बन्ध, वध, घोर परिताप और दारुण दुःख पाता है।

(अतः) पापकर्मों के बाह्य एवं अन्तरंग स्रोतों को बन्द करके इस संसार में मरणधर्मा प्राणियों के बीच तुम निष्कर्मदर्शी बन जाओ।

कर्म अपना फल अवश्य देते हैं, यह देखकर ज्ञानी पुरुष उनसे अवश्य ही निवृत्त हो जाता है।

**सूत्र - १५३**

हे आर्यो ! जो साधक वीर हैं, समित हैं, सहित हैं, संयत हैं, सतत शुभाशुभदर्शी हैं, (पापकर्मों से) स्वतः उपरत हैं, लोक जैसा है उसे वैसा ही देखते हैं, सभी दिशाओं में भली प्रकार सत्य में स्थित हो चूके हैं, उन के सम्यग् ज्ञान का हम कथन करेंगे, उसका उपदेश करेंगे।

(ऐसे) सत्यद्रष्टा वीर के कोई उपाधि होती है ? नहीं होती। - ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

## अध्ययन-५ – लोकसार

## उद्देशक-१

## सूत्र - १५४

इस लोक में जितने भी कोई मनुष्य सप्रयोजन या निष्प्रयोजन जीवों की हिंसा करते हैं, वे उन्हीं जीवों में विविध रूप में उत्पन्न होते हैं। उनके लिए शब्दादि काम का त्याग करना बहुत कठिन होता है।

इसलिए (वह) मृत्यु की पकड़ में रहता है, इसलिए अमृत (परमपद) से दूर होता है। वह (कामनाओं का निवारण करने वाला) पुरुष न तो मृत्यु की सीमा में रहता है और न मोक्ष से दूर रहता है।

## सूत्र - १५५

वह पुरुष (कामनात्यागी) कुश की नोंक को छुए हुए (बारंबार दूसरे जलकण पड़ने से) अस्थिर और वायु के झोंके से प्रेरित होकर गिरते हुए जलबिन्दु की तरह जीवन को (अस्थिर) जानता-देखता है। बाल, मन्द का जीवन भी इसी तरह अस्थिर है, परन्तु वह (जीवन के अनित्यत्व) को नहीं जान पाता। वह बाल-हिंसादि क्रूर कर्म उत्कृष्ट रूप से करता हुआ तथा उसी दुःख से मूढ़ उद्विग्न होकर वह विपरीत दशा को प्राप्त होता है। उस मोह से बार-बार गर्भ में आता है, जन्म-मरणादि पाता है। इस (जन्म-मरण की परंपरा) में उसे बारंबार मोह उत्पन्न होता है।

## सूत्र - १५६

जिसे संशय का परिज्ञान हो जाता है, उसे संसार के स्वरूप का परिज्ञान हो जाता है। जो संशय को नहीं जानता, वह संसार को भी नहीं जानता।

## सूत्र - १५७

जो कुशल है, वह मैथुन सेवन नहीं करता। जो ऐसा करके उसे छिपाता है, वह उस मूर्ख की दूसरी मूर्खता है। उपलब्ध कामभोगों का पर्यालोचन करके, सर्व प्रकार से जानकर उन्हें स्वयं सेवन न करे और दूसरों को भी कामभोगों के कटुफल का ज्ञान कराकर उनके अनासेवन की आज्ञा दे, ऐसा मैं कहता हूँ।

## सूत्र - १५८

हे साधको ! विविध कामभोगों में गृद्ध जीवों को देखो, जो नरक-तिर्यच आदि यातना-स्थानों में पच रहे हैं- उन्हीं विषयों से खिंचे जा रहे हैं। इस संसार प्रवाह में उन्हीं स्थानों का बारंबार स्पर्श करते हैं। इस लोक में जितने भी मनुष्य आरम्भजीवी हैं, वे इन्हीं (विषयासक्तियों) के कारण आरम्भजीवी हैं। अज्ञानी साधक इस संयमी जीवन में भी विषय-पिपासा से छटपटाता हुआ अशरण को ही शरण मानकर पापकर्मों में रमण करता है।

इस संसार के कुछ साधक अकेले विचरण करते हैं। यदि वह साधक अत्यन्त क्रोधी हैं, अतीव अभिमानी हैं, अत्यन्त मायी हैं, अति लोभी हैं, भोगोंमें अत्यासक्त हैं, नट की तरह बहुरूपिया हैं, अनेक प्रकार की शठता करता है, अनेक प्रकार के संकल्प करता है, हिंसादि आस्रवोंमें आसक्त रहता है, कर्मरूपी पलीते से लिपटा हुआ है, मैं भी साधु हूँ, धर्माचरण के लिए उद्यत हुआ हूँ, इस प्रकार से उथितवाद बोलता है, 'मुझे कोई देख न ले' इस आशंका से छिप-छिपकर अनाचार करता है, वह यह सब अज्ञान और प्रमाद दोष से सतत मूढ़ बना (है), वह मोहमूढ़ धर्म नहीं जानता।

हे मानव ! जो लोग प्रजा (विषय-कषायों) से आर्त्त-पीड़ित हैं, कर्मबन्धन करने में ही चतुर हैं, जो आश्रवों से विरत नहीं हैं, जो अविद्या से मोक्ष प्राप्त होना बतलाते हैं, वे संसार के भंवर-जाल में बराबर चक्कर काटते रहते हैं। - ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ – उद्देशक-२

## सूत्र - १५९

इस मनुष्य लोक में जितने भी अनारम्भजीवी हैं, वे (अनारम्भ-प्रवृत्त गृहस्थों) के बीच रहते हुए भी अनारम्भजीवी हैं। इस सावद्य से उपरत अथवा आर्हतशासन में स्थित अप्रमत्त मुनि खयह सन्धि हैं। - ऐसा देखकर उसे क्षीण करता हुआ (क्षणभर भी प्रमाद न करे)।

‘इस औदारिक शरीर का यह वर्तमान क्षण है, इस प्रकार जो क्षणान्वेषी है, (वह सदा अप्रमत्त रहता है)। यह (अप्रमाद का) मार्ग आर्यों ने बताया है।

(साधक मोक्षसाधना के लिए) उत्थित होकर प्रमाद न करे। प्रत्येक का दुःख और सुख (अपना-अपना स्वतंत्र होता है) यह जानकर प्रमाद न करे।

इस जगत में मनुष्य पृथक्-पृथक् विभिन्न अध्यवसाय वाले होते हैं, (इसलिए) उनका दुःख भी पृथक्-पृथक् होता है - ऐसा तीर्थकरों ने कहा है।

वह साधक किसी भी जीव की हिंसा न करता हुआ, वस्तु के स्वरूप को अन्यथा न कहे। परीषहों और उपसर्गों का स्पर्श हो तो उनसे होने वाले दुःखस्पर्शों को विविध उपायों से प्रेरित होकर समभावपूर्वक सहन करे।

### सूत्र - १६०

ऐसा साधक शमिता या समता का पारगामी, कहलाता है।

जो साधक पापकर्मों में आसक्त नहीं है, कदाचित् उन्हें आतंक स्पर्श करे, ऐसे प्रसंग पर धीर (वीर) तीर्थकर महावीर न कहा कि ‘उन दुःखस्पर्शों को (समभावपूर्वक) सहन करे।’

यह प्रिय लगने वाला शरीर पहले या पीछे अवश्य छूट जाएगा। इस रूप-देह के स्वरूप को देखो, छिन्न-भिन्न और विध्वंस होना, इसका स्वभाव है। यह अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत है, इसमें उपचय-अपचय होता है, परिवर्तन होते रहना इसका स्वभाव है।

### सूत्र - १६१

जो आत्म-रमण रूप आयतन में लीन है, मोह ममता से मुक्त है, उस हिंसादि विरत साधक के लिए संसार-भ्रमण का मार्ग नहीं है - ऐसा मैं कहता हूँ।

### सूत्र - १६२

इस जगत में जितने भी प्राणी परिग्रहवान हैं, वे अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त वस्तु का परिग्रहण करते हैं। वे इनमें (मूर्च्छा के कारण) ही परिग्रहवान हैं। यह परिग्रह ही परिग्रहियों के लिए महाभय का कारण होता है। साधकों! असंयमी-परिग्रही लोगों के वित्त-या वृत्त को देखो। (इन्हें भी महान भयरूप समझो)।

जो (परिग्रहजनित) आसक्तियों को नहीं जानता, वह महाभय को पाता है।

### सूत्र - १६३

(परिग्रह महाभय का हेतु है) यह सम्यक् प्रकार से प्रतिबुद्ध है और सुकथित है, यह जानकर परमचक्षुष्मान् पुरुष! तू (परिग्रह से मुक्त होने) पुरुषार्थ कर। (जो परिग्रह से विरत हैं) उनमें ही ब्रह्मचर्य होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

मैंने सूना है, मेरी आत्मा में यह अनुभूत हो गया है कि बन्ध और मोक्ष तुम्हारी आत्मा में ही स्थित हैं। इस परिग्रह से विरत अनगार परीषहों को मृत्युपर्यन्त जीवनभर सहन करे।

जो प्रमत्त हैं, उन्हें निर्ग्रन्थ धर्म से बाहर समझ (देख)। अतएव अप्रमत्त होकर परिव्रजन-विचरण कर। (और) इस (परिग्रहविरति रूप) मुनिधर्म का सम्यक् परिपालन कर। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ - उद्देशक-३

### सूत्र - १६४

इस लोक में जितने भी अपरिग्रही साधक हैं, वे इन धर्मोपकरण आदि में (मूर्च्छा-ममता न रखने के कारण) ही अपरिग्रही हैं। मेधावी साधक (आगमरूप) वाणी सूनकर तथा पण्डितों के वचन पर चिन्तन-मनन करके (अपरिग्रही) बने। आर्यों (तीर्थकरों) ने ‘समता में धर्म कहा है।’

(भगवान महावीर ने कहा) जैसे मैंने ज्ञान-दर्शन-चारित्र-इन तीनों की सन्धिरूप साधना की है, वैसी साधना अन्यत्र दुःसाध्य है। इसलिए मैं कहता हूँ - (तुम मोक्षमार्ग की इस समन्वित साधना में पराक्रम करो), अपनी शक्ति को छिपाओ मत।

**सूत्र - १६५**

(इस मुनिधर्म में मोक्ष-मार्ग साधक तीन प्रकार के होते हैं) - एक वह होता है, जो पहले साधना के लिए उठता है और बाद में (जीवन पर्यन्त) उत्थित ही रहता है। दूसरा वह है - जो पहले साधना के लिए उठता है, किन्तु बाद में गिर जाता है। तीसरा वह होता है - जो न तो पहले उठता है और न ही बाद में गिरता है।

जो साधक लोक को परिज्ञा से जान और त्याग कर पुनः उसी का आश्रय लेता या ढूँढ़ता है, वह भी वैसा ही (गृहस्थतुल्य) हो जाता है।

**सूत्र - १६६**

इस (उत्थान-पतन के कारण) को केवलज्ञानालोक से जानकर मुनिन्द्र ने कहा-मुनि आज्ञा में रुचि रखे, वह पण्डित है, अतः स्नेह से दूर रहे। रात्रि के प्रथम और अन्तिम भाग में (स्वाध्याय में) यत्नवान रहे, सदा शील का सम्प्रेक्षण करे (लोक में सारभूत तत्त्व को) सूनकर काम और लोभेच्छा से मुक्त हो जाए।

इसी (कर्म-शरीर) के साथ युद्ध कर, दूसरों के साथ युद्ध करने में तुझे क्या मिलेगा ?

**सूत्र - १६७**

(अन्तर-भाव) युद्ध के योग अवश्य ही दुर्लभ है। जैसे कि तीर्थकरों ने इस (भावयुद्ध) के परिज्ञा और विवेक (ये दो शस्त्र) बताए हैं।

(मोक्ष-साधना के लिए उत्थित होकर) भ्रष्ट होनेवाला अज्ञानी साधक गर्भ आदि में फँस जाता है। इस अर्हत् शासनमें यह कहा जाता है - रूप (तथा रसादि)में एवं हिंसामें (आसक्त होनेवाला उत्थित होकर भी पतित हो जाता है)

केवल वही एक मुनि मोक्षपथ पर अभ्यस्त रहता है, जो लोक का अन्यथा उत्प्रेक्षण करता रहा है अथवा जो लोक की उपेक्षा करता रहता है।

इस प्रकार कर्म को सम्यक् प्रकार जानकर वह सब प्रकार से हिंसा नहीं करता, संयम का आचरण करता है, (अकार्यमें प्रवृत्त होने पर) धृष्टता नहीं करता। प्रत्येक प्राणी का सुख अपना-अपना होता है, यह देखता हुआ (वह किसी की हिंसा न करे)।

मुनि समस्त लोक में कुछ भी आरम्भ तथा प्रशंसा का अभिलाषी होकर न करे। मुनि अपने एकमात्र लक्ष्य - मोक्ष की ओर मुख करके (चले), वह (मोक्षमार्ग से) विपरीत दिशाओं का तेजी से पार कर जाए, विरक्त होकर चले, स्त्रियों के प्रति अरत रहे।

**सूत्र - १६८**

संयमधनी मुनि के लिए सर्व समन्वागत प्रज्ञारूप अन्तःकरण से पापकर्म अकरणीय है, अतः साधक उनका अन्वेषण न करे। जिस सम्यक् को देखते हो, वह मुनित्व को देखते हो, जिस मुनित्व को देखते हो, वह सम्यक् को देखते हो। (सम्यक्त्व) का सम्यक् रूप से आचरण करना उन साधकों द्वारा शक्य नहीं है, जो शिथिल हैं, आसक्ति-मूलक स्नेह से आर्द्र बने हुए हैं, विषयास्वादन में लोलुप हैं, वक्राचारी हैं, प्रमादी हैं, जो गृहवासी हैं।

मुनि मुनित्व ग्रहण करके स्थूल और सूक्ष्म शरीर को प्रकम्पित करें।

समत्वदर्शी वीर प्रान्त और रूखा आहारादि सेवन करते हैं।

इस जन्म-मृत्यु के प्रवाह को तैरने वाला मुनि तीर्ण, मुक्त और विरत कहलाता है। - ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-५ - उद्देशक-४****सूत्र - १६९**

जो भिक्षु (अभी तक) अव्यक्त अवस्थामें है, उसका अकेले ग्रामानुग्राम विहार करना दुर्यात् और दुष्पराक्रम है

**सूत्र - १७०**

कई मानव थोड़े-से प्रतिकूल वचन सूनकर भी कुपित हो जाते हैं। स्वयं को उन्नत मानने वाला अभिमानी मनुष्य प्रबल मोह से मूढ़ हो जाता है। उसको एकाकी विचरण करते हुए अनेक प्रकार की उपसर्गजनित एवं रोग-

आतंक आदि परीषहजनित संबाधाएं बार-बार आती हैं, तब उस अज्ञानी के लिए उन बाधाओं को पार करना अत्यंत कठिन होता है। (ऐसी अव्यक्त अपरिपक्व अवस्था में - मैं अकेला विचरण करूँ), ऐसा विचार तुम्हारे मन में भी न हो

यह कुशल (महावीर) का दर्शन/उपदेश है। अतः परिपक्व साधक उस (वीतराग महावीर के दर्शनमें) ही एकमात्र द्रष्टि रखे, उसी के द्वारा प्ररूपित विषय-कषायासक्ति से मुक्ति में मुक्ति माने, उसी को आगे रखकर विचरण करे, उसीका संज्ञान सतत सब कार्यों में रखे, उसीके सान्निध्य में तल्लीन होकर रहे। मुनि यतनापूर्वक विहार करे, चित्त को गति में एकाग्र कर, मार्ग का सतत अवलोकन करते हुए चले। जीव-जन्तु को देखकर पैरों को आगे बढ़ने से रोक ले और मार्ग में आने वाले प्राणियों को देखकर गमन करे।

### सूत्र - १७१

वह भिक्षु जाता हुआ, वापस लौटता हुआ, अंगों को सिकोड़ता हुआ, फैलाता समस्त अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर, सम्यक् प्रकार से परिमार्जन करता हुआ समस्त क्रियाएं करे।

किसी समय (यतनापूर्वक) प्रवृत्ति करते हुए गुणसमित अप्रमादी मुनि के शरीर का संस्पर्श पाकर प्राणी परिताप पाते हैं। कुछ प्राणी ग्लानि पाते हैं अथवा कुछ प्राणी मर जाते हैं, तो उसके इस जन्म में वेदन करने योग्य कर्म का बन्ध हो जाता है। (किन्तु) आकुट्टि से प्रवृत्ति करते हुए जो कर्मबन्ध होता है, उसका (क्षय) जपरिज्ञा से जानकर दस प्रकार के प्रायश्चित्त में से किसी प्रायश्चित्त से करे।

इस प्रकार उसका (कर्मबन्ध का) विलय अप्रमाद (से यथोचित प्रायश्चित्त से) होता है, ऐसा आगमवेत्ता शास्त्रकार कहते हैं।

### सूत्र - १७२

वह प्रभूतदर्शी, प्रभूत परिज्ञानी, उपशान्त, समिति से युक्त, सहित, सदा यतनाशील या इन्द्रियजयी अप्रमत्त मुनि (उपसर्ग करने) के लिए उद्यत स्त्रीजन को देखकर अपने आपका पर्यालोचन करता है - 'यह स्त्रीजन मेरा क्या कर लेगा?' वह स्त्रियाँ परम आराम हैं। (किन्तु मैं तो सहज आत्मिक-सुख से सुखी हूँ, ये मुझे क्या सुख देंगी?)

ग्रामधर्म-(इन्द्रिय-विषयवासना) से उत्पीड़ित मुनि के लिए मुनिन्द्र तीर्थकर महावीर भगवान ने यह उपदेश दिया है कि- वह निर्बल आहार करे, ऊनोदरिका भी करे, ऊर्ध्व स्थान होकर कायोत्सर्ग करे-(आतापना ले), ग्रामानुग्राम विहार भी करे, आहार का परित्याग करे, स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होने वाले मन का परित्याग करे।

(स्त्री-संग में रत अतत्त्वदर्शियों को कहीं-कहीं) पहले दण्ड मिलता है और पीछे (दुःखों का) स्पर्श होता है, अथवा कहीं-कहीं पहले (स्त्री-सुख) स्पर्श मिलता है, बाद में उसका दण्ड (मार-पीट, आदि) मिलता है।

इसलिए ये काम-भोग कलह और आसक्ति पैदा करने वाले होते हैं। स्त्री-संग से होने वाले ऐहिक एवं पार-लौकिक दुष्परिणामों को आगम के द्वारा तथा अनुभव द्वारा समझकर आत्मा को उनके अनासेवन की आज्ञा दे। ऐसा मैं कहता हूँ।

ब्रह्मचारी कामकथा-न करे, वासनापूर्वक द्रष्टि से स्त्रियों के अंगोपांगों को न देखे, परस्पर कामुक भावों का प्रसारण न करे, उन पर ममत्व न करे, शरीर की साज-सज्जा से दूर रहे, वचनगुप्ति का पालक वाणी से कामुक आलाप न करे, मन को भी कामवासना की ओर जाते हुए नियंत्रित करे, सतत पाप का परित्याग करे। इस (अब्रह्मचर्य-विरति रूप) मुनित्व को जीवन में सम्यक् प्रकार से बसा ले। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ - उद्देशक-५

### सूत्र - १७३

मैं कहता हूँ-जैसे एक जलाशय जो परिपूर्ण है, समभूभाग में स्थित है, उसकी रज उपशान्त है, (अनेक जलचर जीवों का) संरक्षण करता हुआ, वह जलाशय स्रोत के मध्य में स्थित है। (ऐसा ही आचार्य होता है)। इस मनुष्यलोक में उन (पूर्वोक्त स्वरूप वाले) सर्वतः गुप्त महर्षियों को तू देख, जो उत्कृष्ट ज्ञानवान् (आगमश्रुत-ज्ञाता) हैं, प्रबुद्ध हैं और आरम्भ से विरत हैं। यह (मेरा कथन) सम्यक् है, इसे तुम अपनी तटस्थ बुद्धि से देखो।

वे काल प्राप्त होने की कांक्षा-समाधि-मरण की अभिलाषा से (जीवन के अन्तिम क्षण तक मोक्षमार्ग में) परिव्रजन (उद्यम) करते हैं। ऐसा मैं कहता हूँ।

### सूत्र - १७४

विचिकित्सा-प्राप्त आत्मा समाधि प्राप्त नहीं कर पाता। कुछ लघुकर्मासित (बद्ध) आचार्य का अनुगमन करते हैं, कुछ असित (अप्रतिबद्ध) भी विचिकित्सादि रहित होकर (आचार्य का) अनुगमन करते हैं। इन अनुगमन करने वालों के बीच में रहता हुआ अनुगमन न करने वाला कैसे उदासीन नहीं होगा ?

### सूत्र - १७५

वही सत्य है, जो तीर्थकरों द्वारा प्ररूपित है।

### सूत्र - १७६

श्रद्धावान् सम्यक् प्रकार से अनुज्ञा शील एवं प्रव्रज्या को सम्यक् स्वीकार करने या पालने वाला (१) कोई मुनि जिनोक्त तत्त्व को सम्यक् मानता है और उस समय (उत्तरकाल में) भी सम्यक् (मानता) रहता है। (२) कोई प्रव्रज्याकाल में सम्यक् मानता है, किन्तु बाद में किसी समय उसका व्यवहार असम्यक् हो जाता है। (३) कोई मुनि (प्रव्रज्याकाल में) असम्यक् मानता है किन्तु एक दिन सम्यक् हो जाता है। (४) कोई साधक उसे असम्यक् मानता है और बाद में भी असम्यक् मानता रहता है। (५) (वास्तव में) जो साधक सम्यक् हो या असम्यक्, उसकी सम्यक् उत्प्रेक्षा के कारण वह सम्यक् ही होती है। (६) जो साधक किसी वस्तु को असम्यक् मान रहा है, वह सम्यक् हो या असम्यक्, उसके लिए वह असम्यक् ही होती है।

(इस प्रकार) उत्प्रेक्षा करने वाला उत्प्रेक्षा नहीं करने वाले से कहता है - सम्यक् भाव समभाव - माध्यस्थ भाव से उत्प्रेक्षा करो। इस (पूर्वोक्त) प्रकार से व्यवहार में होने वाली सम्यक्-असम्यक् की गुत्थी सुलझाई जा सकती है।

तुम (संयम में सम्यक् प्रकार से) उत्थित और स्थिति की गति देखो। तुम बाल भाव में भी अपने-आपको प्रदर्शित मत करो।

### सूत्र - १७७

तू वही है, जिसे तू हनन योग्य मानता है; तू वही है, जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है; तू वही है, जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है; तू वही है, जिसे तू दास बनाने हेतु ग्रहण करने योग्य मानता है; तू वही है, जिसे तू मारने योग्य मानता है। ज्ञानी पुरुष ऋजु होते हैं, वह प्रतिबोध पाकर जीने वाला होता है। इसके कारण वह स्वयं हनन नहीं करता और न दूसरों से हनन करवाता है। (न ही हनन करने वाले का अनुमोदन करता है।) कृत-कर्म के अनुरूप स्वयं को ही उसका फल भोगना पड़ता है, इसलिए किसी का हनन करने की ईच्छा मत करो।

### सूत्र - १७८

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है और जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। क्योंकि ज्ञानों से आत्मा जानता है, इसलिए वह आत्मा है। उस (ज्ञान की विभिन्न परिणतियों) की अपेक्षा से आत्मा की प्रतीति होती है। यह आत्म-वादी सम्यक्तता का परिगामी कहा गया है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ - उद्देशक-६

### सूत्र - १७९

कुछ साधक अनाज्ञा में उद्यमी होते हैं और कुछ साधक आज्ञा में अनुद्यमी होते हैं। यह तुम्हारे जीवन में न हो। यह (अनाज्ञा में अनुद्यम और आज्ञा में उद्यम) मोक्ष मार्ग-दर्शन-कुशल तीर्थकर का दर्शन है।

साधक उसी में अपनी दृष्टि नियोजित करे, उसी मुक्ति में अपनी मुक्ति माने, सब कार्यों में उसे आगे करके प्रवृत्त हो, उसी के संज्ञानस्मरण में संलग्न रहे, उसी में चित्त को स्थिर कर दे, उसी का अनुसरण करे।

### सूत्र - १८०

जिसने परीषह-उपसर्गों-बाधाओं तथा घातिकर्मों को पराजित कर दिया है, उसीने तत्त्व का साक्षात्कार किया

है। जो ईससे अभिभूत नहीं होता, वह निरालम्बनता पाने में समर्थ होता है।

जो महान् होता है उसका मन (संयम से) बाहर नहीं होता।

प्रवाद (सर्वज्ञ तीर्थकरों के वचन) से प्रवाद (विभिन्न दार्शनिकों या तीर्थिकों के बाद) को जानना चाहिए। (अथवा) पूर्वजन्म की स्मृति से, तीर्थकर से प्रश्न का उत्तर पाकर, या किसी अतिशय ज्ञानी या निर्मल श्रुतज्ञानी आचार्यादि से सूनकर (यथार्थ तत्त्व को जाना जा सकता है।)

### सूत्र - १८१

मेधावी निर्देश (तीर्थकरादि के आदेश) का अतिक्रमण न करे। वह सब प्रकार से भली-भाँति विचार करके सम्पूर्ण रूप से पूर्वोक्त जाति-स्मरण आदि तीन प्रकार से साम्य को जाने।

इस सत्य (साम्य) के परिशीलन में आत्म-रमण की परिज्ञा करके आत्मलीन होकर विचरण करे। मोक्षार्थी अथवा संयम-साधना द्वारा निष्ठितार्थ वीर मुनि आगम-निर्दिष्ट अर्थ या आदेश के अनुसार सदा पराक्रम करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

### सूत्र - १८२

ऊपर नीचे, और मध्य में स्रोत हैं। ये स्रोत कर्मों के आस्रवद्वार हैं, जिनके द्वारा समस्त प्राणियों को आसक्ति पैदा होती है, ऐसा तुम देखो।

### सूत्र - १८३

(राग-द्वेषरूप) भावावर्त का निरीक्षण करके आगमविद् पुरुष उससे विरत हो जाए। विषयासक्तियों के या आस्रवों के स्रोत हटाकर निष्क्रमण करनेवाला यह महान् साधक अकर्म होकर लोक को प्रत्यक्ष जानता, देखता है।

(इस सत्य का) अन्तर्निरीक्षण करनेवाला साधक इस लोकमें संसार-भ्रमण और उसके कारण की परिज्ञा करके उन (विषय-सुखों) की आकांक्षा नहीं करता।

### सूत्र - १८४

इस प्रकार वह जीवों की गति-आगति के कारणों का परिज्ञान करके व्याख्यानरत मुनि जन्म-मरण के वृत्त मार्ग को पार कर जाता है।

(उस मुक्तात्मा का स्वरूप या अवस्था बताने के लिए) सभी स्वर लौट जाते हैं-वहाँ कोई तर्क नहीं है। वहाँ मति भी प्रवेश नहीं कर पाती, वह (बुद्धि ग्राह्य नहीं है)। वहाँ वह समस्त कर्ममल से रहित ओजरूप प्रतिष्ठान से रहित और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ही है।

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है और न परिमण्डल है। वह न कृष्ण है, न नीला है, न लाल है, न पीला है और न शुक्ल है। न सुगन्ध(युक्त) है और न दुर्गन्ध(युक्त) है। वह न तिक्त है, न कड़वा है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है, वह न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न ठण्डा है, न गर्म है, न चिकना है, और न रूखा है। वह कायवान् नहीं है। वह जन्मधर्मा नहीं है, वह संगरहित है, वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है।

वह (मुक्तात्मा) परिज्ञ है, संज्ञ है। वह सर्वतः चैतन्यमय है। (उसके लिए) कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी (अमूर्त्त) सत्ता है। वह पदातीती है, उसको बोध कराने के लिए कोई पद नहीं है।

### सूत्र - १८५

वह न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है। बस इतना ही है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-६ – धूत

## उद्देशक-१

## सूत्र - १८६

इस मर्त्यलोक में मनुष्यों के बीच में ज्ञाता वह पुरुष आख्यान करता है। जिसे ये जीव-जातियाँ सब प्रकार से भली-भाँति ज्ञात होती हैं, वही विशिष्ट ज्ञान का सम्यग् आख्यान करता है।

वह (सम्बुद्ध पुरुष) इस लोक में उनके लिए मुक्ति-मार्ग का निरूपण करता है, जो (धर्माचरण के लिए) सम्यक् उद्यत है, मन, वाणी और काया से जिन्होंने दण्डरूप हिंसा का त्याग कर स्वयं को संयमित किया है, जो समाहित हैं तथा सम्यग् ज्ञानवान हैं। कुछ (विरले लघुकर्मा) महान् वीर पुरुष इस प्रकार के ज्ञान के आख्यान को सूनकर (संयममें) पराक्रम भी करते हैं। (किन्तु) उन्हें देखो, जो आत्मप्रज्ञा से शून्य हैं, इसलिए (संयममें) विषाद पाते हैं

मैं कहता हूँ-जैसे एक कछुआ होता है, उसका चित्त (एक) महाहृद में लगा हुआ है। वह सरोवर शैवाल और कमल के पत्ते से ढका हुआ है। वह कछुआ उन्मुक्त आकाश को देखने के लिए (कहीं) छिद्र को भी नहीं पा रहा है। जैसे वृक्ष अपने स्थान को नहीं छोड़ते, वैसे ही कुछ लोग हैं (जो अनेक सांसारिक कष्ट, आदि बार-बार पाते हुए भी गृहवास को नहीं छोड़ते)।

इसी प्रकार कई (गुरुकर्मा) लोग अनेक कुलों में जन्म लेते हैं, किन्तु रूपादि विषयों में आसक्त होकर (अनेक प्रकार के दुःखों से, उपद्रवों से आक्रान्त होने पर) करुण विलाप करते हैं, (लेकिन गृहवास को नहीं छोड़ते)। ऐसा व्यक्ति दुःखों के हेतुभूत कर्मों से मुक्त नहीं हो पाते।

अच्छा तू देख वे (मूढ़ मनुष्य) उन कुलों में आत्मत्व के लिए निम्नोक्त रोगों के शिकार हो जाते हैं।

## सूत्र - १८७-१८९

गण्डमाला, कोढ़, राजयक्ष्मा, अपस्मार, काणत्व, जड़ता, कुणित्व, कुबड़ापन। उदररोग, मूकरोग, शोथरोग, भस्मकरोग, कम्पनवात, पंगुता, श्लीपदरोग और मधुमेह।

ये सोलह रोग क्रमशः कहे गए हैं। इसके अनन्तर आतंक और अप्रत्याशित (दुःखों के) स्पर्श प्राप्त होते हैं।

## सूत्र - १९०

उन मनुष्यों की मृत्यु का पर्यालोचन कर, उपपात और च्यवन को जानकर तथा कर्मों के विपाक का भली-भाँति विचार करके उसके यथातथ्य को सूनो। (इस संसार में) ऐसे भी प्राणी बताए गए हैं, जो अंधे होते हैं और अन्धकार में ही रहते हैं। वे प्राणी उसीको एक बार या अनेक बार भोगकर तीव्र और मन्द स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करते हैं। बुद्धों (तीर्थंकरों) ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।

(और भी अनेक प्रकार के) प्राणी होते हैं, जैसे-वर्षज, रसज, उदक रूप-एकेन्द्रिय अप्कायिक जीव या जल में उत्पन्न होने वाले कृमि या जलचर जीव, आकाशगामी पक्षी आदि वे प्राणी अन्य प्राणियों को कष्ट देते हैं।

(अतः) तू देख, लोक में महान् भय है।

## सूत्र - १९१

संसार में जीव बहुत दुःखी हैं। मनुष्य काम-भोगों में आसक्त हैं। इस निर्बल शरीर को सुख देने के लिए प्राणियों के वध की ईच्छा करते हैं। वेदना से पीड़ित वह मनुष्य बहुत दुःख पाता है। इसलिए वह अज्ञानी प्राणियों को कष्ट देता है।

इन (पूर्वोक्त) अनेक रोगों को उत्पन्न हुए जानकर आतुर मनुष्य (चिकित्सा के लिए दूसरे प्राणियों को) परिताप देते हैं। तू (विवेकद्रष्टि से) देख। ये (प्राणिघातक-चिकित्साविधियाँ कर्मोदयजनित रोगों का शमन करने में) समर्थ नहीं हैं। (अतः) इनसे तुमको दूर रहना चाहिए।

मुनिवर ! तू देख ! यह (हिंसामूलक चिकित्सा) महान् भयरूप है। (इसलिए चिकित्सा के निमित्त भी) किसी प्राणी का अतिपात/वध मत कर।

**सूत्र - १९२**

हे मुने ! समझो, सूनने की ईच्छा करो, मैं धूतवाद का निरूपण करूँगा । (तुम) इस संसार में आत्मत्व से प्रेरित होकर उन-उन कुलों में शुक्र-शोणित के अभिषेक-से माता के गर्भ में कललरूप हुए, फिर अर्बुद और पेशी रूप बने, तदनन्तर अंगोपांग-स्नायु, नस, रोम आदि से क्रम से अभिनिष्पन्न हुए, फिर प्रसव होकर संवर्द्धित हुए, तत्पश्चात् अभिसम्बुद्ध हुए, फिर धर्म-श्रवण करके विरक्त होकर अभिनिष्क्रमण किया । इस प्रकार क्रमशः महामुनि बनते हैं ।

**सूत्र - १९३**

मोक्षमार्ग-संयम में पराक्रम करते हुए उस मुनि के माता-पिता आदि करुण विलाप करते हुए यों कहते हैं- तुम हमें मत छोड़ो, हम तुम्हारे अभिप्राय के अनुसार व्यवहार करेंगे, तुम पर हमें ममत्व है । इस प्रकार आक्रन्द करते हुए वे रुदन करते हैं । ..... (वे रुदन करते हुए स्वजन कहते हैं) जिसने माता-पिता को छोड़ दिया है, ऐसा व्यक्ति न मुनि हो सकता है और न ही संसार-सागर को पार कर सकता है ।

वह मुनि (पारिवारिक जनों का विलाप सूनकर) उनकी शरण में नहीं जाता । वह तत्त्वज्ञ पुरुष भला कैसे उस (गृहवास) में रमण कर सकता है ? मुनि इस ज्ञान को सदा अच्छी तरह बसा लें । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-६ – उद्देशक-२****सूत्र - १९४**

(काम-रोग आदि से) आतुर लोक (समस्त प्राणिजगत) को भलीभाँति जानकर, पूर्व संयोग को छोड़कर, उपशम को प्राप्त कर, ब्रह्मचर्य में बास करके बसे (संयमी साधु) अथवा (सराग साधु) धर्म को यथार्थ रूप से जानकर भी कुछ कुशील व्यक्ति उस धर्म का पालन करने में समर्थ नहीं होते ।

**सूत्र - १९५**

वे वस्त्र, पात्र, कम्बल एवं पाद-प्रोछन को छोड़कर उत्तरोत्तर आने वाले दुःस्सह परीषहों को नहीं सह सकने के कारण (मुनि-धर्म का त्याग कर देते हैं) ।

विविध कामभोगों को अपनाकर गाढ़ ममत्व रखने वाले व्यक्ति का तत्काल (प्रव्रज्या-परित्याग के) अन्त-मूर्हूर्त्त में या अपरिमित समय में शरीर छूट सकता है ।

इस प्रकार वे अनेक विघ्नों और द्वन्द्वों या अपूर्णताओं से युक्त कामभोगों से अतृप्त ही रहते हैं ।

**सूत्र - १९६**

यहाँ कई लोग, धर्म को ग्रहण करके निर्ममत्वभाव से धर्मोपकरणादि से युक्त होकर, अथवा धर्माचरण में इन्द्रिय और मन को समाहित करके विचरण करते हैं । वह अलिप्त/अनासक्त और सुदृढ़ रहकर (धर्माचरण करते हैं)

समग्र आसक्ति को छोड़कर वह (धर्म के प्रति) प्रणत महामुनि होता है, (अथवा) वह महामुनि संयम में या कर्मों को धूनने में प्रवृत्त होता है । (फिर वह महामुनि) सर्वथा संग का (त्याग) करके (यह भावना करे कि), 'मेरा कोई नहीं है, इसलिए मैं अकेला हूँ ।'

वह इस (तीर्थकर के संघ) में स्थित, विरत तथा (समाचारी में) यतनाशील अनगार सब प्रकार से मुण्डित होकर पैदल विहार करता है, जो अल्पवस्त्र या निर्वस्त्र है, वह अनियतवासी रहता है या अन्त-प्रान्तभोजी होता है, वह भी ऊनोदरी तप का सम्यक् प्रकार से अनुशीलन करता है ।

(कदाचित्) कोई विरोधी मनुष्य उसे गाली देता है, मारता-पीटता है, उसके केश उखाड़ता या खींचता है, पहले किये हुए किसी घृणित दुष्कर्म की याद दिलाकर कोई बकझक करता है, कोई व्यक्ति तथ्यहीन शब्दों द्वारा (सम्बोधित करता है), हाथ-पैर आदि काटने का झूठा दोषारोपण करता है; ऐसी स्थिति में मुनि सम्यक् चिन्तन द्वारा समभाव से सहन करे । उन एकजातीय और भिन्नजातीय परीषहों को उत्पन्न हुआ जानकर समभाव से सहन करता हुआ संयम में विचरण करे । (वह मुनि) लज्जाकारी और अलज्जाकारी (परीषहों को सम्यक् प्रकार से सहन करता हुआ विचरण करे) ।

**सूत्र - १९७**

सम्यग्दर्शन-सम्पन्न मुनि सब प्रकार की शंकाएं छोड़कर दुःख-स्पर्शों को समभाव से सहे । हे मानवो ! धर्म-क्षेत्र में उन्हें ही नग्न कहा गया है, जो मुनिधर्म में दीक्षित होकर पुनः गृहवास में नहीं आते ।

आज्ञा में मेरा धर्म है, यह उत्तर बाद इस मनुष्यलोक में मनुष्यों के लिए प्रतिपादित किया है । विषय से उपरत साधक ही इसका आसेवन करता है ।

वह कर्मों का परिज्ञान करके पर्याय (संयमी जीवन) से उसका क्षय करता है । इस (निर्ग्रन्थ संघ) में कुछ लघुकर्मों साधुओं द्वारा एकाकी चर्या स्वीकृत की जाती है । उसमें वह एकल-विहारी साधु विभिन्न कुलों से शुद्ध-एषणा और सर्वेषणा से संयम का पालन करता है ।

वह मेधावी (ग्राम आदि में) परिव्रजन करे । सुगन्ध या दुर्गन्ध से युक्त (जैसा भी आहार मिले, उसे समभाव से ग्रहण करे) अथवा एकाकी विहार साधना से भयंकर शब्दों को सूनकर या भयंकर रूपों को देखकर भयभीत न हो ।

हिंस्र प्राणी तुम्हारे प्राणों को क्लेश पहुँचाए, (उससे विचलित न हो) । उन परीषहजनित-दुःखों का स्पर्श होने पर धीर मुनि उन्हें सहन करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-६ – उद्देशक-३****सूत्र - १९८**

सतत सु-आख्यात धर्म वाला विधूतकल्पी (आचार का सम्यक् पालन करने वाला) वह मुनि आदान (मर्यादा से अधिक वस्त्रादि) का त्याग कर देता है ।

जो भिक्षु अचेलक रहता है, उस भिक्षु को ऐसी चिन्ता उत्पन्न नहीं होती कि मेरा वस्त्र सब तरह से जीर्ण हो गया है, इसलिए मैं वस्त्र की याचना करूँगा, फटे वस्त्र को सीने के लिए धागे की याचना करूँगा, फिर सूई की याचना करूँगा, फिर उस वस्त्र को साँधूँगा, उसे सीऊँगा, छोटा है इसलिए दूसरा टुकड़ा जोड़कर बड़ा बनाऊँगा, बड़ा है इसलिए फाड़कर छोटा बनाऊँगा, फिर उसे पहनूँगा और शरीर को ढकूँगा ।

अथवा अचेलत्व-साधनामें पराक्रम करते हुए निर्वस्त्र मुनि को बार-बार तिनकों का स्पर्श, सर्दों और गर्मों का तथा डाँस तथा मच्छरों का स्पर्श पीड़ित करता है । अचेलक मुनि उनमें से एक या दूसरे, नाना प्रकार के स्पर्शों को सहन करे । अपने आपको लाघवयुक्त जानता हुआ वह अचेलक एवं तितिक्षु भिक्षु तप से सम्पन्न होता है ।

भगवान ने जिस रूप में अचेलत्व का प्रतिपादन किया है उसे उसी रूप में जान-समझकर, सब प्रकार से सर्वात्मना सम्यक्त्व जाने । ..... जीवन के पूर्व भाग में प्रव्रजित होकर चिरकाल तक संयम में विचरण करनेवाले, चारित्र-सम्पन्न तथा संयम में प्रगति करने वाले महान वीर साधुओं ने जो (परीषहादि) सहन किये हैं, उसे तू देख ।

**सूत्र - १९९**

प्रज्ञावान मुनियों की भुजाएं कृश होती हैं, उनके शरीर में रक्त-माँस बहुत कम हो जाते हैं ।

संसार-वृद्धि की राग-द्वेष-कषायरूप श्रेणी को प्रज्ञा से जानकर छिन्न-भिन्न करके वह मुनि तीर्ण, मुक्त एवं विरत कहलाता है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

**सूत्र - २००**

चिरकाल से मुनिधर्म में प्रव्रजित, विरत और संयम में गतिशील भिक्षु का क्या अरति धर दबा सकती है ? (आत्मा के साथ धर्म का) संधान करने वाले तथा सम्यक् प्रकार से उत्थित मुनि को (अरति अभिभूत नहीं कर सकती) जैसे असंदिन द्वीप (यात्रियों के लिए) आश्वासन-स्थान होता है, वैसे ही आर्य द्वारा उपदिष्ट धर्म (संसार-समुद्र पार करने वालों के लिए आश्वासन-स्थान) होता है ।

मुनि (भोगों की) आकांक्षा तथा प्राण-वियोग न करने के कारण लोकप्रिय, मेधावी और पण्डित कहे जाते हैं । जिस प्रकार पक्षी के बच्चे का पालन किया जाता है, उसी प्रकार धर्म में जो अभी तक अनुत्थित हैं, उन शिष्यों का वे क्रमशः वाचना आदि के द्वारा रातदिन पालन-संवर्द्धन करते हैं । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**सूत्र - २०१**

इस प्रकार वे शिष्य दिन और रात में उन महावीर और प्रज्ञानवान द्वारा क्रमशः प्रशिक्षित किये जाते हैं ।

उनसे विशुद्ध ज्ञान पाकर उपशमभाव को छोड़कर कुछ शिष्य कठोरता अपनाते हैं । वे ब्रह्मचर्य में निवास करके भी उस आज्ञा को 'यह (तीर्थकरकी आज्ञा) नहीं है', ऐसा मानते हुए (गुरुजनोंके वचनोंकी अवहेलना करते हैं ।)

कुछ व्यक्ति (आचार्यादि द्वारा) कथित (दुष्परिणामों) को सून-समझकर 'हम (आचार्यादि से) सम्मत या उत्कृष्ट संयमी जीवन जीएंगे' इस प्रकार के संकल्प से प्रव्रजित होकर वे (मोहोदयवश) अपने संकल्प के प्रति सुस्थिर नहीं रहते । वे विविध प्रकार से जलते रहते हैं, कामभोगों में गृद्ध या रचे-पचे रहकर (तीर्थकरों द्वारा) प्ररूपित समाधि को नहीं अपनाते, शास्ता को भी वे कठोर वचन कह देते हैं ।

**सूत्र - २०२**

शीलवान, उपशान्त एवं संयम-पालन में पराक्रम करने वाले मुनियों को वे अशीलवान कहकर बदनाम करते हैं । यह उन मन्दबुद्धि लोगों की मूढ़ता है ।

**सूत्र - २०३**

कुछ संयम से निवृत्त हुए लोग आचार-विचार का बखान करते हैं, (किन्तु) जो ज्ञान से भ्रष्ट हो गए, वे सम्यग् दर्शन के विध्वंसक होकर (स्वयं चारित्र-भ्रष्ट हो जाते हैं ।)

**सूत्र - २०४**

कई साधक नत (समर्पित) होते हुए भी (मोहोदयवश) संयमी जीवन को बिगाड़ देते हैं । कुछ साधक (परीषहों से) स्पृष्ट होने पर केवल जीवन जीने के निमित्त से (संयम और संयमीवेश से) निवृत्त हो जाते हैं ।

उनका गृहवास से निष्क्रमण भी दुर्निष्क्रमण हो जाता है, क्योंकि साधारण जनों द्वारा भी वे निन्दनीय हो जाते हैं तथा (आसक्त होने से) वे पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र में वे नीचे के स्तर के होते हुए भी अपने आपको ही विद्वान् मानकर 'मैं ही सर्वाधिक विद्वान् हूँ', इस प्रकार से डींग मारते हैं । जो उनसे उदासीन रहते हैं, उन्हें वे कठोर वचन बोलते हैं । वे (उन मध्यस्थ मुनियों के पूर्व-आचरित) कर्म को लेकर बकवास करते हैं, अथवा असत्य आरोप लगाकर उन्हें बदनाम करते हैं । बुद्धिमान् मुनि (इन सबको अज्ञ एवं धर्म-शून्य जन की चेष्टा समझकर) अपने धर्म को भलीभाँति जाने-पहचाने ।

**सूत्र - २०५**

(धर्म से पतित को इस प्रकार अनुशासित करते हैं-) तू अधर्मार्थी है, बाल है, आरम्भार्थी है, (आरम्भ-कर्ताओं का) अनुमोदक है, (तू इस प्रकार कहता है-) प्राणियों का हनन करो, प्राणियों का वध करने वालों का भी अच्छी तरह अनुमोदन करता है । (भगवान ने) घोर धर्म का प्रतिपादन किया है, तू आज्ञा का अतिक्रमण कर उसकी अपेक्षा कर रहा है । वह (अधर्मार्थी) विषण्ण और वितर्द (हिंसक) कहा गया है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**सूत्र - २०६**

ओ (आत्मन् ! ) इस स्वार्थी स्वजन का मैं क्या करूँगा ? यह मानते और कहते हुए (भी) कुछ लोग माता, पिता, ज्ञातिजन और परिग्रह को छोड़कर वीर वृत्ति से मुनि धर्म में सम्यक् प्रकार से प्रव्रजित होते हैं; अहिंसक, सुव्रती और दान्त बन जाते हैं । दीन और पतित बनकर गिरते हुए साधकों को तू देख ! वे विषयों से पीड़ित कायर जन (व्रतों के) विध्वंसक हो जाते हैं ।

उनमें से कुछ साधकों की श्लाघारूप कीर्ति पापरूप हो जाती है, 'यह श्रमण विभ्रान्त है, विभ्रान्त है ।'

देख ! संयम से भ्रष्ट होने वाले कई मुनि उत्कृष्ट आचार वालों के बीच शिथिलाचारी, समर्पित मुनियों के बीच असमर्पित, विरत मुनियों के बीच अविरत तथा साधुओं के बीच (चारित्रहीन) होते हैं । (इस प्रकार संयम-भ्रष्ट साधकों को) निकट से भलीभाँति जानकर पण्डित, मेधावी, निष्ठितार्थ वीर मुनि सदा आगम के अनुसार (संयम में) पराक्रम करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-६ – उद्देशक-४

## सूत्र - २०७

वह (धूत/श्रमण) घरों में, गृहान्तरों में, ग्रामों में, ग्रामान्तरों में, नगरों में, नगरान्तरों में, जनपदों में या जनपदान्तरों में (आहारादि के लिए विचरण करते हुए) कुछ विद्वेषी जन हिंसक हो जाते हैं। अथवा (परीषद्‌हों के) स्पर्श प्राप्त होते हैं। उनसे स्पृष्ट होने पर धीर मुनि उन सबको सहन करे।

राग और द्वेष से रहित सम्यग्दर्शी एवं आगमज्ञ मुनि लोक पर दयाभाव पूर्वक सभी दिशाओं और विदिशाओं में (स्थित) जीवलोक को धर्म का आख्यान करे। उसका विभेद करके, धर्माचरण के सुफल का प्रतिपादन करे।

वह मुनि सदज्ञान सूनने के ईच्छुक व्यक्तियों के बीच, फिर वे चाहे उत्थित हों या अनुत्थित, शान्ति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव, लाघव एवं अहिंसा का प्रतिपादन करे। वह भिक्षु समस्त प्राणियों, सभी भूतों, सभी जीवों और समस्त सत्त्वों का हितचिन्तन करके धर्म का व्याख्यान करे।

## सूत्र - २०८

भिक्षु विवेकपूर्वक धर्म का व्याख्यान करता हुआ अपने आपको बाधा न पहुँचाए, न दूसरे को बाधा पहुँचाए और न ही अन्य प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को बाधा पहुँचाए। किसी भी प्राणी को बाधा न पहुँचाने वाला तथा जिससे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का वध हो, तथा आहारादि की प्राप्ति के निमित्त भी (धर्मोपदेश न करने वाला) वह महामुनि संसार-प्रवाह में डूबते हुए प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के लिए असंदीन द्वीप की तरह शरण होता है।

इस प्रकार वह (संयम में) उत्थित, स्थितात्मा, अस्नेह, अनासक्त, अविचल, चल, अध्यवसाय को संयम से बाहर न ले जाने वाला मुनि होकर परिव्रजन करे। वह सम्यग्दृष्टि मुनि पवित्र उत्तम धर्म को सम्यक्‌रूप में जानकर (कषायों और विषयों) को सर्वथा उपशान्त करे। इसके लिए तुम आसक्ति को देखो।

ग्रन्थी में गृद्ध और उनमें निमग्न बने हुए, मनुष्य कामों से आक्रान्त होते हैं। इसलिए मुनि निःसंग रूप संयम से उद्विग्न-खेदखिन्न न हो।

जिन संगरूप आरम्भों से हिंसक वृत्ति वाले मनुष्य उद्विग्न नहीं होते, ज्ञानी मुनि उन सब आरम्भों को सब प्रकार से, सर्वात्मना त्याग देते हैं। वे ही मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करने वाले होते हैं।

ऐसा मुनि त्रोटक कहलाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## सूत्र - २०९

शरीर के व्यापात को ही संग्रामशीर्ष कहा गया है। (जो मुनि उसमें हार नहीं खाता), वही (संसार का) पारगामी होता है।

आहत होने पर भी मुनि उद्विग्न नहीं होता, बल्कि लकड़ी के पाटिये की भाँति रहता है। मृत्युकाल निकट आने पर (विधिवत् संलेखना से) जब तक शरीर का भेद न हो, तब तक वह मरणकाल की प्रतीक्षा करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

**अध्ययन-७ – महापरिज्ञा****इस अध्ययन का नाम 'महापरिज्ञा' है, जो वर्तमान में अनुपलब्ध (विच्छिन्न) है।****अध्ययन-८ – विमोक्ष****उद्देशक-१****सूत्र - २१०**

मैं कहता हूँ - समनोज्ञ या असमनोज्ञ साधक को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल या पाद-प्रोँछन आदरपूर्वक न दे, न देने के लिए निमंत्रित करे और न उनका वैयावृत्य करे।

**सूत्र - २११**

असमनोज्ञ भिक्षु कदाचित् मुनि से कहे - (मुनिवर ! ) तुम इस बात को निश्चित समझ लो - (हमारे मठ या आश्रम में प्रतिदिन) अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोँछन (मिलता है)। तुम्हें ये प्राप्त हुए हों या न हुए हों तुमने भोजन कर लिया हो या न किया हो, मार्ग सीधा हो या टेढ़ा हो; हमसे भिन्न धर्म का पालन करते हुए भी तुम्हें (यहाँ अवश्य आना है)। (यह बात) वह (उपाश्रय में) आकर कहता हो या चलते हुए कहता हो, अथवा उपाश्रय में आकर या मार्ग में चलते हुए वह अशन-पान आदि देता हो, उनके लिए निमंत्रित करता हो, या वैयावृत्य करता हो, तो मुनि उसकी बात का बिलकुल अनादर करता हुआ (चूप रहे)। ऐसा मैं कहता हूँ।

**सूत्र - २१२**

इस मनुष्य लोक में कई साधकों को आचार-गोचर सुपरिचित नहीं होता। वे इस साधु-जीवन में आरम्भ के अर्थी हो जाते हैं, आरम्भ करने वाले के वचनों का अनुमोदन करने लगते हैं। वे स्वयं प्राणिवध करते हैं, दूसरों से प्राणिवध कराते हैं और प्राणिवध करने वाले का अनुमोदन करते हैं। अथवा वे अदत्त का ग्रहण करते हैं।

अथवा वे विविध प्रकार के वचनों का प्रयोग करते हैं। जैसे कि लोक है, लोक नहीं है। लोक ध्रुव है, लोक अध्रुव है। लोक सादि है, लोक अनादि है। लोक सान्त है, लोक अनन्त है। सुकृत है, दुष्कृत है। कल्याण है, पाप है। साधु है, असाधु है। सिद्धि है, सिद्धि नहीं है। नरक है, नरक नहीं है।

इस प्रकार परस्पर विरुद्ध वादों को मानते हुए अपने-अपने धर्म का प्ररूपण करते हैं, इनमें कोई भी हेतु नहीं है, ऐसा जानो। इस प्रकार उनका धर्म न सु-आख्यात होता है और न ही सुप्ररूपित।

**सूत्र - २१३**

जिस प्रकार से आशुप्रज्ञ भगवान् महावीर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वह (मुनि) उसी प्रकार से प्ररूपणसम्यग्वाद का निरूपण करे; अथवा वाणी विषयक गुप्ति से (मौन) रहे। ऐसा मैं कहता हूँ। (वह मुनि उन मतवादियों से कहे-) (आप के दर्शनों में आरम्भ) पाप सर्वत्र सम्मत है। मैं उसी (पाप) का निकट से अति-क्रमण करके (स्थित हूँ) यह मेरा विवेक (विमोक्ष) कहा गया है।

धर्म ग्राम में होता है, अथवा अरण्य में? वह न तो गाँव में होता है, न अरण्य में, उसी (सम्यग् आचरण) को धर्म जानो, जो मतिमान् महामाहन भगवान् ने प्रवेदित किया (बतलाया) है।

(उस धर्म के) तीन याम-१. प्राणातिपात-विरमण, २. मृषावाद-विरमण, ३. अदत्तादान-विरमण रूप तीन महाव्रत कहे गए हैं, उन (तीनों यामों) में ये आर्य सम्बोधि पाकर उस त्रियाम रूप धर्म का आचरण करने के लिए सम्यक् प्रकार से उत्थित होते हैं; जो शान्त हो गए हैं; वे (पापकर्मों के) निदान से विमुक्त कहे गए हैं।

**सूत्र - २१४**

ऊँची, नीची एवं तीरछी, सब दिशाओं में सब प्रकार से एकेन्द्रियादि जीवों में से प्रत्येक को लेकर कर्म-

समारम्भ किया जाता है। मेधावी साधक उसका परिज्ञान करके, स्वयं इन षट्जीवनिकार्यों के प्रति दण्ड समारम्भ न करे, न दूसरों से इन जीवनिकार्यों के प्रति दण्ड समारम्भ करवाए और न ही जीवनिकार्यों के प्रति दण्ड समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे। जो अन्य (भिक्षु) इन जीवनिकार्यों के प्रति दण्डसमारम्भ करते हैं, उनके कार्य से भी हम लज्जित होते हैं। इसे दण्डभीरु मेधावी मुनि परिज्ञात करके उस दण्ड का अथवा मृषावाद आदि किसी अन्य दण्ड का समारम्भ न करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

### अध्ययन-८ – उद्देशक-२

#### सूत्र - २१५

वह भिक्षु कहीं जा रहा हो, श्मशान में, सून मकान में, पर्वत की गुफा में, वृक्ष के नीचे, कुम्भारशाला में या गाँव के बाहर कहीं खड़ा हो, बैठा हो या लेटा हुआ हो अथवा कहीं भी विहार कर रहा हो, उस समय कोई गृहपति उसके पास आकर कहे—'आयुष्मन् श्रमण ! मैं आपके लिए अशन, पान, खाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोक्षण; प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का समारम्भ करके आपके उद्देश्य से बना रहा हूँ या खरीद कर, उधार लेकर, किसी से छीनकर, दूसरे की वस्तु को उसकी बिना अनुमति के लाकर, या घर से लाकर आपको देता हूँ अथवा आपके लिए उपाश्रय बनवा देता हूँ। हे आयुष्मन् श्रमण ! आप उसका उपभोग करें और (उस उपाश्रय में) रहें।'

भिक्षु उस सुमनस् एवं सुवचस् गृहपति का निषेध के स्वर से कहे—आयुष्मन् गृहपति ! मैं तुम्हारे इस वचन को आदर नहीं देता, न ही तुम्हारे वचन को स्वीकार करता हूँ, जो तुम प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का समारम्भ करके मेरे लिए अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, यावत् समारंभ से मुझे देना चाहते हो, मेरे लिए उपाश्रय बनवाना चाहते हो। हे आयुष्मन् गृहस्थ ! मैं विरत हो चूका हूँ। यह (मेरे लिए) अकरणीय होने से, (मैं स्वीकार नहीं कर सकता)

#### सूत्र - २१६

वह भिक्षु जा रहा है, यावत् लेटा हुआ है, अथवा कहीं भी विचरण कर रहा है, उस समय उस भिक्षु के पास आकर कोई गृहपति अपने आत्मगत भावों को प्रकट किये बिना प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के समारम्भपूर्वक अशन, पान आदि बनवाता है, साधु के उद्देश्य से मोल लेकर, यावत् घर से लाकर देना चाहता है या उपाश्रय कराता है, वह उस भिक्षु के उपभोग के या निवास के लिए (करता है)।

उस (आरम्भ) को वह भिक्षु अपनी सदबुद्धि से दूसरों से सूनकर यह जान जाए कि यह गृहपति मेरे लिए समारम्भ से अशनादि या वस्त्रादि बनवाकर या मेरे निमित्त यावत् उपाश्रय बनवा रहा है, भिक्षु उसकी सम्यक् प्रकार से पर्यालोचना करके, आगम में कथित आदेश से या पूरी तरह जानकर उस गृहस्थ को साफ-साफ बता दे कि ये सब पदार्थ मेरे लिए सेवन करने योग्य नहीं है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

#### सूत्र - २१७

भिक्षु से पूछकर या बिना पूछे ही किसी गृहस्थ द्वारा ये (आहारादि पदार्थ) भिक्षु के समक्ष भेंट के रूप में लाकर रख देने पर (जब मुनि उन्हें स्वीकार नहीं करता), तब वह उसे परिताप देता है; मारता है, अथवा अपने नौकरों को आदेश देता है कि इसको पीटो, घायल कर दो, इसके हाथ-पैर आदि काट डालो, उसे जला दो, इसका माँस पकाओ, इसके वस्त्रादि छीन लो या इसे नखों से नोच डालो, इसका सब कुछ लूट लो, इसके साथ जबर्दस्ती करो, इसे अनेक प्रकार से पीड़ित करो। उन सब दुःखरूप स्पर्शों के आ पड़ने पर धीर रहकर मुनि उन्हें सहन करे।

अथवा वह आत्मगुप्त मुनि अपने आचार-गोचर की क्रमशः सम्यक् प्रेक्षा करके उसके समक्ष अपना अनुपम आचार-गोचर कहे। अगर वह व्यक्ति दुराग्रही और प्रतिकूल हो, या स्वयं में उसे समझाने की शक्ति न हो तो वचन का संगोपन करके रहे। बुद्धों-तीर्थकरों ने इसका प्रतिपादन किया।

#### सूत्र - २१८

वह समनोज्ञ मुनि असमनोज्ञ साधु को अशन-पान आदि तथा वस्त्र-पात्र आदि पदार्थ अत्यन्त आदरपूर्वक न दे, न उन्हें देने के लिए निमन्त्रित करे और न ही उनका वैयावृत्य करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

**सूत्र - २१९**

मतिमान् महामाहन श्री वर्द्धमान स्वामी द्वारा प्रतिपादित धर्म को भली-भाँति समझ लो कि समनोज्ञ साधु समनोज्ञ साधु को आदरपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोक्षण आदि दे, उन्हें देने के लिए मनुहार करे, उनका वैयावृत्य करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-८ – उद्देशक-३****सूत्र - २२०**

कुछ व्यक्ति मध्यम वय में भी संबोधि प्राप्त करके मुनिधर्म में दीक्षित होने के लिए उद्यत होते हैं। तीर्थंकर तथा श्रुतज्ञानी आदि पण्डितों के वचन सूनकर, मेधावी साधक (समता का आश्रय ले, क्योंकि) आर्यों ने समता में धर्म कहा है, अथवा तीर्थंकरों ने समभाव से धर्म कहा है।

वे कामभोगों की आकांक्षा न रखनेवाले, प्राणियों का अतिपात और परिग्रह न रखते हुए समग्र लोकमें अपरिग्रहवान होते हैं। जो प्राणियों के लिए दण्ड-त्याग करके पाप कर्म नहीं करता, उसे ही महान् अग्रन्थ कहा गया है।  
ओज अर्थात् राग-द्वेष रहित द्युतिमान् का क्षेत्रज्ञ, उपपात और च्यवन को जानकर (शरीर की क्षण-भंगुरता का चिन्तन करे)।

**सूत्र - २२१**

शरीर आहार से उपचित होते हैं, परीषहों के आघात से भग्न हो जाते हैं; किन्तु तुम देखो, आहार के अभाव में कई साधक क्षुधा से पीड़ित होकर सभी इन्द्रियों से ग्लान हो जाते हैं। राग-द्वेष से रहित भिक्षु दया का पालन करता है।

**सूत्र - २२२**

जो भिक्षु सन्निधान-(आहारादि के संचय) के शस्त्र (संयमघातक प्रवृत्ति) का मर्मज्ञ है। वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ होता है। वह परिग्रह पर ममत्व न करने वाला, उचित समय पर अनुष्ठान करने वाला, किसी प्रकार की मिथ्या आग्रहयुक्त प्रतिज्ञा से रहित एवं राग और द्वेष के बन्धनों को छेदन करके निश्चिन्त जीवन यापन करता है।

**सूत्र - २२३**

शीत-स्पर्श से काँपते हुए शरीर वाले उस भिक्षु के पास आकर कोई गृहपति कहे-आयुष्मान् श्रमण ! क्या तुम्हें ग्रामधर्म (इन्द्रिय-विषय) तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं ? (इस पर मुनि कहता है) आयुष्मन् गृहपति ! मुझे ग्राम-धर्म पीड़ित नहीं कर रहे हैं, किन्तु मेरा शरीर दुर्बल होने के कारण मैं शीत-स्पर्श को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ (इसीलिए मेरा शरीर शीत से प्रकम्पित हो रहा है)। अग्निकाय को उज्ज्वलित करना, प्रज्वलित करना, उससे शरीर को थोड़ा-सा भी तपाना या दूसरों को कहकर अग्नि प्रज्वलित करवाना अकल्पनीय है।

(कदाचित् वह गृहस्थ) इस प्रकार बोलने पर अग्निकाय को उज्ज्वलित-प्रज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा तपाए या विशेष रूप से तपाए। उस अवसर पर अग्निकाय के आरम्भ को भिक्षु अपनी बुद्धि से विचारकर आगम के द्वारा भलीभाँति जानकर उस गृहस्थ से कहे कि अग्नि का सेवन मेरे लिए असेवनीय है। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-८ – उद्देशक-४****सूत्र - २२४**

जो भिक्षु तीन वस्त्र और चौथा पात्र रखने की मर्यादा में स्थित है, उसके मन में ऐसा अध्यवसाय नहीं होता कि मैं चौथे वस्त्र की याचना करूँगा। वह यथा-एषणीय वस्त्रों की याचना करे और यथापरिगृहीत वस्त्रों को धारण करे।

वह उन वस्त्रों को न तो धोए और न रंगे, न धोए-रंगे हुए वस्त्रों को धारण करे। दूसरे ग्रामों में जाते समय वह उन वस्त्रों को बिना छिपाए हुए चले। वह मुनि स्वल्प और अतिसाधारण वस्त्र रखे। वस्त्रधारी मुनि की यही सामग्री है।

**सूत्र - २२५**

जब भिक्षु यह जान ले कि हेमन्त ऋतु बीत गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है, तब वह जिन-जिन वस्त्रों को जीर्ण

समझे, उनका परित्याग कर दे। उन यथापरिजीर्ण वस्त्रों का परित्याग करके या तो एक अन्तर (सूती) वस्त्र और उत्तर (ऊनी) वस्त्र साथ में रखे; अथवा वह एकशाटक वाला होकर रहे। अथवा वह अचेलक हो जाए।

**सूत्र - २२६**

(इस प्रकार) लाघवता को लाता या उसका चिन्तन करता हुआ वह उस वस्त्रपरित्यागी मुनि के (सहज में ही) तप सध जाता है।

**सूत्र - २२७**

भगवान ने जिस प्रकार से इस (उपधि-विमोक्ष) का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में गहराई-पूर्वक जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना (उसमें निहित) समत्व को सम्यक् प्रकार से जाने व कार्यान्वित करे।

**सूत्र - २२८**

जिस भिक्षु को यह प्रतीत हो कि मैं आक्रान्त हो गया हूँ, और मैं इस अनुकूल परीषहों को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ, (वैसी स्थिति में) कोई-कोई संयम का धनी भिक्षु स्वयं को प्राप्त सम्पूर्ण प्रज्ञान एवं अन्तःकरण से उस उपसर्ग के वश न हो कर उसका सेवन न करने के लिए दूर हो जाता है।

उस तपस्वी भिक्षु के लिए वही श्रेयस्कर है, ऐसी स्थिति में उसे वैहानस आदि से मरण स्वीकार करना-श्रेयस्कर है। ऐसा करने में उसका वह काल-पर्याय-मरण है।

वह भिक्षु भी उस मृत्यु से अन्तक्रियाकर्ता भी हो सकता है।

इस प्रकार यह मरण प्राण-मोह से मुक्त भिक्षुओं का आयतन, हितकर, कालोपयुक्त, निःश्रेयस्कर, परलोक में साथ चलने वाला होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-८ - उद्देशक-५****सूत्र - २२९**

जो भिक्षु दो वस्त्र और तीसरे पात्र रखने की प्रतिज्ञा में स्थित है, उसके मन में यह विकल्प नहीं उठता कि मैं तीसरे वस्त्र की याचना करूँ। वह अपनी कल्पमर्यादानुसार ग्रहणीय वस्त्रों की याचना करे। इससे आगे वस्त्र-विमोक्ष के सम्बन्ध में पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

यदि भिक्षु यह जाने कि हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है, तब वह जैसे-जैसे वस्त्र जीर्ण हो गए हों, उनका परित्याग कर दे। यथा परिजीर्ण वस्त्रों का परित्याग करके या तो वह एक शाटक में रहे, या वह अचेल हो जाए। वह लाघवता का सर्वतोमुखी विचार करता हुआ (क्रमशः वस्त्र-विमोक्ष प्राप्त करे)। (इस प्रकार) मुनि को तप सहज ही प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने इस (वस्त्र-विमोक्ष के तत्त्व) को जिस रूप में प्रतिपादित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से ममत्व को सम्यक् प्रकार से जाने व क्रियान्वित करे।

जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत होने लगे कि मैं दुर्बल हो गया हूँ। अतः मैं भिक्षाटन के लिए एक घर से दूसरे घर जाने में समर्थ नहीं हूँ। उसे सूनकर कोई गृहस्थ अपने घर से अशन, पान, खाद्य लाकर देने लगे तब वह भिक्षु पहले ही गहराई से विचारे - 'आयुष्मन् गृहपति ! यह अभ्याहृत अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य मेरे लिए सेवनीय नहीं है, इसी प्रकार दूसरे (दोषों से दूषित आहारादि भी मेरे लिए गृहणीय नहीं है)।'

**सूत्र - २३०**

जिस भिक्षु का यह प्रकल्प होता है कि मैं ग्लान हूँ, मेरे साधर्मिक साधु अग्लान हैं, उन्होंने मुझे सेवा करने का वचन दिया है, यद्यपि मैंने अपनी सेवा के लिए उनसे निवेदन नहीं किया है, तथापि निर्जरा की अभिकांक्षा से साधर्मिकों द्वारा की जाने वाली सेवा मैं रुचिपूर्वक स्वीकार करूँगा। (१)

(अथवा) मेरा साधर्मिक भिक्षु ग्लान है, मैं अग्लान हूँ; उसने अपनी सेवा के लिए मुझे अनुरोध नहीं किया है, (पर) मैंने उसकी सेवा के लिए उसे वचन दिया है। अतः निर्जरा के उद्देश्य से उस साधर्मिक की मैं सेवा करूँगा। जिस

भिक्षु का ऐसा प्रकल्प हो, वह उसका पालन करता हुआ प्राण त्याग कर दे, (प्रतिज्ञा भंग न करे) । (२)

कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मैं अपने ग्लान साधर्मिक भिक्षु के लिए आहारादि लाऊंगा, तथा उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन भी करूँगा । (३)

(अथवा) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मैं अपने ग्लान साधर्मिक भिक्षु के लिए आहारादि लाऊंगा, लेकिन उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन नहीं करूँगा । (४)

(अथवा) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मैं साधर्मिकों के लिए आहारादि नहीं लाऊंगा, किन्तु उनके द्वारा लाया हुआ सेवन करूँगा । (५)

(अथवा) कोई भिक्षु प्रतिज्ञा करता है कि न तो मैं साधर्मिकों के लिए आहारादि लाऊंगा और न ही मैं उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन करूँगा । (६)

(यों उक्त छः प्रकार की प्रतिज्ञा भंग न करे, भले ही वह जीवन का उत्सर्ग कर दे ।)

आहार-विमोक्ष साधक को अनायास ही तप का लाभ प्राप्त हो जाता है । भगवान ने जिस रूप में इसका प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में निकट से जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना समत्व या सम्यक्त्व का सेवन करे।

इस प्रकार वह भिक्षु तीर्थकरों द्वारा जिस रूप में धर्म प्ररूपित हुआ है, उसी रूप में सम्यक् रूप से जानता और आचरण करता हुआ, शान्त विरत और अपने अन्तःकरण की प्रशस्त वृत्तियों में अपनी आत्मा को सुसमाहित करने वाला होता है । उसकी वह मृत्यु काल-मृत्यु है । वह अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है ।

इस प्रकार यह शरीरादि मोह से विमुक्त भिक्षुओं का अयतन है, हितकर है, सुखकर है, सक्षम है, निःश्रेयस्कर है और परलोक में भी साथ चलने वाला है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-८ – उद्देशक-६

#### सूत्र - २३१

जो भिक्षु एक वस्त्र और दूसरा पात्र रखने की प्रतिज्ञा स्वीकार कर चुका है, उसके मन में ऐसा अध्यवसाय नहीं होता कि मैं दूसे वस्त्र की याचना करूँगा ।

वह यथा-एषणीय वस्त्र की याचना करे । यहाँ से लेकर आगे 'ग्रीष्मऋतु आ गई' तक का वर्णन पूर्ववत् ।

भिक्षु यह जान जाए कि अब ग्रीष्म ऋतु आ गई है, तब वह यथापरिजीर्ण वस्त्रों का परित्याग करे । यथा-परिजीर्ण वस्त्रों का परित्याग करके वह एक शाटक में ही रहे, (अथवा) वह अचेल हो जाए । वह लाघवता का सब तरह से विचार करता हुआ (वस्त्र परित्याग करे) । वस्त्र-विमोक्ष करने वाले मुनि को सहज ही तप प्राप्त हो जाता है

भगवान ने जिस प्रकार से उसका निरूपण किया है, उसे उसी रूप में निकट से जानकर यावत् समत्व को जानकर आचरण में लाए ।

#### सूत्र - २३२

जिस भिक्षु के मन में ऐसा अध्यवसाय हो जाए कि 'मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, और न मैं किसी का हूँ' वह अपनी आत्मा को एकाकी ही समझे । (इस प्रकार) लाघव का सर्वतोमुखी विचार करता हुआ (वह सहाय-विमोक्ष करे तो) उसे तप सहज में प्राप्त हो जाता है । भगवान ने इसका जिस रूप में प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, यावत् सम्यक् प्रकार से जानकर क्रियान्वित करे ।

#### सूत्र - २३३

वह भिक्षु या भिक्षुणी अशन आदि आहार करते समय आस्वाद लेते हुए बाँए जबड़े से दाहिने जबड़े में न ले जाए, दाहिने जबड़े से बाँए जबड़े में न ले जाए । यह अनास्वाद वृत्ति से लाघव का समग्र चिन्तन करते हुए (आहार करे) । (स्वाद-विमोक्ष से) वह तप का सहज लाभ प्राप्त करता है ।

भगवान ने जिस रूप में स्वाद-विमोक्ष का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना (उसमें निहित) सम्यक्त्व या समत्व को जाने और सम्यक् रूप से परिपालन करे ।

**सूत्र - २३४**

जिस भिक्षु के मन में ऐसा अध्यवसाय हो जाता है कि सचमुच मैं इस समय इस शरीर को वहन करने में क्रमशः ग्लान हो रहा हूँ, वह भिक्षु क्रमशः आहार का संवर्तन करे और कषायों को कृश करे। समाधियुक्त लेश्या वाला तथा फलक की तरह शरीर और कषाय दोनों ओर से कृश बना हुआ वह भिक्षु समाधिमरण के लिए उत्थित होकर शरीर के सन्ताप को शान्त कर ले।

**सूत्र - २३५**

क्रमशः ग्राम में, नगर में, खेड़े में, कर्बट में, मडंब में, पट्टन में, द्रोणमुख में, आकर में, आश्रम में, सन्निवेश में, निगम में या राजधानी में प्रवेश करके घास की याचना करे। उसे लेकर एकान्त में चला जाए। वहाँ जाकर जहाँ कीड़े आदि के अंडे, जीव-जन्तु, बीज, हरियाली, ओस, उदक, चींटियों के बिल, फफूँदी, काई, पानी का दलदल या मकड़ी के जाले न हों, वैसे स्थान का बार-बार प्रतिलेखन करके, प्रमार्जन करके, घास का संथारा करे। उस पर स्थित हो, उस समय इत्वरिक अनशन ग्रहण कर ले।

वह सत्य है। वह सत्यवादी, राग-द्वेष रहित, संसार-सागर को पार करने वाला, 'इंगितमरण की प्रतिज्ञा निभेगी या नहीं?' इस प्रकार के लोगों के कहकहे से मुक्त या किसी भी रागात्मक कथा-कथन से दूर जीवादि पदार्थों का सांगोपांग ज्ञाता अथवा सब बातों से अतीत, संसार पारगामी इंगितमरण की साधना को अंगीकार करता है।

वह भिक्षु प्रतिक्षण विनाशशील और शरीर को छोड़कर नाना प्रकार के परीषहों और उपसर्गों पर विजय प्राप्त करके इसमें पूर्ण विश्वास के साथ इस घोर अनशन का अनुपालन करे। तब ऐसा करने पर भी उसकी, वह काल-मृत्यु होती है। उस मृत्यु से वह अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

इस प्रकार यह मोहमुक्त भिक्षुओं का आयतन हितकर, सुखकर, क्षमारूप या कालोपयुक्त, निःश्रेयस्कर और भवान्तर में साथ चलने वाला होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-८ – उद्देशक-७****सूत्र - २३६**

जो भिक्षु अचेल-कल्प में स्थित है, उस भिक्षु का ऐसा अभिप्राय हो कि मैं घास के स्पर्श सहन कर सकता हूँ, गर्मी का स्पर्श सहन कर सकता हूँ, डाँस और मच्छरों के काटने को सह सकता हूँ, एक जाति के या भिन्न-भिन्न जाति, नाना प्रकार के अनुकूल या प्रतिकूल स्पर्शों को सहन करने में समर्थ हूँ, किन्तु मैं लज्जा निवारणार्थ प्रति-च्छादन को छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में वह भिक्षु कटिबन्धन धारण कर सकता है।

**सूत्र - २३७**

अथवा उस (अचेलकल्प) में ही पराक्रम करते हुए लज्जाजयी अचेल भिक्षु को बार-बार घास का स्पर्श चूभता है, शीत का स्पर्श होता है, गर्मी का स्पर्श होता है, डाँस और मच्छर काटते हैं, फिर भी वह अचेल उन एक-जातीय या भिन्न-भिन्न जातीय नाना प्रकार के स्पर्शों को सहन करे। लाघव का सर्वांगीण चिन्तन करता हुआ (वह अचेल रहे)।

अचेल मुनि को तप का सहज लाभ मिल जाता है। अतः जैसे भगवान ने अचेलत्व का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर, सब प्रकार से, सर्वात्मना सम्यक्त्व या समत्व को भलीभाँति जानकर आचरण में लाए।

**सूत्र - २३८**

जिस भिक्षु को ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं को अशन आदि लाकर दूँगा और उनके द्वारा लाये हुए का सेवन करूँगा। (१)

अथवा जिस भिक्षु की ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं को अशन आदि लाकर दूँगा, लेकिन उनके द्वारा लाये हुए का सेवन नहीं करूँगा। (२)

अथवा जिस भिक्षु की ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं को अशन आदि लाकर नहीं दूँगा, लेकिन

उनके द्वारा लाये हुए का सेवन करूँगा । (३)

अथवा जिस भिक्षु की ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं को अशन आदि लाकर नहीं दूँगा और न ही उनके द्वारा लाये हुए का सेवन करूँगा । (४)

(अथवा जिस भिक्षु की ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि) मैं अपनी आवश्यकता से अधिक, अपनी कल्पमर्यादानुसार एषणीय एवं ग्रहणीय तथा अपने यथोपलब्ध लाये हुए अशन आदि में से निर्जरा के उद्देश्य से साधर्मिक मुनियों की सेवा करूँगा, (अथवा) मैं भी उन साधर्मिक मुनियों की जाने वाली सेवा को रुचिपूर्वक स्वीकार करूँगा। (५)

वह लाघव का सर्वांगीण विचार करता हुआ (सेवा का संकल्प करे)। उस भिक्षु को तप का लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाता है। भगवान ने जिस प्रकार से इस का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना सम्यक्त्व या समत्व को भलीभाँति जानकर आचरण में लाए।

### सूत्र - २३९

जिस भिक्षु के मन में यह अध्यवसाय होता है कि मैं वास्तव में इस समय इस शरीर को क्रमशः वहन करने में ग्लान हो रहा हूँ। वह भिक्षु क्रमशः आहार का संक्षेप करे। आहार को क्रमशः घटाता हुआ कषायों को भी कृश करे। यों करता हुआ समाधिपूर्ण लेश्या वाला तथा फलक की तरह शरीर और कषाय, दोनों ओर से कृश बना हुआ वह भिक्षु समाधिमरण के लिए उत्थित होकर शरीर के सन्ताप को शान्त कर ले।

इस प्रकार संलेखना करने वाला वह भिक्षु ग्राम, यावत् राजधानी में प्रवेश करे घास की याचना करे। उसे लेकर एकान्त में चला जाए। वहाँ जाकर जहाँ कीड़ों के अंडे, यावत् प्रतिलेखन कर फिर उसका कई बार प्रमार्जन करके घास का बिछौना करे। शरीर, शरीर की प्रवृत्ति और गमनागमन आदि ईर्या का प्रत्याख्यान करे (इस प्रकार प्रायोपगमन अनशन करके शरीर विमोक्ष करे)।

यह सत्य है। इसे सत्यवादी वीतराग, संसार-पारगामी, अनशन को अन्त तक निभाएगा या नहीं? इस प्रकार की शंका से मुक्त, यावत् परिस्थितियों से अप्रभावित (अनशन-स्थित-मुनि प्रायोपगमन-अनशन को स्वीकार करता है) वह भिक्षु प्रतिक्षण विनाशशील शरीर को छोड़कर, नाना प्रकार के उपसर्गों और परीषहों पर विजय प्राप्त करके इस घोर अनशन की अनुपालना करे। ऐसा करने पर भी उसकी यह काल-मृत्यु होती है। उस मृत्यु से वह अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

इस प्रकार यह मोहमुक्त भिक्षुओं का आयतन हितकर यावत् जन्मान्तर में भी साथ चलने वाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-८ - उद्देशक-८

### सूत्र - २४०

जो (भक्तप्रत्याख्यान, इंगितमरण एवं प्रायोपगमन, ये तीन) विमोह क्रमशः हैं, धैर्यवान्, संयम का धनी एवं मतिमान् भिक्षु उनको प्राप्त करके सब कुछ जानकर एक अद्वितीय (समाधिमरण को अपनाए)।

### सूत्र - २४१

वे धर्म के पारगामी प्रबुद्ध भिक्षु दोनों प्रकार से हेयता का अनुभव करके क्रम से विमोक्ष का अवसर जान-कर आरंभ से सम्बन्ध तोड़ लेते हैं।

### सूत्र - २४२

वह कषायों को कृश करके, अल्पाहारी बनकर परीषहों एवं दुर्वचनों को सहन करता है, यदि ग्लानि को प्राप्त होता है, तो भी आहार के पास न जाए।

### सूत्र - २४३

(संलेखना एवं अनशन-साधना में स्थित श्रमण) न तो जीने की आकांक्षा करे, न मरने की अभिलाषा करे। जीवन और मरण दोनों में भी आसक्त न हो।

**सूत्र - २४४**

वह मध्यस्थ और निर्जरा की भावना वाला भिक्षु समाधि का अनुपालन करे। आन्तरिक तथा बाह्य पदार्थों का व्युत्सर्ग करके शुद्ध अध्यात्मएषणा करे।

**सूत्र - २४५**

यदि अपनी आयु के क्षेम में जरा-सा भी उपक्रम जान पड़े तो उस संलेखना काल के मध्य में ही पण्डित भिक्षु शीघ्र पण्डितमरण को अपना ले।

**सूत्र - २४६**

(संलेखन-साधक) ग्राम या वन में जाकर स्थण्डिलभूमि का प्रतिलेखन करे, उसे जीव-जन्तुरहित स्थान जानकर मुनि (वहीं) घास बिछा ले।

**सूत्र - २४७**

वह वहीं निराहार हो कर लेट जाए। उस समय परीषहों और उपसर्गों से आक्रान्त होने पर सहन करे। मनुष्यकृत उपसर्गों से आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लंघन न करे।

**सूत्र - २४८**

जो रेंगने वाले प्राणी हैं, या जो आकाश में उड़ने वाले हैं, या जो बिलों में रहते हैं, वे कदाचित् अनशनधारी मुनि के शरीर का माँस नोचे और रक्त पीए तो मुनि न तो उन्हें मारे और न ही रजोहरणादि से प्रमार्जन करे।

**सूत्र - २४९**

(वह मुनि ऐसा चिन्तन करे) ये प्राणी मेरे शरीर का विघात कर रहे हैं, (मेरे ज्ञानादि आत्मगुणों का नहीं, वह उस स्थान से उठकर अन्यत्र न जाए।) आस्रवों से पृथक् हो जाने के कारण तृप्ति अनुभव करता हुआ (उन उपसर्गों को) सहन करे।

**सूत्र - २५०**

उस संलेखना-साधक की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, आयुष्य के काल का पारगाम हो जाता है।

**सूत्र - २५१**

ज्ञात-पुत्र ने भक्तप्रत्याख्यान से भिन्न इंगितमरण अनशन का यह आचार-धर्म बताया है। इसमें किसी भी अंगोपांग के व्यापार का, किसी दूसरे के सहारे का मन, वचन और काया से तथा कृत-कारित-अनुमोदित रूप से त्याग करे।

**सूत्र - २५२**

वह हरियाली पर शयन न करे, स्थण्डिल को देखकर वहाँ सोए। वह निराहार उपधि का व्युत्सर्ग करके परीषहों तथा उपसर्गों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

**सूत्र - २५३**

आहारादि का परित्यागी मुनि इन्द्रियों से ग्लान होने पर समित होकर हाथ-पैर आदि सिकोड़े। जो अचल है तथा समाहित है, वह परिमित भूमि में शरीर-चेष्टा करता हुआ भी निन्दा का पात्र नहीं होता।

**सूत्र - २५४**

वह शरीर-संधारणार्थ गमन और आगमन करे, सिकोड़े और पसारे। इसमें भी अचेतन की तरह रहे।

**सूत्र - २५५**

बैठा-बैठा थक जाए तो चले, या थक जाने पर बैठ जाए, अथवा सीधा खड़ा हो जाए, या लेट जाए। खड़े होने में कष्ट होता हो तो अन्त में बैठ जाए।

**सूत्र - २५६**

इस अद्वितीय मरण की साधना में लीन मुनि अपनी इन्द्रियों को सम्यक् रूप से संचालित करे। घुन-दीमक

वाले काष्ठ-स्तम्भ या पट्टे का सहारा न लेकर घुन आदि रहित व निश्छिद्र काष्ठ-स्तम्भ या पट्टे का अन्वेषण करे ।

### सूत्र - २५७

जिससे वज्रवत् कर्म उत्पन्न हो, ऐसी वस्तु का सहारा न ले । उससे या दुर्धान से अपने आपको हटा ले और उपस्थित सभी दुःखस्पर्शों को सहन करे ।

### सूत्र - २५८

यह अनशन विशिष्टतर है, पार करने योग्य है । जो विधि से अनुपालन करता है, वह सारा शरीर अकड़ जाने पर भी अपने स्थान से चलित नहीं होता ।

### सूत्र - २५९

यह उत्तम धर्म है । यह पूर्व स्थानद्वय से प्रकृष्टतर ग्रह वाला है । साधक स्थण्डिलस्थान का सम्यक् निरीक्षण करके वहाँ स्थिर होकर रहे ।

### सूत्र - २६०

अचित्त को प्राप्त करके वहाँ अपने आपको स्थापित कर दे । शरीर का सब प्रकार से व्युत्सर्ग कर दे । परीषह उपस्थित होने पर ऐसी भावना करे- 'यह शरीर ही मेरा नहीं है, तब परीषह (जनित दुःख मुझे कैसे होंगे ?)

### सूत्र - २६१

जब तक जीवन है, तब तक ही ये परीषह और उपसर्ग हैं, यह जानकर संवृत्त शरीरभेद के लिए प्राज्ञ भिक्षु उन्हें (समभाव से) सहन करे ।

### सूत्र - २६२

शब्द आदि काम विनाशशील हैं, वे प्रचुरतर मात्रा में हो तो भी भिक्षु उनमें रक्त न हो । ध्रुव वर्ण का सम्यक् विचार करके भिक्षु ईच्छा का भी सेवन न करे ।

### सूत्र - २६३

आयुपर्यन्त शाश्वत रहने वाले वैभवों या कामभोगों के लिए कोई भिक्षु को निमंत्रित करे तो वह उसे (माया-जाल) समझे । दैवी माया पर भी श्रद्धा न करे । वह साधु उस समस्त माया को भलीभाँति जानकर उसका परि-त्याग करे ।

### सूत्र - २६४

सभी प्रकार के विषयों में अनासक्त और मृत्युकाल का पारगामी वह मुनि तितिक्षा को सर्वश्रेष्ठ जानकर हितकर विमोक्ष त्रिविध विमोक्ष में से किसी एक विमोक्ष का आश्रय ले । ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-९ – उपधानश्रुत

## उद्देशक-१

## सूत्र - २६५

श्रमण भगवान महावीर ने दीक्षा लेकर जैसे विहारचर्या की, उस विषय में जैसा मैंने सूना है, वैसा मैं तुम्हें बताऊंगा। भगवान ने दीक्षा का अवसर जानकर हेमन्त ऋतु में प्रव्रजित हुए और तत्काल विहार कर गए।

## सूत्र - २६६

'मैं हेमन्त ऋतु में वस्त्र से शरीर को नहीं ढकूंगा।' वे इस प्रतिज्ञा का जीवनपर्यन्त पालन करने वाले और संसार या परीषहों के पारगामी बन गए थे। यह उनकी अनुधर्मिता ही थी।

## सूत्र - २६७

भौरै आदि बहुत-से प्राणिगत आकर उनके शरीर पर चढ़ जाते और मँडराते रहते। वे रुष्ट होकर नाचने लगते यह क्रम चार मास से अधिक समय तक चलता रहा।

## सूत्र - २६८

भगवान ने तेरह महीनों तक वस्त्र का त्याग नहीं किया। फिर अनगार और त्यागी भगवान महावीर उस वस्त्र का परित्याग करके अचेलक हो गए।

## सूत्र - २६९

भगवान एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ा कर अन्तरात्मा में ध्यान करते थे। अतः उनकी आँखें देखकर भयभीत बनी बच्चों की मण्डली 'मारो-मारो' कहकर चिल्लाती, बहुत से अन्य बच्चों को बुला लेती।

## सूत्र - २७०

गृहस्थ और अन्यतीर्थिक साधु से संकुल स्थान में ठहरे हुए भगवान को देखकर, कामाकुल स्त्रियाँ वहाँ आकर प्रार्थना करती, किन्तु कर्मबन्ध का कारण जानकर सागारिक सेवन नहीं करते थे। अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश कर ध्यान में लीन रहते।

## सूत्र - २७१

कभी गृहस्थोंसे युक्त स्थानमें भी वे उनमें घुलते-मिलते नहीं थे। वे उनका संसर्ग त्याग करके धर्मध्यानमें मग्न रहते। वे किसी के पूछने पर भी नहीं बोलते थे। अन्यत्र चले जाते, किन्तु अपने ध्यान का अतिक्रमण नहीं करते थे।

## सूत्र - २७२

वे अभिवादन करने वालों को आशीर्वचन नहीं कहते थे, और उन अनार्य देश आदि में डंडों से पीटने, फिर उनके बाल खींचने या अंग-भंग करने वाले अभागे अनार्य लोगों को वे शाप नहीं देते थे। भगवान की यह साधना अन्य साधकों के लिए सुगम नहीं थी।

## सूत्र - २७३

अत्यन्त दुःसह्य, तीखे वचनों की परवाह न करते हुए उन्हें सहन करने का पराक्रम करते थे। वे आख्यायिका, नृत्य, गीत, युद्ध आदि में रस नहीं लेते थे।

## सूत्र - २७४

परस्पर कामोत्तेजक बातों में आसक्त लोगों को ज्ञातपुत्र भगवान महावीर हर्षशोक से रहित होकर देखते थे। वे इन दुर्दमनीय को स्मरण न करते हुए विचरते थे।

## सूत्र - २७५

(माता-पिता के स्वर्गवास के बाद) भगवान ने दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक गृहवास में रहते हुए भी सचित्त जल का उपभोग नहीं किया। वे एकत्वभावना से ओतप्रोत रहते थे, उन्होंने क्रोध-ज्वाला को शान्त कर लिया था, वे सम्यग्ज्ञान-दर्शन को हस्तगत कर चुके थे और शान्तचित्त हो गए थे। फिर अभिनिष्क्रमण किया।

**सूत्र - २७६, २७७**

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, निगोद-शैवाल आदि, बीज और नाना प्रकार की हरी वनस्पति एवं त्रसकाय - इन्हें सब प्रकार से जानकर । 'ये अस्तित्ववान् है' यह देखकर 'ये चेतनावान् है' यह जानकर उनके स्वरूप को भलीभाँति अवगत करके वे उनके आरम्भ का परित्याग करके विहार करते थे ।

**सूत्र - २७८**

स्थावर जीव त्रस के रूपमें उत्पन्न हो जाते हैं और त्रस जीव स्थावर के रूपमें उत्पन्न हो जाते हैं अथवा संसारी जीव सभी योनियों में उत्पन्न हो सकते हैं । अज्ञानी जीव अपने-अपने कर्मों से पृथक्-पृथक् रूप से संसार में स्थित हैं ।

**सूत्र - २७९**

भगवान ने यह भलीभाँति जान-मान लिया था कि द्रव्य-भाव-उपधि से युक्त अज्ञानी जीव अवश्य ही क्लेश का अनुभव करता है । अतः कर्मबन्धन सर्वांग रूप से जानकर कर्म के उपादानरूप पाप का प्रत्याख्यान कर दिया था

**सूत्र - २८०**

ज्ञानी और मेधावी भगवान ने दो प्रकार के कर्मों को भलीभाँति जानकर तथा आदान स्रोत, अतिपात स्रोत और योग को सब प्रकार से समझकर दूसरों से विलक्षण (निर्दोष) क्रिया का प्रतिपादन किया है ।

**सूत्र - २८१**

भगवान ने स्वयं पाप-दोष रहित निर्दोष अनाकुट्टि का आश्रय लेकर दूसरों को हिंसा न करने की (प्रेरणा दी) । जिन्हें स्त्रियाँ परिज्ञात हैं, उन भगवान महावीर ने देख लिया था कि 'कामभोग समस्त पापकर्मों के उपादान कारण हैं'

**सूत्र - २८२**

भगवान ने देखा कि आधाकर्म आदि दोषयुक्त आहार ग्रहण सब तरह से कर्मबन्ध का कारण है, इसलिए उन्होंने आधाकर्मदि दोषयुक्त आहार का सेवन नहीं किया । वे प्रासुक आहार ग्रहण करते थे ।

**सूत्र - २८३**

दूसरे के वस्त्र का सेवन नहीं करते थे, दूसरे के पात्र में भी भोजन नहीं करते थे । वे अपमान की परवाह न करके किसी की शरण लिए बिना पाकशाला में भिक्षा के लिए जाते थे ।

**सूत्र - २८४**

भगवान अशन-पान की मात्रा को जानते थे, वे रसों में आसक्त नहीं थे, वे (भोजन-सम्बन्धी) प्रतिज्ञा भी नहीं करते थे, मुनिन्द्र महावीर आँखमें रजकण आदि पड़ जाने पर भी उसका प्रमार्जन नहीं करते थे और न शरीर को खुजलाते थे ।

**सूत्र - २८५**

भगवान चलते हुए न तिरछे और न पीछे देखते थे, वे मौन चलते थे, किसी के पूछने पर बोलते नहीं थे । यतनापूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे ।

**सूत्र - २८६**

भगवान उस वस्त्र का भी व्युत्सर्ग कर चूके थे । अतः शिशिर ऋतु में वे दोनों बाँहें फैलाकर चलते थे, उन्हें कन्धों पर रखकर खड़े नहीं होते थे ।

**सूत्र - २८७**

ज्ञानवान महामाहन महावीर ने इस विधि के अनुरूप आचरण किया । उपदेश दिया । अतः मुमुक्षुजन इसका अनुमोदन करते हैं । ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-९ - उद्देशक-२****सूत्र - २८८**

'भन्ते ! चर्या के साथ-साथ आपने कुछ आसन और वासस्थान बताए थे, अतः मुझे आप उन शयनासन को

बताएं, जिनका सेवन भगवान ने किया था ।

### सूत्र - २८९

भगवान कभी सूने खण्डहरों में, कभी सभाओं, प्याऊओं, पण्य-शालाओं में निवास करते थे । अथवा कभी लुहार, सुथार, सुनार आदि के कर्मस्थानों में और पलालपूँज के मंच के नीचे उनका निवास होता था ।

### सूत्र - २९०

भगवान कभी यात्रीगृह में, आरामगृह में, गाँव या नगर में अथवा कभी श्मशान में, कभी शून्यगृह में तो कभी वृक्ष के नीचे ही ठहर जाते थे ।

### सूत्र - २९१

त्रिजगत्वेत्ता मुनीश्वर इन वासस्थानोंमें साधना काल के बारह वर्ष, छह महीने, पन्द्रह दिनों में शान्त और सम्यक्त्वयुक्त मन से रहे । वे रात-दिन प्रत्येक प्रवृत्ति में यतनाशील रहते थे तथा अप्रमत्त और समाहित अवस्था में ध्यान करते थे ।

### सूत्र - २९२

भगवान निद्रा भी बहुत नहीं लेते थे । वे खड़े होकर अपने आपको जगा लेते थे । (कभी जरा-सी नींद ले लेते किन्तु सोने के अभिप्राय से नहीं सोते थे ।)

### सूत्र - २९३

भगवान क्षणभर की निद्रा के बाद फिर जागृत होकर ध्यान में बैठ जाते थे । कभी-कभी रात में मुहूर्त्तभर बाहर घूमकर पुनः ध्यान-लीन हो जाते थे ।

### सूत्र - २९४, २९५

उन आवास में भगवान को अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग आते थे । कभी साँप और नेवला आदि प्राणी काट खाते, कभी गिद्ध आकर माँस नोचते ।

कभी उन्हें चोर या पारदारिक आकर तंग करते, अथवा कभी ग्रामरक्षक उन्हें कष्ट देते, कभी कामासक्त स्त्रियाँ और कभी पुरुष उपसर्ग देते थे ।

### सूत्र - २९६

भगवान ने इहलौकिक और पारलौकिक नाना प्रकार के भयंकर उपसर्ग सहन किये । वे अनेक प्रकार के सुगन्ध और दुर्गन्ध में तथा प्रिय और अप्रिय शब्दों में हर्ष-शोक रहित मध्यस्थ रहे ।

### सूत्र - २९७

उन्होंने सदा समिति युक्त होकर अनेक प्रकार के स्पर्शों को सहन किया । वे अरति और रति को शांत कर देते थे । वे महामाहन महावीर बहुत ही कम बोलते थे ।

### सूत्र - २९८

कुछ लोग आकर पूछते- 'तुम कौन हो ? यहाँ क्यों खड़े हो ?' कभी अकेले घूमने वाले लोग रात में आकर पूछते - तब भगवान कुछ नहीं बोलते, इससे रुष्ट होकर दुर्व्यवहार करते, फिर भी भगवान समाधि में लीन रहते, परन्तु प्रतिशोध लेने का विचार भी नहीं उठता ।

### सूत्र - २९९

अन्तर में स्थित भगवान से पूछा - 'अन्दर कौन है ?' भगवान ने कहा - 'मैं भिक्षु हूँ ।' यदि वे क्रोधान्ध होते तब भगवान वहाँ से चले जाते । यह उनका उत्तम धर्म है । वे मौन रहकर ध्यान में लीन रहते थे ।

### सूत्र - ३००

शिशिरऋतु में ठण्डी हवा चलने पर कई लोग काँपने लगते, उस ऋतु में हिमपात होने पर कुछ अनगार भी निर्वातस्थान ढूँढ़ते थे ।

**सूत्र - ३०१**

हिमजन्म शीत-स्पर्श अत्यन्त दुःखदायी है, यह सोचकर कोई साधु संकल्प करते थे कि चादरों में घूस जाएंगे या काष्ठ जलाकर किवाड़ों को बन्द करके इस ठंड को सह सकेंगे, ऐसा भी कुछ साधु सोचते थे।

**सूत्र - ३०२**

किन्तु उस शिशिर ऋतु में भी भगवान ऐसा संकल्प नहीं करते। कभी-कभी रात्रि में भगवान उस मंडप से बाहर चले जाते, मुहूर्त्तभर ठहर फिर मंडप में आते। उस प्रकार भगवान शीतादि परीषह समभाव से सहन करने में समर्थ थे।

**सूत्र - ३०३**

मतिमान महामाहन महावीर ने इस विधि का आचरण किया जिस प्रकार अप्रतिबद्धविहारी भगवान ने बहुत बार इस विधि का पालन किया, उसी प्रकार अन्य साधु भी आत्म-विकासार्थ इस विधि का आचरण करते हैं - ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-९ - उद्देशक-३****सूत्र - ३०४**

भगवान घास का कठोर स्पर्श, शीत स्पर्श, गर्मी का स्पर्श, डाँस और मच्छरों का दंश; इन नाना प्रकार के दुःखद स्पर्शों को सदा सम्यक् प्रकार से सहते थे।

**सूत्र - ३०५**

दुर्गम लाढ़ देश के वज्रभूमि और सुम्ह भूमि नामक प्रदेश में उन्होंने बहुत ही तुच्छ वासस्थानों और कठिन आसनों का सेवन किया था।

**सूत्र - ३०६**

लाढ़ देश के क्षेत्र में भगवान ने अनेक उपसर्ग सहे। वहाँ के बहुत से अनार्य लोग भगवान पर डण्डों आदि से प्रहार करते थे; भोजन भी प्रायः रूखा-सूखा ही मिलता था। वहाँ के शिकारी कुत्ते उन पर टूट पड़ते और काट खाते थे

**सूत्र - ३०७**

कुत्ते काटने लगते या भौंकते तो बहुत से लोग इस श्रमण को कुत्ते काँटे, उस नीयत से कुत्तों को बुलाते और छुछकार कर उनके पीछे लगा देते थे।

**सूत्र - ३०८**

उस जनपद में भगवान ने पुनः पुनः विचरण किया। उस जनपद में दूसरे श्रमण लाठी और नालिका लेकर विहार करते थे।

**सूत्र - ३०९**

वहाँ विचरण करने वाले श्रमणों को भी पहले कुत्ते पकड़ लेते, काट खाते या नोंच डालते। उस लाढ़ देश में विचरण करना बहुत ही दुष्कर था।

**सूत्र - ३१०**

अनगार भगवान महावीर प्राणियों प्रति होनेवाले दण्ड का परित्याग और अपने शरीर प्रति ममत्व का व्युत्सर्ग करके (विचरण करते थे) अतः भगवान उन ग्राम्यजनों के काँटों समान तीखे वचनों को (निर्जरा हेतु सहन) करते थे।

**सूत्र - ३११**

हाथी जैसे युद्ध के मोर्चे पर (विद्ध होने पर भी पीछे नहीं हटता) युद्ध का पार पा जाता है, वैसे ही भगवान महावीर उस लाढ़ देशमें परीषह-सेना को जीतकर पारगामी हुए। कभी-कभी लाढ़ देशमें उन्हें अरण्यमें भी रहना पड़ा

**सूत्र - ३१२**

आवश्यकतावश निवास या आहार के लिए वे ग्राम की ओर जाते थे। वे ग्राम के निकट पहुँचते, न पहुँचते,

तब तक तो कुछ लोग उस गाँव से निकलकर भगवान को रोक लेते, उन पर प्रहार करते और कहते - 'यहाँ से आगे कहीं दूर चले जाओ ।'

**सूत्र - ३१३**

उस लाढ़ देश में बहुत से लोग डण्डे, मुक्के अथवा भाले आदि से या फिर मिट्टी के ढेले या खप्पर से मारते, फिर 'मारो-मारो' कहकर होहल्ला मचाते थे ।

**सूत्र - ३१४**

उन अनार्यों ने पहले एक बार ध्यानस्थ खड़े भगवान के शरीर को पकड़कर माँस काट लिया था । उन्हें परीषर्हों से पीड़ित करते थे, कभी-कभी उन पर धूल फेंकते थे ।

**सूत्र - ३१५**

कुछ दुष्ट लोग ध्यानस्थ भगवान को ऊंचा उठाकर नीचे गिरा देते थे, कुछ लोग आसन से दूर धकेल देते थे, किन्तु भगवान शरीर का व्युत्सर्ग किये हुए प्रणबद्ध, कष्टसहिष्णु प्रतिज्ञा से युक्त थे । अतएव वे इन परीषर्हों से विचलित नहीं होते थे ।

**सूत्र - ३१६**

जैसे कवच पहना हुआ योद्धा युद्ध के मोर्चे पर शस्त्रों से विद्ध होने पर भी विचलित नहीं होता, वैसे ही संवर का कवच पहने हुए भगवान महावीर लाढ़ादि देश में परीषहसेना से पीड़ित होने पर भी कठोरतम कष्टों का सामना करते हुए मेरुपर्वत की तरह ध्यान में निश्चल रहकर मोक्षपथ में पराक्रम करते थे ।

**सूत्र - ३१७**

(स्थान और आसन के सम्बन्ध में) प्रतिज्ञा से मुक्त मतिमान, महामाहन भगवान महावीर ने इस विधि का अनेक बार आचरण किया; उनके द्वारा आचरित एवं उपदिष्ट विधि का अन्य साधक भी इसी प्रकार आचरण करते हैं। ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-९ – उद्देशक-४****सूत्र - ३१८, ३१९**

भगवान रोगों से आक्रान्त न होने पर भी अवमौदर्य तप करते थे । वे रोग से स्पृष्ट हों या अस्पृष्ट, चिकित्सा में रुचि नहीं रखते थे ।

वे शरीर को आत्मा से अन्य जानकर विरेचन, वमन, तैलमर्दन, स्नान और मर्दन आदि परिकर्म नहीं करते थे, तथा दन्तप्रक्षालन भी नहीं करते थे ।

**सूत्र - ३२०**

महामाहन भगवान विरत होकर विचरण करते थे । वे बहुत बुरा नहीं बोलते थे । कभी-कभी भगवान शिशिर ऋतु में स्थिर होकर ध्यान करते थे ।

**सूत्र - ३२१**

भगवान ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते थे । उकड़ू आसन से सूर्य के ताप के सामने मुख करके बैठते थे । और वे प्रायः रूखे आहार को दो - कोद्रव व बेर आदि का चूर्ण, तथा उड़द आदि से शरीर-निर्वाह करते थे ।

**सूत्र - ३२२**

भगवान ने इन तीनों का सेवन करके आठ मास तक जीवन यापन किया । कभी-कभी भगवान ने अर्ध मास या मासभर तक पानी नहीं पिया ।

**सूत्र - ३२३**

उन्होंने कभी-कभी दो महीने से अधिक तथा छह महीने तक भी पानी नहीं पिया । वे रातभर जागृत रहते, किन्तु मन में नींद लेने का संकल्प नहीं होता था । कभी-कभी वे वासी भोजन भी करते थे ।

**सूत्र - ३२४**

वे कभी बेले, कभी तेले, कभी चौले कभी पंचौले के अनन्तर भोजन करते थे । भोजन प्रति प्रतिज्ञारहित होकर समाधि का प्रेक्षण करते थे ।

**सूत्र - ३२५**

वे भगवान महावीर (दोषों को) जानकर स्वयं पाप नहीं करते थे, दूसरों से भी पाप नहीं करवाते थे और न पाप करने वालों का अनुमोदन करते थे ।

**सूत्र - ३२६**

ग्राम या नगर में प्रवेश करके दूसरे के लिए बने हुए भोजन की एषणा करते थे । सुविशुद्ध आहार ग्रहण करके भगवान आयतयोग से उसका सेवन करते थे ।

**सूत्र - ३२७**

भिक्षाटन के समय, रास्ते में क्षुधा से पीड़ित कौओं तथा पानी पीने के लिए आतुर अन्य प्राणियों को लगातार बैठे हुए देखकर-

**सूत्र - ३२८**

अथवा ब्राह्मण, श्रमण, गाँव के भिखारी या अतिथि, चाण्डाल, बिल्ली या कुत्ते को मार्ग में बैठा देखकर-

**सूत्र - ३२९**

उनकी आजीविका विच्छेद न हो, तथा उनके मन में अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न न हो, इसे ध्यान में रखकर भगवान धीरे-धीरे चलते थे । किसीको जरा-सा भी त्रास न हो, इसलिए हिंसा न करते हुए आहार की गवेषणा करते थे ।

**सूत्र - ३३०**

भोजन सूखा हो, अथवा ठंडा हो, या पुराना उड़द हो, पुराने धान को ओदन हो या पुराना सत्तु हो, या जौ से बना हुआ आहार हो, पर्याप्त एवं अच्छे आहार के मिलने या न मिलने पर इन सब में संयमनिष्ठ भगवान राग-द्वेष नहीं करते थे ।

**सूत्र - ३३१**

भगवान महावीर उकड़ू आदि आसनो में स्थित होकर ध्यान करते थे । ऊंचे, नीचे और तिरछे लोक में स्थित द्रव्य-पर्याय को ध्यान का विषय बनाते थे । वे असम्बद्ध बातों से दूर रहकर आत्म-समाधि में ही केन्द्रित रहते थे ।

**सूत्र - ३३२**

भगवान क्रोधादि कषायों को शान्त करके, आसक्ति को त्यागकर, शब्द और रूप के प्रति अमूर्च्छित रहकर ध्यान करते थे । छद्मस्थ अवस्था में सदनुष्ठान में पराक्रम करते हुए उन्होंने एक बार भी प्रमाद नहीं किया ।

**सूत्र - ३३३**

आत्म-शुद्धि के द्वारा भगवान ने स्वयमेव आयतयोग को प्राप्त कर लिया और उनके कषाय उपशान्त हो गए उन्होंने जीवन पर्यन्त माया से रहित तथा समिति-गुप्ति से युक्त होकर साधना की ।

**सूत्र - ३३४**

किसी प्रतिज्ञारहित ज्ञानी महामाहन भगवानने अनेकबार इस विधि का आचरण किया, उनके द्वारा आचरित एवं उपदिष्ट विधि का अन्य साधक भी अपने आत्म-विकास के लिए इसी प्रकार आचरण करते थे । ऐसा मैं कहता हूँ

**अध्ययन-९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**आचार सूत्र आगम -१ के श्रुतस्कन्ध-१-का  
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**श्रुतस्कन्ध-२**  
**चूलिका-१**  
**अध्ययन-१ - पिंडेषणा**  
**उद्देशक-१**

**सूत्र - ३३५**

कोई भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा में आहार-प्राप्ति के उद्देश्य से गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होकर यह जाने कि यह अशन, पान, खाद्य तथा स्वाद्य रसज आदि प्राणियों से, फफुंदी से, गेहूँ आदि के बीजों से, हरे अंकुर आदि से संसक्त है, मिश्रित है, सचित्त जल से गीला है तथा सचित्त मिट्टी से सना हुआ है; यदि इस प्रकार का अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य दाता के हाथ में हो, पर (दाता) के पात्र में हो तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय मानकर, प्राप्त होने पर ग्रहण न करे।

कदाचित् वैसा आहार ग्रहण कर लिया हो तो वह उस आहार को लेकर एकान्त में चला जाए या उद्यान या उपाश्रय में ही जहाँ प्राणियों के अंडे न हों, जीव-जन्तु न हों, बीज न हों, हरियाली न हो, ओस के कण न हों, सचित्त जल न हो तथा चींटियाँ, लीलन-फूलन, गीली मिट्टी या दलदल, काई या मकड़ी के जाले एवं दीमकों के घर आदि न हों, वहाँ उस संसक्त आहार से उन आगन्तुक जीवों को पृथक्-पृथक् करके उस मिश्रित आहार को शोध-शोधकर फिर यतनापूर्वक खा ले या पी ले।

यदि वह उस आहार को खाने-पीने में असमर्थ हो तो उसे लेकर एकान्त स्थान में चला जाए। वहाँ जाकर दग्ध स्थण्डिलभूमि पर, हड्डियों के ढेर पर, लोह के कूड़े के ढेर पर, तुष के ढेर पर, सूखे गोबर के ढेर पर या इसी प्रकार के अन्य निर्दोष एवं प्रासुक स्थण्डिल का भलीभाँति निरीक्षण करके, उसका अच्छी तरह प्रमार्जन करके, यतनापूर्वक उस आहार को वहाँ परिष्ठापित कर दे।

**सूत्र - ३३६**

गृहस्थ के घर में भिक्षा प्राप्त होने की आशा से प्रविष्ट हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि इन औषधियों को जाने कि वे अखण्डित हैं, अविनष्ट योनि हैं, जिनके दो या दो से अधिक टुकड़े नहीं हुए हो, जिनका तिरछा छेदन नहीं हुआ है, जीव रहित नहीं है, अभी अधपकी फली है, जो अभी सचित्त या अभग्न है या अग्नि में भुँजी हुई नहीं है, तो उन्हें देखकर उनको अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

**सूत्र - ३३७**

गृहस्थ के घर में भिक्षा लेने के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसी औषधियों को जाने कि वे अखण्डित नहीं है, यावत् वे जीव रहित हैं, कच्ची फली अचित्त हो गई है, भग्न हैं या अग्नि में भुँजी हुई हैं, तो उन्हें देखकर, उन्हें प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होती हों तो ग्रहण कर ले।

गृहस्थ के घर भिक्षा निमित्त गया हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जान ले कि शाली, धान, जौ, गेहूँ आदि में सचित्त रज बहुत है, गेहूँ आदि अग्नि में भूँजे हुए - अर्धपक्व हैं। गेहूँ आदि के आटे में तथा धान-कूटे चूर्ण में भी अखण्ड दाने हैं, कणसहित चावल के लम्बे दाने सिर्फ एक बार भूने हुए हैं या कूटे हुए हैं, तो उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय मानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

अगर...वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने की शाली, धान, जौ, गेहूँ आदि रज वाले नहीं हैं, आग में भूँजे हुए गेहूँ आदि तथा गेहूँ आदि का आटा, कुटा हुआ धान आदि अखण्ड दानों से सहित है, कण सहित चावल के लम्बे दाने, ये सब एक, दो या तीन बार आग में भूने हैं तो उन्हें प्रासुक और एषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर ले।

**सूत्र - ३३८**

गृहस्थ के घर में भिक्षा के निमित्त प्रवेश करने के ईच्छुक भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पिण्डदोषों का परिहार करने वाला साधु अपारिहारिक साधु के साथ भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में न तो प्रवेश करे, और न वहाँ से निकले।

वह भिक्षु या भिक्षुणी बाहर विचारभूमि या विहारभूमि से लौटते या वहाँ प्रवेश करते हुए अन्यतीर्थिक या परपिण्डोपजीवी गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक, अपारिहारिक साधु के साथ न लौटे, न प्रवेश करे।

एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा उत्तम साधु पार्श्वस्थ आदि साधु के साथ ग्रामानुग्राम विहार न करे।

### सूत्र - ३३९

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या परपिण्डोपजीवी याचक को तथैव उत्तम साधु पार्श्वस्थादि शिथिलाचारी साधु को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तो स्वयं दे और न किसी से दिलाए।

### सूत्र - ३४०

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी जब यह जाने कि किसी भद्र गृहस्थ ने अकिंचन निर्ग्रन्थ के लिए एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का समारम्भ करके आहार बनाया है, साधु के निमित्त से आहार मोल लिया, उधार लिया है, किसी से जबरन छीनकर लाया है, उसके स्वामी की अनुमति के बिना लिया हुआ है तथा सामने लाया हुआ आहार दे रहा है, तो उस प्रकार का, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप आहार दाता से भिन्न पुरुष ने बनाया हो अथवा दाता ने बनवाया हो, घर से बाहर नीकाला गया हो, या न नीकाला गया हो, उस दाता ने स्वीकार किया हो या न किया हो, उसी दाता ने उस आहार में से बहुत-सा खाया हो या न खाया हो; अथवा थोड़ा-सा सेवन किया हो, या न किया हो; इस प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेष-णिक समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

इसी प्रकार बहुत से साधर्मिक साधुओं के उद्देश्य से, एक साधर्मिणी साध्वी के उद्देश्य से तथा बहुत सी साधर्मिणी साध्वीओं के उद्देश्य से बनाया हुए आहार ग्रहण न करें; यों क्रमशः चार आलापक इसी भाँति कहने चाहिए

### सूत्र - ३४१

वह भिक्षु या भिक्षुणी यावत् गृहस्थ के घर प्रविष्ट होने पर जाने कि यह अशनादि आहार बहुत से श्रमणों, माहनों, अतिथियों, कृपणों, याचकों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से बनाया हुआ है। वह आसेवन किया गया हो या न किया गया हो, उस आहार को अप्रासुक अनेषणीय समझकर मिलने पर ग्रहण न करे।

### सूत्र - ३४२

वह भिक्षु या भिक्षुणी यावत् गृहस्थ के घर प्रविष्ट होने पर जाने कि यह चतुर्विध आहार बहुत-से श्रमणों, माहनों, अतिथियों, दरिद्रों और याचकों के उद्देश्य से प्राणादि आदि जीवों का समारम्भ करके यावत् लाकर दे रहा है, उस प्रकार के आहार को जो स्वयं दाता द्वारा कृत हो, बाहर नीकाला हुआ न हो, दाता द्वारा अधिकृत न हो, दाता द्वारा उपभुक्त न हो, अनासेवित हो, उसे अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे। यदि वह इस प्रकार जाने कि वह आहार दूसरे पुरुष द्वारा कृत है, घर से बाहर नीकाला गया है, अपने द्वारा अधिकृत है, दाता द्वारा उपभुक्त तथा आसेवित है तो ऐसा आहार को प्रासुक और एषणीय समझकर मिलने पर वह ग्रहण कर ले।

### सूत्र - ३४३

गृहस्थ घरमें आहार-प्राप्ति की अपेक्षा से प्रवेश करने के ईच्छुक साधु साध्वी ऐसे कुलों को जान लें कि इन कुलों में नित्यपिण्ड दिया जाता है, नित्य अग्रपिण्ड दिया जाता है, प्रतिदिन भाग या उपाद्ध भाग दिया जाता है; इस प्रकार के कुल, जो नित्य दान देते हैं, जिनमें प्रतिदिन भिक्षाचरों का प्रवेश होता है, ऐसे कुलों में आहारपानी के लिए साधु-साध्वी प्रवेश एवं निर्गमन न करें। यह उस भिक्षु या भिक्षुणी के लिए समग्रता है, कि वह समस्त पदार्थों में संयत या पंचसमितियों से युक्त, ज्ञानादि-सहित अथवा स्वहित परायण होकर सदा प्रयत्नशील रहे। -ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-२

### सूत्र - ३४४

वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार-प्राप्ति के निमित्त प्रविष्ट होने पर अशन आदि आहार के विषय

में यह जाने कि यह आहार अष्टमी पौषधव्रत के उत्सवों के उपलक्ष्य में तथा अर्द्धमासिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, पंचमासिक और षण्मासिक उत्सवों के उपलक्ष्य में तथा ऋतुओं, ऋतुसन्धियों एवं ऋतु-परिवर्तनों के उत्सवों के उपलक्ष्य में (बना है, उसे) बहुत-से श्रमण, माहन, अतिथि, दरिद्र एवं भिखारियों को एक बर्तन से परोसते हुए देखकर, दो बर्तनों से, या तीन बर्तनों से एवं चार बर्तनों से परोसते हुए देखकर तथा संकड़े मुँह वाली कुम्भी और बाँस की टोकरी में से एवं संचित किए हुए गोरस आदि पदार्थों को परोसते हुए देखकर, जो कि पुरुषान्तरकृत नहीं है, यावत् आसेवित नहीं है, तो ऐसे आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

और यदि ऐसा जाने कि यह आहार पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो ऐसे आहार को प्रासुक और एषणीय समझकर मिलने पर ग्रहण कर ले।

### सूत्र - ३४५

वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार प्राप्ति के लिए प्रविष्ट होने पर जिन कुलों को जाने वे इस प्रकार हैं-उग्रकुल, भोगकुल, राज्यकुल, क्षत्रियकुल, इक्ष्वाकुकुल, हरिवंशकुल, गोपालादिकुल, वैश्यकुल, नापित-कुल, बढई-कुल, ग्रामरक्षककुल या तन्तुवायकुल, ये और इसी प्रकार के और भी कुल, जो अनिन्दित और अगर्हित हों, उन कुलों से प्रासुक और एषणीय अशनादि चतुर्विध आहार मिलने पर ग्रहण करे।

### सूत्र - ३४६

वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होते समय वह जाने कि यहाँ मेला, पितृपिण्ड के निमित्त भोज तथा इन्द्र-महोत्सव, स्कन्ध, रुद्र, मुकुन्द, भूत, यक्ष, नाग-महोत्सव तथा स्तूप, चैत्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, कूप, तालाब, हृद, नदी, सरोवर, सागर या आकार सम्बन्धी महोत्सव एवं अन्य इसी प्रकार के विभिन्न प्रकार के महोत्सव हो रहे हैं, अशनादि चतुर्विध आहार बहुत-से श्रमण-ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचकों को एक बर्तन में से, दो, तीन, या चार बर्तनों में से परोसा जा रहा है तथा घी, दूध, दही, तैल, गुड़ आदि का संचय भी संकड़े मुँह वाली कुम्भी में से तथा बाँस की टोकरी या पिटारी से परोसा जा रहा है। इस प्रकार का आहार पुरुषान्तरकृत, घर से बाहर नीकाला हुआ, दाता द्वारा अधिकृत, परिभुक्त या आसेवित नहीं है तो ऐसे आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

यदि वह यह जाने कि जिनको (जो आहार) देना था, दिया जा चुका है, अब वहाँ, गृहस्थ भोजन कर रहे हैं, ऐसा देखकर (आहार के लिए वहाँ जाए), उस गृहपति की पत्नी, बहन, पुत्र, पुत्री या पुत्रवधू, धायमाता, दास या दासी अथवा नौकर या नौकरानी को पहले से ही (भोजन करती हुई) देखे, (तब) पूछे-आयुष्मती ! क्या मुझे इस भोजन में से कुछ दोगी ?' ऐसा कहने पर वह स्वयं अशनादि आहार लाकर साधु को दे अथवा वह गृहस्थ स्वयं दे तो उस आहार को प्रासुक एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण करे।

### सूत्र - ३४७

वह भिक्षु या भिक्षुणी अर्ध योजन की सीमा से पर संखड़ि हो रही है, यह जानकर संखड़ि में निष्पन्न आहार लेने के निमित्त जाने का विचार न करे।

यदि भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि पूर्व दिशा में संखड़ि हो रही है, तो वह उसके प्रति अनादर भाव रखते हुए पश्चिम दिशा को चला जाए। यदि पश्चिम दिशा में संखड़ि जाने तो उसके प्रति अनादर भाव से पूर्व दिशा में चला जाए इसी प्रकार दक्षिण दिशा में संखड़ि जाने तो उत्तर दिशा में चला जाए और उत्तर दिशा में संखड़ि होती जाने तो उसके प्रति अनादर बताता हुआ दक्षिण दिशा में चला जाए।

संखड़ि जहाँ भी हो, जैसे कि गाँव में हो, नगर में हो, खेड़े में हो, कुनगर में हो, मडम्ब में हो, पट्टन में हो, द्रोणमुख में हो, आकर में हो, आश्रम में हो, सन्निवेश में हो, यावत् राजधानी में हो, इनमें से कहीं भी संखड़ि जाने तो संखड़ि के निमित्त मन में संकल्प लेकर न जाए। केवलज्ञानी भगवान कहते हैं यह कर्मबन्धन का स्थान है।

संखड़ि में संखड़ि के संकल्प से जाने वाले भिक्षु को आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, क्रीतकृत, प्रामित्य, बलात् छीना हुआ, दूसरे के स्वामित्व का पदार्थ उसकी अनुमति के बिना लिया हुआ या सम्मुख लाकर दिया हुआ आहार सेवन करना होगा। क्योंकि कोई भावुक गृहस्थ भिक्षु के संखड़ि में पधारने की सम्भावना से छोटे द्वार को बड़ा बनाएगा, बड़े द्वार को छोटा बनाएगा, विषम वासस्थान को सम बनाएगा तथा सम वासस्थान को विषम बनाएगा। इसी प्रकार अधिक वातयुक्त वासस्थान को निर्वात बनाएगा या निर्वात वातस्थान को अधिक वात युक्त बनाएगा। वह भिक्षु के निवास के लिए उपाश्रय के अन्दर और बाहर हरियाली को काटेगा, उसे जड़ से उखाड़ कर वहाँ संस्तरक बिछाएगा। इस प्रकार संखड़ि में जाने को भगवान ने मिश्रजात दोष बताया है।

इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ इस प्रकार नामकरण विवाह आदि के उपलक्ष्य में होने वाली पूर्व-संखड़ि अथवा मृतक के पीछे की जाने वाली पश्चात्-संखड़ि को (अनेक दोषयुक्त) संखड़ि जानकर जाने का मन में संकल्प न करे। यह उस भिक्षु या भिक्षुणी की समग्रता है कि वह समस्त पदार्थों में संयत या समित व ज्ञानादि सहित होकर सदा प्रयत्नशील रहे। ऐसा मैं कहता हूँ।

### अध्ययन-१ – उद्देशक-३

#### सूत्र - ३४८

कदाचित् भिक्षु अथवा अकेला साधु किसी संखड़ि में पहुँचेगा तो वहाँ अधिक सरस आहार एवं पेय खाने-पीने से उसे दस्त लग सकता है, या वमन हो सकता है अथवा वह आहार भलीभाँति पचेगा नहीं; कोई भयंकर दुःख या रोगांतक पैदा हो सकता है।

इसलिए केवली भगवान न कहा- 'यह (संखड़िगमन) कर्मों का उपादान कारण है।'

#### सूत्र - ३४९

यहाँ भिक्षु गृहस्थों-गृहस्थपत्नीयों अथवा परिव्राजक-परिव्राजिकाओं के साथ एकचित्त व एकत्रित होकर नशीला पेय पीकर बाहर निकलकर उपाश्रय ढूँढ़ने लगेगा, जब वह नहीं मिलेगा, तब उसी को उपाश्रय समझकर गृहस्थ स्त्री-पुरुषों व परिव्राजक-परिव्राजिकाओं के साथ ही ठहर जाएगा। उनके साथ धुलमिल जाएगा। वे गृहस्थ - गृहस्थपत्नीयों आदि मत्त एवं अन्यमनस्क होकर अपने आपको भूल जाएंगे, साधु अपने को भूल जाएगा। अपने को भूलकर वह स्त्री शरीर पर या नपुंसक पर आसक्त हो जाएगा। अथवा स्त्रियाँ या नपुंसक उस भिक्षु के पास आकर कहेंगे-आयुष्मन् श्रमण ! किसी बगीचे या उपाश्रय में रात को या विकाल में एकान्त में मिलें। फिर कहेंगे-ग्राम के निकट किसी गुप्त, प्रच्छन्न, एकान्तस्थान में हम मैथुन-सेवन करेंगे। उस प्रार्थना का कोई एकाकी अनभिज्ञ साधु स्वीकार भी कर सकता है।

यह (साधु के लिए सर्वथा) अकरणीय है यह जानकर (संखड़ि में न जाए)। संखड़ि में जाना कर्मों के आसव का कारण है, अथवा दोषों का आयतन है। इसमें जाने से कर्मों का संचय बढ़ता जाता है; इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ संखड़ि को संयम खण्डित करने वाली जानकर उसमें जान का विचार भी न करे।

#### सूत्र - ३५०

वह भिक्षु या भिक्षुणी पूर्व-संखड़ि या पश्चात्-संखड़ि में से किसी एक के विषय में सूनकर मन में विचार करके स्वयं बहुत उत्सुक मन से जल्दी-जल्दी जाता है। क्योंकि वहाँ निश्चित ही संखड़ि है। वह भिक्षु उस संखड़ि वाले ग्राम में संखड़ि से रहित दूसरे-दूसरे घरों से एषणीय तथा वेश से लब्ध उत्पादनादि दोषरहित भिक्षा से प्राप्त आहार को ग्रहण करके वहीं उसका उपभोग नहीं कर सकेगा। क्योंकि वह संखड़ि के भोजन-पानी के लिए लालायित है। वह भिक्षु मातृस्थान का स्पर्श करता है। अतः साधु ऐसा कार्य न करे।

वह भिक्षु उस संखड़ि वाले ग्राम में अवसर देखकर प्रवेश करे, संखड़ि वाले घर के सिवाय, दूसरे-दूसरे घरों से सामुदानिक भिक्षा से प्राप्त एषणीय तथा केवल वेष से प्राप्त-धात्रीपिण्डादि दोषरहित पिण्डपात को ग्रहण करके उसका सेवन कर ले।

**सूत्र - ३५१**

वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि अमुक गाँव, नगर यावत् राजधानी में संखड़ि है। तो संखड़ि को (संयम को खण्डित करने वाली जानकर) उस गाँव यावत् राजधानी में संखड़ि की प्रतिज्ञा से जाने का विचार भी न करे। केवली भगवान कहते हैं-यह अशुभ कर्मों के बन्ध का कारण है।

चरकादि भिक्षाचरों की भीड़ से भरी-आकीर्ण-और हीन-अवमा ऐसी संखड़ि में प्रविष्ट होने से (निम्नोक्त दोषों के उत्पन्न होने की सम्भावना है-) सर्वप्रथम पैर से पैर-टकराएंगे या हाथ से हाथ संचालित होंगे; पात्र से पात्र रगड़ खाएगा, सिर से सिर का स्पर्श होकर टकराएगा अथवा शरीर से शरीर का संघर्षण होगा, डण्डे, हड्डी, मुट्ठी, ढेला-पथर या खप्पर से एक दूसरे पर प्रहार होना भी संभव है। वे परस्पर सचित्त, ठण्डा पानी भी छींट सकते हैं, सचित्त मिट्टी भी फेंक सकते हैं। वहाँ अनैषणीय आहार भी उपभोग करना पड़ सकता है तथा दूसरों को दिए जाने वाले आहार को बीच में से लेना भी पड़ सकता है। इसलिए वह संयमी निर्ग्रन्थ इस प्रकार की जनाकीर्ण एवं हीन संखड़ि में संखड़ि के संकल्प से जाने का बिलकुल विचार न करे।

**सूत्र - ३५२**

भिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि यह आहार एषणीय है या अनैषणीय? यदि उसका चित्त विचिकित्सा युक्त हो, उसकी लेश्या अशुद्ध आहार की रही हो, तो वैसे आहार मिलने पर भी ग्रहण न करे

**सूत्र - ३५३**

जो भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होना चाहता है, वह अपने सब धर्मोपकरण लेकर आहार-प्राप्ति उद्देश्य से गृहस्थ के घर में प्रवेश करे या नीकले।

साधु या साध्वी बाहर मलोत्सर्गभूमि या स्वाध्यायभूमि में नीकलते या प्रवेश समय अपने सभी धर्मोपकरण लेकर वहाँ से नीकले या प्रवेश करे। एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरण करते समय अपने सब धर्मोपकरण साथ में लेकर ग्रामानुग्राम विहार करे।

**सूत्र - ३५४**

यदि वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि बहुत बड़े क्षेत्र में वर्षा बरसती है, विशाल प्रदेश में अन्धकार रूप धुंध पड़ती दिखाई दे रही है, अथवा महावायु से धूल उड़ती दिखाई देती है, तिरछे उड़ने वाले या त्रस प्राणी एक साथ मिलकर गिरते दिखाई दे रहे हैं, तो वह ऐसा जानकर सब धर्मोपकरण साथ में लेकर आहार के निमित्त गृहस्थ के घर में न प्रवेश करे और न नीकले। इसी प्रकार बाहर विहार भूमि या विचार भूमि में भी निष्क्रमण या प्रवेश न करे; न ही एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करे।

**सूत्र - ३५५**

भिक्षु एवं भिक्षुणी इन कुलों को जाने, जैसे कि चक्रवर्ती आदि क्षत्रियों के कुल, उनसे भिन्न अन्य राजाओं के कुल, कुराजाओं के कुल, राजभृत्य दण्डपाशिक आदि के कुल, राजा के मामा, भानजा आदि सम्बन्धीयों के कुल, इन कुलों के घर से, बाहर या भीतर जाते हुए, खड़े हुए या बैठे हुए, निमंत्रण किये जान पर या न किये जाने पर, वहाँ से प्राप्त होने वाले अशनादि आहार को ग्रहण न करे।

**अध्ययन-१ – उद्देशक-४****सूत्र - ३५६**

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करते समय भिक्षु या भिक्षुणी यह जो कि इस संखड़ि के प्रारम्भ में माँस या मत्स्य पकाया जा रहा है, अथवा माँस या मत्स्य छीलकर सूखाया जा रहा है; विवाहोत्तर काल में नववधू के प्रवेश या पितृगृह में वधू के पुनः प्रवेश के उपलक्ष्य में भोज हो रहा है, या मृतक-सम्बन्धी भोज हो रहा है, अथवा परिजनो के सम्मानार्थ भोज हो रहा है। ऐसी संखड़ियों से भिक्षाचरों को भोजन लाते हुए देखकर संयम-शील भिक्षु को वहाँ भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ जाने में अनेक दोषों की सम्भावना है, जैसे कि ----

मार्ग में बहुत-से प्राणी, बहुत-सी हरियाली, बहुत-से ओसकण, बहुत पानी, बहुत-से कीड़ीनगर, पाँच वर्ष की नीलण-फूलण है, काई आदि निगोद के जीव हैं, सचित्त पानी से भीगी हुई मिट्टी है, मकड़ी के जाले हैं, उन सबकी विराधना होगी; वहाँ बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचक आदि आये हुए हैं, आ रहे हैं तथा आएंगे, संखड़िस्थल चरक आदि जनता की भीड़ से अत्यन्त घिरा हुआ है; इसलिए वहाँ प्राज्ञ साधु का निर्गमन-प्रवेश का व्यवहार उचित नहीं है; क्योंकि वहाँ प्राज्ञ भिक्षु की वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथारूप स्वाध्याय प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी। अतः इस प्रकार जानकर वह भिक्षु पूर्वोक्त प्रकार की माँस प्रधानादि पूर्वसंखड़ि या पश्चात् संखड़ि की प्रतिज्ञा से जाने का मन में संकल्प न करे।

वह भिक्षु या भिक्षुणी, भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करते समय यह जाने कि नववधू प्रवेश आदि के उपलक्ष्य में भोज हो रहा है, उन भोजों से भिक्षाचर भोजन लाते दिखाई दे रहे हैं, मार्ग में बहुत-से प्राणी यावत् मकड़ी का जाला भी नहीं है तथा वहाँ बहुत-से भिक्षु-ब्राह्मणादि भी नहीं आए हैं, न आएंगे और न आ रहे हैं, लोगों की भीड़ भी बहुत कम है। वहाँ प्राज्ञ निर्गमन-प्रवेश कर सकता है तथा वहाँ प्राज्ञ साधु के वाचना-पृच्छना आदि धर्मानुयोग चिन्तन में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी, ऐसा जान लेने पर संखड़ि की प्रतिज्ञा से जाने का विचार कर सकता है।

### सूत्र - ३५७

भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करना चाहते हों; यह जान जाए कि अभी दुधारू गायों को दुहा जा रहा है तथा आहार अभी तैयार किया जा रहा है, उसमें से किसी दूसरे को दिया नहीं गया है। ऐसा जानकर आहार प्राप्ति की दृष्टि से न तो उपाश्रय से नीकले और न ही उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

किन्तु वह भिक्षु उसे जानकर एकान्तमें चला जाए और जहाँ कोई आता-जाता न हो और न देखता हो, वहाँ ठहर जाए। जब वह यह जान ले कि दुधारू गाएँ दुही जा चूकी हैं और आहार तैयार हो गया है तथा उसमें से दूसरों को दे दिया गया है, तब वह संयमी साधु - आहारप्राप्ति की दृष्टि से वहाँ से नीकले या उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

### सूत्र - ३५८

जंघादि बल क्षीण होने से एक ही क्षेत्र में स्थिरवास करने वाले अथवा मासकल्प विहार करने वाले कोई भिक्षु, अतिथि रूप से अपने पास आए हुए, ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले साधुओं से कहते हैं-पूज्यवरो ! यह गाँव बहुत छोटा है, बहुत बड़ा नहीं है, उसमें भी कुछ घर सूतक आदि के कारण रूके हुए हैं। इसलिए आप भिक्षाचरी के लिए बाहर (दूसरे) गाँवों में पधारें।

मान लो, इस गाँव में स्थिरवासी मुनियों में से किसी मुनि के पूर्व-परिचित अथवा पश्चात् परिचित रहते हैं, जैसे कि-गृहपति, गृहपत्नीयाँ, गृहपति के पुत्र एवं पुत्रियाँ, पुत्रवधूएँ, धायमाताएँ, दास-दासी, नौकर-नौकरानियाँ, वह साधु यह सोचे की मेरे पूर्व-परिचित और पश्चात् परिचित घर हैं, वैसे घरों में अतिथि साधुओं द्वारा भिक्षाचरी करने से पहले ही मैं भिक्षार्थ प्रवेश करूँगा और इन कुलों में अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लूँगा, जैसे कि-शाली के ओदन आदि, स्वादिष्ट आहार, दूध, दही, नवनीत, घृत, गुड़, तेल, मधु, मद्य या माँस अथवा जलेबी, गुड़राब, मालपुए, शिखरिणी आदि। उस आहार को मैं पहले ही खा-पीकर पात्रों को धो-पोंछकर साफ कर लूँगा। इसके पश्चात् आगन्तुक भिक्षुओं के साथ आहार-प्राप्ति के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करूँगा और वहाँ से नीकलूँगा।

इस प्रकार का व्यवहार करने वाला साधु माया-कपट का स्पर्श करता है। साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए। उस (स्थिरवासी) साधु को भिक्षा के समय उन भिक्षुओं के साथ ही उसी गाँव में विभिन्न उच्च-नीच और मध्यम कुलों से सामुदानिक भिक्षा से प्राप्त एषणीय, वेष से उपलब्ध निर्दोष आहार को लेकर उन अतिथि साधुओं के साथ ही आहार करना चाहिए। यही संयमी साधु-साध्वी के ज्ञानादि आचार की समग्रता है।

### अध्ययन-१ - उद्देशक-५

### सूत्र - ३५९

वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के निमित्त प्रवेश करने पर यह जाने कि अग्रपिण्ड नीकाला

जाता हुआ, रखा जाता दिखाई दे रहा है, (कहीं) अग्रपिण्ड ले जाया जाता, बाँटा जाता, सेवन किया जाता दिख रहा है, कहीं वह फेंका या डाला जाता दृष्टिगोचर हो रहा है तथा पहले, अन्य श्रमण-ब्राह्मणादि भोजन कर गए हैं एवं कुछ भिक्षाचर पहले इसे लेकर चले गए हैं, अथवा पहले यहाँ दूसरे श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचक आदि जल्दी-जल्दी आ रहे हैं, (यह देखकर) कोई साधु यह विचार करे कि मैं भी जल्दी-जल्दी (अग्रपिण्ड लेने) पहुँचुं, तो (ऐसा करने वाला साधु) माया-स्थान का सेवन करता है। वह ऐसा न करे।

### सूत्र - ३६०

वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के यहाँ आहारार्थ जाते समय रास्ते के बीच में ऊँचे भू-भाग या खेत की क्यारियाँ हों या खाईयाँ हों, अथवा बाँस की टाटी हो, या कोट हो, बाहर के द्वार (बंद) हों, आगल हों, अर्गला-पाशक हों तो उन्हें जानकर दूसरा मार्ग हो तो संयमी साधु उसी मार्ग से जाए, उस सीधे मार्ग से न जाए; क्योंकि केवली भगवान कहते हैं- यह कर्मबन्ध का मार्ग है।

उस विषय-मार्ग से जाते हुए भिक्षु फिसल जाएगा या डिग जाएगा, अथवा गिर जाएगा। फिसलने, डिगने या गिरने पर उस भिक्षु का शरीर मल, मूत्र, कफ, लीट, वमन, पित्त, मवाद, शुक्र और रक्त से लिपट सकता है। अगर कभी ऐसा हो जाए तो वह भिक्षु मल-मूत्रादि से उपलिप्त शरीर को सचित्त पृथ्वी से, सचित्त चिकनी मिट्टी से, सचित्त शिलाओं से, सचित्त पथथर या ढेले से, या धुन लगे हुए काष्ठ से, जीवयुक्त काष्ठ से एवं अण्डे या प्राणी या जालों आदि से युक्त काष्ठ आदि से अपने शरीर को न एक बार साफ करे और न अनेक बार घिसकर साफ करे। न एक बार रगड़े या घिसे और न बार-बार घिसे, उबटन आदि की तरह मले नहीं, न ही उबटन की भाँति लगाए। एक बार या अनेक बार धूप में सुखाए नहीं।

वह भिक्षु पहले सचित्त-रज आदि से रहित तृण, पत्ता, काष्ठ, कंकर आदि की याचना करे। याचना से प्राप्त करके एकान्त स्थान में जाए। वहाँ अग्नि आदि के संयोग से जलकर जो भूमि अचित्त हो गई है, उस भूमि की या अन्यत्र उसी प्रकार की भूमि का प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके यत्नाचारपूर्वक संयमी साधु स्वयमेव अपने शरीर को पोंछे, मले, घिसे यावत् धूप में एक बार व बार-बार सुखाए और शुद्ध करे।

### सूत्र - ३६१

वह साधु या साध्वी जिस मार्ग से भिक्षा के लिए जा रहे हों, यदि वे वह जाने की मार्ग में सामने मदोन्मत्त साँड़ है, या भैंसा खड़ा है, इसी प्रकार दुष्ट मनुष्य, घोड़ा, हाथी, सिंह, बाघ, भेड़िया, चीता, रींछ, व्याघ्र, अष्टापद, सियार, बिल्ला, कुत्ता, महाशूकर, लोमड़ी, चित्ता, चिल्लडक और साँप आदि मार्ग में खड़े या बैठे हैं, ऐसी स्थिति में दूसरा मार्ग हो तो उस मार्ग से जाए, किन्तु उस सीधे मार्ग से न जाए।

साधु-साध्वी भिक्षा के लिए जा रहे हों, मार्ग में बीच में यदि गड्ढा हो, खूँटा हो या ढूँठ पड़ा हो, काँटें हों, उतराई की भूमि हो, फटी हुई काली जमीन हो, ऊँची-नीची भूमि हो, या कीचड़ अथवा दलदल पड़ता हो, (ऐसी स्थिति में) दूसरा मार्ग हो तो संयमी साधु स्वयं उसी मार्ग से जाए, किन्तु जो सीधा मार्ग है, उससे न जाए।

### सूत्र - ३६२

साधु या साध्वी गृहस्थ के घर का द्वार भाग काँटों की शाखा से ढँका हुआ देखकर जिनका वह घर, उनसे पहले अवग्रह माँगे बिना, उसे अपनी आँखों से देखे बिना और प्रमार्जित किये बिना न खोले, न प्रवेश करे और न उसमें से नीकले; किन्तु जिनका घर है, उनसे पहले अवग्रह माँग कर अपनी आँखों से देखकर और प्रमार्जित करके उसे खोले, उसमें प्रवेश करे और उसमें से नीकले।

### सूत्र - ३६३

वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय जाने कि बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, अतिथि और याचक आदि उस गृहस्थ के यहाँ पहले से ही हैं, तो उन्हें देखकर उनके सामने या जिस द्वार से वे नीकलते हैं, उस द्वार पर खड़ा न हो। केवली भगवान कहते हैं यह कर्मों का उपादान है कारण है।

पहली ही दृष्टि में गृहस्थ उस मुनि को वहाँ खड़ा देखकर उसके लिए आरम्भ-समारम्भ करके अशनादि चतुर्विध आहार बनाकर, उसे लाकर देगा। अतः भिक्षुओं के लिए पहले से ही निर्दिष्ट यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह उपदेश है कि वह भिक्षु उस गृहस्थ और शाक्यादि भिक्षाचरों की दृष्टि में आए, इस तरह सामने और उनके निर्गमन द्वार पर खड़ा न हो।

वह (उन श्रमणादि को उपस्थित) जानकर एकान्त स्थान में चला जाए, वहाँ जाकर कोई आता-जाता न हो और देखता न हो, इस प्रकार से खड़ा रहे। उस भिक्षु को उस अनापात और असंलोक स्थान में खड़ा देखकर वह गृहस्थ अशनादि आहार लाकर दे, साथ ही वह यों कहे "आयुष्मन् श्रमण ! यह अशनादि चतुर्विध आहार मैं आ सब के लिए दे रहा हूँ। आप रुचि के अनुसार इस आहार का उपभोग करें और परस्पर बाँट लें।"

इस पर यदि वह साधु उस आहार को चूपचाप लेकर यह विचार करता है कि "यह आहार मुझे दिया है, इसलिए मेरे ही लिए है," तो वह माया-स्थान का सेवन करता है। अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। वह साधु उस आहार को लेकर वहाँ (उन शाक्यादि श्रमण आदि के पास) जाए और उन्हें वह आहार दिखाए, और यह कहे- "हे आयुष्मन् ! श्रमणादि ! यह अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थ ने हम सबके लिए दिया है। अतः आप सब इसका उपभोग करें और परस्पर विभाजन कर लें।"

ऐसा कहने पर यदि कोई शाक्यादि भिक्षु उस साधु से कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप ही इसे हम सबको बाँट दें। उस आहार का विभाजन करता हुआ वह साधु अपने लिए जल्दी-जल्दी अच्छा-अच्छा प्रचुर मात्रा में वर्णादिगुणों से युक्त सरस भाग, स्वादिष्ट, मनोज्ञ, स्निग्ध, आहार और उनके लिए रूखा-सूखा आहार न रखे, अपितु उस आहार में अमूर्च्छित, अगृद्ध, निरपेक्ष एवं अनासक्त होकर सबके लिए समान विभाग करे।

यदि सम-विभाग करते हुए उस साधु को कोई शाक्यादि भिक्षु यों कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप विभाग मत करें। हम सब एकत्रित होकर यह आहार खा-पी लेंगे।" (ऐसी विशेष परिस्थिति में) वह उनके साथ आहार करता हुआ अपने लिए प्रचुर मात्रा में सुन्दर, सरस आदि आहार और दूसरों के लिए रूखा-सूखा; (ऐसी स्वार्थी-नीति न रखे); अपितु उस आहार में वह अमूर्च्छित, अगृद्ध, निरपेक्ष और अनासक्त होकर बिलकुल सम मात्रा में ही खाए-पिए।

### सूत्र - ३६४

वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि वहाँ शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, ग्रामपिण्डोलक या अतिथि आदि पहले से प्रविष्ट हैं, तो यह देख वह उन्हें लौंघकर उस गृहस्थ के घर में न तो प्रवेश करे और न ही दाता से आहारादि की याचना करे परन्तु एकांत स्थान में चला जाए, वहाँ जाकर कोई न आए-जाए तथा न देखे, इस प्रकार से खड़ा रहे।

जब यह जान ले कि गृहस्थ ने श्रमणादि को आहार देने से इन्कार कर दिया है, अथवा उन्हें दे दिया है और वे उस घर से निपटा दिये गए हैं; तब संयमी साधु स्वयं उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे, अथवा आहारादि की याचना करे यही उस भिक्षु अथवा भिक्षुणी के लिए ज्ञान आदि के आचार की समग्रता-सम्पूर्णता है।

### अध्ययन-१ - उद्देशक-६

### सूत्र - ३६५

वह भिक्षु या भिक्षुणी आहार के निमित्त जा रहे हों, उस समय मार्ग में यह जाने कि रसान्वेषी बहुत-से प्राणी आहार के लिए एकत्रित होकर (किसी पदार्थ पर) टूट पड़े हैं, जैसे कि-कुक्कुट जाति के जीव, शूकर जाति के जीव, अथवा अग्र-पिण्ड पर कौए झुण्ड के झुण्ड टूट पड़े हैं; इन जीवों को मार्ग में आगे देखकर संयत साधु या साध्वी अन्य मार्ग के रहते, सीधे उनके सम्मुख होकर न जाएं।

### सूत्र - ३६६

आहारादि के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी उसके घर के दरवाजे की चौखट पकड़कर खड़े न हों, न उस गृहस्थ के गंदा पानी फेंकने के स्थान या उनके हाथ-मुँह धोने या पीने के पानी बहाये जाने की जगह खड़े न हों और न ही स्नानगृह, पेशाबघर या शौचालय के सामने अथवा निर्गमन-प्रवेश द्वार पर खड़े हों। उस घर के झरोखे आदि को,

मरम्मत की हुई दीवार आदि को, दीवारों की संधि को, तथा पानी रखने के स्थान को, बार-बार बाहें उठाकर अंगुलियों से बार-बार उनकी ओर संकेत करके, शरीर को ऊंचा उठाकर या नीचे झुकाकर, न तो स्वयं देखें और न दूसरे को दिखाए। तथा गृहस्थ को अंगुलि से बार-बार निर्देश करके याचना न करे और न ही अंगुलियों से भय दिखाकर गृहपति से याचना करे। इसी प्रकार अंगुलियों से शरीर को बार-बार खुजलाकर या गृहस्थ की प्रशंसा या स्तुति करके आहारादि की याचना न करे। गृहस्थ को कठोर वचन न कहे।

### सूत्र - ३६७

गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी किसी व्यक्ति को भोजन करते हुए देखे, जैसे कि - गृहस्वामी, उसकी पत्नी, उसकी पुत्री या पुत्र, उसकी पुत्रवधू या गृहपति के दास-दासी या नौकर-नौकरानियों में से किसी को, पहले अपने मन में विचार करके कहे-आयुष्मन् गृहस्थ इसमें से कुछ भोजन मुझे दोगे ?

उस भिक्षु के ऐसा कहने पर यदि वह गृहस्थ अपने हाथ को, मिट्टी के बर्तन को, दर्वी को या कांसे आदि के बर्तन को ठंडे जल से या ठंडे हुए उष्णजल से एक बार धोए या बार-बार रगड़कर धोने लगे तो वह भिक्षु पहले उसे भली-भाँति देखकर कहे-आयुष्मन् गृहस्थ ! तुम इस प्रकार हाथ, पात्र, कुड़छी या बर्तन को सचित्त पानी से मत धोओ। यदि मुझे भोजन देना चाहती हो तो ऐसे ही दे दो।

साधु के इस प्रकार कहने पर यदि वह शीतल या अल्प उष्णजल से हाथ आदि को एक बार या बार-बार धोकर उन्हीं से अशनादि आहार लाकर देने लगे तो उस प्रकार के पुरः कर्मरत हाथ आदि से लाए गए अशनादि चतुर्विध आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

यदि साधु यह जाने कि दाता के हाथ, पात्र आदि भिक्षा देने के लिए नहीं धोए हैं, किन्तु पहले से ही गीले हैं; उस प्रकार के सचित्त जल से गीले हाथ, पात्र, कुड़छी आदि से लाकर दिया गया आहार भी अप्रासुक-अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। यदि यह जाने कि हाथ आदि पहले से गीले तो नहीं हैं, किन्तु सस्निग्ध हैं, तो उस प्रकार लाकर दिया गया आहार... भी ग्रहण न करे।

यदि यह जाने कि हाथ आदि जल से आर्द्र या सस्निग्ध तो नहीं हैं, किन्तु क्रमशः सचित्त मिट्टी, क्षार, हड़ताल, हिंगलू, मेनसिल, अंजन, लवण, मेरू, पीली मिट्टी, खड़िया मिट्टी, सौराष्ट्रिका, बिना छाना आटा, आटे का चोकर, पीलुपर्णिका के गीले पत्तों का चूर्ण आदि में से किसी से भी हाथ आदि संसृष्ट हैं तो उस प्रकार के हाथ आदि से लाकर दिया गया आहार... भी ग्रहण न करे। यदि वह यह जाने कि दाता के हाथ आदि सचित्त जल से आर्द्र, सस्निग्ध या सचित्त मिट्टी आदि से असंसृष्ट तो नहीं हैं, किन्तु जो पदार्थ देना है, उसी से हाथ आदि संसृष्ट हैं तो ऐसे हाथों या बर्तन आदि से दिया गया अशनादि आहार प्रासुक एवं एषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर सकता है (अथवा) यदि वह भिक्षु यह जाने कि दाता के हाथ आदि सचित्त जल, मिट्टी आदि से संसृष्ट नहीं हैं, किन्तु जो पदार्थ देना है, उसी से संसृष्ट हैं, तो ऐसे हाथों या बर्तन आदि से दिया गया आहार प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होने पर ग्रहण करे।

### सूत्र - ३६८

गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट साधु-साध्वी को यह ज्ञात हो जाए कि शालि-धान, जौ, गेहूँ आदि में सचित्तरज बहुत है, गेहूँ आदि अग्नि में भूँजे हुए हैं, किन्तु वे अर्धपक्व हैं, गेहूँ आदि के आटे में तथा कुटे हुए धान में भी अखण्ड दाने हैं, कण-सहित चावल के लम्बे दाने सिर्फ एक बार भुने हुए या कुटे हुए हैं, अतः असंयमी गृहस्थ भिक्षु के उद्देश्य से सचित्त शिला पर, सचित्त मिट्टी के ढेले पर, घुन लगे हुए लक्कड़ पर, या दीमक लगे हुए जीवा-धिष्ठित पदार्थ पर, अण्डे सहित, प्राण-सहित या मकड़ी आदि के जालों सहित शिला पर उन्हें कूट चूका है, कूट रहा है या कूटेगा; उसके पश्चात् वह उन-अनाज के दानों को लेकर उपन चूका है, उपन रहा है या उपनेगा; इस प्रकार के चावल आदि अन्नो को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे।

### सूत्र - ३६९

गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट साधु-साध्वी यदि यह जाने कि असंयमी गृहस्थ किसी विशिष्ट खान में

उत्पन्न नमक या समुद्र के किनारे खार और पानी के संयोग से उत्पन्न उद्भिज्ज लवण के सचित्त शिला, सचित्त मिट्टी के ढेले पर, घुन लगे लक्कड़ पर या जीवाधिष्ठित पदार्थ पर अण्डे, प्राण, हरियाली, बीज या मकड़ी के जाले सहित शिला पर टुकड़े कर चूका है, कर रहा है या करेगा, या पीस चूका है, पीस रहा है या पीसेगा तो साधु ऐसे सचित्त या सामुद्रिक लवण को अप्रासुक-अनैषणीय समझकर ग्रहण न करे ।

### सूत्र - ३७०

गृहस्थ के घर आहार के लिए प्रविष्ट साधु-साध्वी यदि यह जान जाए कि अशनादि आहार अग्नि पर रखा हुआ है, तो उस आहार को अप्रासुक-अनैषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे । केवली भगवान कहते हैं-यह कर्मों के आने का मार्ग है, क्योंकि असंयमी गृहस्थ साधु के उद्देश्य से अग्नि पर रखे हुए बर्तन में से आहार को नीकालता हुआ, उफनते हुए दूध आदि को जल आदि के छींटे देकर शान्त करता हुआ, अथवा उसे हाथ आदि से एक बार या बार-बार हिलाता हुआ, आग पर से उतारता हुआ या बर्तन को टेढ़ा करता हुआ वह अग्निकायिक जीवों की हिंसा करेगा । अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर भगवान ने पहले से ही प्रतिपादित किया है कि उसकी यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह कारण है और यह उपदेश है कि वह (साधु या साध्वी) अग्नि पर रखे हुए आहार को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे ।

यह (आहार-ग्रहण-विवेक) ही उस भिक्षु या भिक्षुणी की समग्रता है ।

### अध्ययन-१ – उद्देशक-७

### सूत्र - ३७१

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थ के यहाँ भीत पर, स्तम्भ पर, मंच पर, घर के अन्य ऊपरी भाग पर, महल पर, प्रासाद आदि की छत पर या अन्य उस प्रकार के किसी ऊंचे स्थान पर रखा हुआ है, तो इस प्रकार के ऊंचे स्थान से उतारकर दिया जाता अशनादि चतुर्विध आहार अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे ।

केवली भगवान कहते हैं-यह कर्मबन्ध का उपादान-कारण है; क्योंकि असंयत गृहस्थ भिक्षु को आहार देने के उद्देश्य से चौकी, पट्टा, सीढ़ी या ऊखल आदि को लाकर ऊंचा करके उस पर चढ़ेगा । ऊपर चढ़ता हुआ वह गृहस्थ फिसल सकता है या गिर सकता है । उसका हाथ, पैर, भुजा, छाती, पेट, सिर या शरीर का कोई अंग टूट जाएगा, अथवा उसके गिरने से प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन हो जाएगा, वे जीव नीच दब जाएंगे, परस्पर चिपककर कुचल जाएंगे, परस्पर टकरा जाएंगे, उन्हें पीड़ाजनक स्पर्श होगा, उन्हें संताप होगा, वे हैरान हो जाएंगे, वे त्रस्त हो जाएंगे, या एक स्थान से दूसरे स्थान पर उनका संक्रमण हो जाएगा, अथवा वे जीवन से भी रहित हो जाएंगे । अतः इस प्रकार के मालाहृत अशनादि चतुर्विध आहार के प्राप्त होने पर भी साधु उसे ग्रहण न करे ।

आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी को यह ज्ञात हो जाए कि असंयत गृहस्थ साधु के लिए अशनादि चतुर्विध आहार मिट्टी आदि बड़ी कोठी में से या ऊपर से संकड़े और नीचे से चौड़े भूमिगृह में से नीचा होकर, कुबड़ा होकर या टेढ़ा होकर कर देना चाहता है, तो ऐसे अशनादि चतुर्विध आहार को मालाहृत जान कर प्राप्त होने पर भी वह साधु या साध्वी ग्रहण न करे ।

### सूत्र - ३७२

साधु या साध्वी यह जाने कि वहाँ अशनादि आहार मिट्टी से लीपे हुए मुख वाले बर्तन में रखा हुआ है तो इस प्रकार का आहार प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे ।

केवली भगवान कहते हैं-यह कर्म आने का कारण है । क्योंकि असंयत गृहस्थ साधु को आहार देने के लिए मिट्टी से लीपे आहार के बर्तन का मुँह खोलता हुआ पृथ्वीकाय का समारम्भ करेगा तथा अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय तक का समारम्भ करेगा । शेष आहार की सुरक्षा के लिए फिर बर्तन को लिप्त करके वह पश्चात्कर्म करेगा । इसीलिए तीर्थंकर भगवान ने पहले से ही प्रतिपादित कर दिया है कि साधु-साध्वी की यह प्रतिज्ञा

है, यह हेतु है, यह कारण है और यही उपदेश है कि वह मिट्टी से लिप्त बर्तन को खोल कर दिये जाने वाले अशनादि चतुर्विध आहार को अप्रासुक एवं अनैषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे ।

गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि यह अशनादि चतुर्विध आहार पृथ्वीकाय पर रखा हुआ है, तो इस प्रकार का आहार अप्रासुक और अनैषणीय समझकर साधु-साध्वी ग्रहण न करे ।

वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि-अशनादि आहार अप्काय (सचित्त जल आदि) पर अथवा अग्निकाय पर रखा हुआ है, तो ऐसे आहार को अप्रासुक तथा अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे ।

केवली भगवान कहते हैं-यह कर्मों के उपादान का कारण है, क्योंकि असंयत गृहस्थ साधु के उद्देश्य से-अग्नि जलाकर, हवा देकर, विशेष प्रज्वलित करके या प्रज्वलित आग में से ईन्धन नीकाल कर, आग पर रखे हुए बर्तन को उतारकर, आहार लाकर दे देगा, इसीलिए तीर्थकर भगवान ने साधु-साध्वी के लिए पहले से बताया है, यही उनकी प्रतिज्ञा है, यही हेतु है यही कारण है और यही उपदेश है कि वे सचित्त-पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पर प्रतिष्ठित आहार को अप्रासुक और अनैषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे ।

### सूत्र - ३७३

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी को यह ज्ञात हो जाए कि साधु को देने के लिए यह अत्यन्त उष्ण आहार असंयत गृहस्थ सूप से, पँखे से, ताड़पत्र, खजूर आदि के पत्ते, शाखा, शाखाखण्ड से, मोर के पंख से अथवा उससे बने हुए पंखे से, वस्त्र से, वस्त्र के पल्ले से, हाथ से या मुँह से, पँखे आदि से हवा करके ठंडा करके देने वाला है । वह पहले विचार करे और उक्त गृहस्थ से कहे-आयुष्मन् गृहस्थ ! तुम इस अत्यन्त गर्म आहार को सूप, पँखे यावत् हवा करके ठंडा न करो । अगर तुम्हारी ईच्छा इस आहार को देने की हो तो, ऐसे ही दे दो । इस पर भी वह गृहस्थ न माने और उस अत्युष्ण आहार को यावत् ठण्डा करके देने लगे तो उस आहार को अप्रासुक और अनैषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे ।

### सूत्र - ३७४

गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यह जाने कि यह अशनादि चतुर्विध आहार वनस्पतिकाय पर रखा हुआ है तो उस प्रकार के वनस्पतिकाय प्रतिष्ठित आहार को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर प्राप्त होने पर न ले । इसी प्रकार त्रसकाय से प्रतिष्ठित आहार हो तो उसे भी ग्रहण न करे ।

### सूत्र - ३७५

गृहस्थ के घर में पानी के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि पानी के इन प्रकारों को जाने-जैसे कि-आटे के हाथ लगा हुआ पानी, तिल धोया हुआ पानी, चावल धोया हुआ पानी, अथवा अन्य किसी वस्तु का इसी प्रकार का तत्काल धोया हुआ पानी हो, जिसका स्वाद चलित-(परिवर्तित) न हुआ हो, जिसका रस अतिक्रान्त न हुआ (बदला न) हो, जिसके वर्ण आदि का परिणमन न हुआ हो, जो शस्त्र-परिणत न हुआ हो, ऐसे पानी को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर मिलने पर भी साधु-साध्वी ग्रहण न करे ।

इसके विपरीत यदि वह यह जाने के यह बहुत देर का चावल आदि का धोया हुआ धोवन है, इसका स्वाद बदल गया है, रस का भी अतिक्रमण हो गया है, वर्ण आदि भी परिणत हो गए हैं और शस्त्र-परिणत भी हैं तो उस पानक को प्रासुक और एषणीय जानकर प्राप्त होने पर साधु-साध्वी ग्रहण करे ।

गृहस्थ के यहाँ पानी के लिए प्रविष्ट साधु-साध्वी अगर जाने, कि तिलों का उदक; तुषोदक, यवोदक, उबले हुए चावलों का ओसामण, कांजी का बर्तन धोया हुआ जल, प्रासुक उष्णजल अथवा इसी प्रकार का अन्य-धोया हुआ पानी इत्यादि जल पहले देखकर ही साधु गृहस्थ से कहे-“आयुष्मन् गृहस्थ ! क्या मुझे इन जलों में से किसी जल को दोगे ?” साधु गृहस्थ से यदि कहे कि-“आयुष्मन् श्रमण ! जल पात्र में रखे हुए पानी को अपने पात्र से आप स्वयं उलीच कर या उलटकर ले लीजिए ।” गृहस्थ के इस प्रकार कहने पर साधु उस पानी को स्वयं ले ले अथवा गृहस्थ स्वयं देता हो तो उसे प्रासुक और एषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर ले ।

**सूत्र - ३७६**

गृहस्थ के यहाँ पानी के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि इस प्रकार का पानी जाने कि गृहस्थ ने प्रासुक जल को व्यवधान रहित सचित्त पृथ्वी पर यावत् मकड़ी के जालों से युक्त पदार्थ पर रखा है, अथवा सचित्त पदार्थ से युक्त बर्तन से नीकालकर रखा है। असंयत गृहस्थ भिक्षु को देने के उद्देश्य से सचित्त जल टपकते हुए अथवा जरा-से गीले हाथों से, सचित्त पृथ्वी आदि से युक्त बर्तन से, या प्रासुक जल के साथ सचित्त उदक मिलाकर लाकर दे तो उस प्रकार के पानक को अप्रासुक और अनैषणीय मानकर साधु उसे मिलने पर भी ग्रहण न करे। यह (आहार-पानी की गवेषणा का विवेक) उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि आचार सम्बन्धी) समग्रता है।

**अध्ययन-१ - उद्देशक-८****सूत्र - ३७७**

गृहस्थ के घर में पानी के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि इस प्रकार का पानक जाने, जैसे कि आम्रफल का पानी, अंबाड़क, कपित्थ, बीजौरे, द्राक्षा, दाड़िम, खजूर, नारियल, करीर, बेर, आँवले अथवा इमली का पानी, इसी प्रकार का अन्य पानी है, जो कि गुठली सहित है, छाल आदि सहित है, या बीज सहित है और कोई असंयत गृहस्थ साधु के निमित्त बाँस की छलनी से, वस्त्र से, एक बार या बार-बार मसल कर, छानता है और लाकर देने लगता है, तो साधु-साध्वी इस प्रकार के पानक को अप्रासुक और अनैषणीय मानकर मिलने पर भी न ले।

**सूत्र - ३७८**

वह भिक्षु या भिक्षुणी आहार प्राप्ति के लिए जाते पथिक-गृहों में, उद्यानगृहों में, गृहस्थों के घरों में या परिव्राजकों के मठों में अन्न की, पेय पदार्थ की, तथा कस्तूरी इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों की सौरभ सूँघ कर उस सुगन्ध के आस्वादन की कामना से उसमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रस्त एवं आसक्त होकर-उस गन्ध की सुवास न ले।

**सूत्र - ३७९**

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ कमलकन्द, पालाशकन्द, सरसों की बाल तथा अन्य इसी प्रकार का कच्चा कन्द है, जो शस्त्र-परिणत नहीं हुआ है, ऐसे कन्द आदि को अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे। यदि यह जाने के वहाँ पिप्पली, पिप्पली का चूर्ण, मिर्च या मिर्च का चूर्ण, अदरक या अदरक का चूर्ण तथा इसी प्रकार का अन्य कोई पदार्थ या चूर्ण, जो कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, उसे अप्रासुक जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि वहाँ ये जाने कि आम्र प्रलम्ब-फल, अम्बाडग-फल, ताल-प्रलम्ब-फल, सुरभि-प्रलम्ब-फल, शल्यकी का प्रलम्ब-फल तथा इसी प्रकार का अन्य प्रलम्ब फल का प्रकार, जो कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, उसे अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट साधु या साध्वी अगर वहाँ जाने-कि पीपल का प्रवाल, वड़ का प्रवाल, पाकड़ वृक्ष का प्रवाल, नन्दीवृक्ष का प्रवाल, शल्यकी वृक्ष का प्रवाल, या अन्य उस प्रकार का कोई प्रवाल है, जो कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, तो ऐसे प्रवाल को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी यदि जाने-कि शलाद फल, कपित्थ फल, अनार फल, बेल फल अथवा अन्य इसी प्रकार का कोमल फल कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, तो उसे अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि जाने, कि-उदुम्बर का चूर्ण वड़ का चूर्ण, पाकड़ का चूर्ण, पीपल का चूर्ण अथवा अन्य इसी प्रकार का चूर्ण है, जो कच्चा व थोड़ा पीसा हुआ है और जिसका योनि-बीज विध्वस्त नहीं हुआ है, तो उसे अप्रासुक और अनैषणीय जान कर प्राप्त होने पर भी न ले।

**सूत्र - ३८०**

साधु या साध्वी यदि जाने कि वहाँ भाजी है; सड़ी हुई खली है, मधु, मद्य, घृत और मद्य के नीचे का कीट बहुत पुराना है तो उन्हें ग्रहण न करे, क्योंकि उनमें प्राणी पुनः उत्पन्न हो जाते हैं, उनमें प्राणी जन्मते हैं, संवर्धित होते हैं,

इनमें प्राणियों का व्युत्क्रमण नहीं होता, ये प्राणी शस्त्र-परिणत नहीं होते, न ये प्राणी विध्वस्त होते हैं। अतः उसे अप्रासुक और अनैषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी उसे ग्रहण न करे।

### सूत्र - ३८१

गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ इक्षुखण्ड-है, अंककरेलु, निक्खा-रक, कसेरू, सिंघाड़ा एवं पूतिआलुक नामक वनस्पति है, अथवा अन्य इसी प्रकार की वनस्पति विशेष है, जो अपक्व तथा अशस्त्र-परिणत है, तो उसे अप्रासुक और अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के यहाँ भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ नीलकमल आदि या कमल की नाल है, पद्म कन्दमूल है, या पद्मकन्द के ऊपर की लता है, पद्मकेसर है, या पद्मकन्द है तो इसी प्रकार का अन्य कन्द है, जो कच्चा है, शस्त्र-परिणत नहीं है तो उसे अप्रासुक व अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

### सूत्र - ३८२

साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ अग्रबीज वाली, मूलबीज वाली, स्कन्धबीज वाली तथा पर्वबीज वाली वनस्पति है एवं अग्रजात, मूलजात, स्कन्धजात तथा पर्वजात वनस्पति है, तथा कन्दली का गूदा कन्दली का स्तबक, नारियल का गूदा, खजूर का गूदा, ताड़ का गूदा तथा अन्य इसी प्रकार की कच्ची और अशस्त्र-परिणत वनस्पति है, उसे अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के यहाँ भिक्षार्थ प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ ईख है, छेद वाला कान ईख है तथा जिसका रंग बदल गया है, जिसकी छाल फट गई है, सियारों ने थोड़ा-सा खा भी लिया है ऐसा फल है तथा बेंत का अग्रभाग है, कदली का मध्य भाग है एवं इसी प्रकार की अन्य कोई वनस्पति है, जो कच्ची और अशस्त्र-परिणत है, तो उसे साधु अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ लहसून है, लहसून का पत्ता, उसकी नाल, लहसून का कन्द या लहसून की बाहर की छाल, या अन्य प्रकार की वनस्पति है जो कच्ची और अशस्त्र-परिणत है, तो उसे अप्रासुक और अनैषणीय मानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी यदि यह जाने के वहाँ आस्थिक वृक्ष के फल, टैम्बरु के फल, टिम्ब का फल, श्रीपर्णी का फल, अथवा अन्य इसी प्रकार के फल, जो कि गड्ढे में दबा कर धूएं आदि से पकाए गए हों, कच्चे तथा शस्त्र-परिणत नहीं है, ऐसे फल को अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर भी नहीं लेना चाहिए।

साधु या साध्वी यदि यह जाने के वहाँ शाली धान आदि अन्न के कण हैं, कणों से मिश्रित छाणक है, कणों से मिश्रित कच्ची रोटी, चावल, चावलों का आटा, तिल, तिलकूट, तिलपपड़ी है, अथवा अन्य उसी प्रकार का पदार्थ है जो कि कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, उसे अप्रासुक और अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

यह (वनस्पतिकायिक आहार-गवेषणा) उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि आदि से सम्बन्धीत) समग्रता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-९

### सूत्र - ३८३

यहाँ पूर्व में, पश्चिम में, दक्षिण में या उत्तर दिशा में कई सदगृहस्थ, उनकी गृहपत्नीयाँ, उनके पुत्र-पुत्री, उनकी पुत्रवधू, उनकी दास-दासी, नौकर-नौकरानियाँ होते हैं, वे बहुत श्रद्धावान् होते हैं और परस्पर मिलने पर इस प्रकार बातें करते हैं-ये पूज्य श्रमण भगवान् शीलवान्, व्रतनिष्ठ, गुणवान्, संयमी, आस्रवों के निरोधक, ब्रह्मचारी एवं मैथुनकर्म से निवृत्त होते हैं। आधाकर्मिक अशन आदि खाना-पीना इन्हें कल्पनीय नहीं है। अतः हमने अपने लिए जो आहार बनाया है, वह सब हम इन श्रमणों को दे देंगे और हम बाद में अशनादि चतुर्विध आहार बना लेंगे। उनके इस वार्तालाप को सूनकर तथा जानकर साधु या साध्वी इस प्रकार के (दोषयुक्त) अशनादि आहार को अप्रासुक और अनैषणीय मानकर मिलने पर ग्रहण न करे।

**सूत्र - ३८४**

एक ही स्थान पर स्थिरवास करनेवाले या ग्रामानुग्राम विचरण करनेवाले साधु या साध्वी किसी ग्राम में यावत् राजधानीमें भिक्षाचर्या के लिए जब गृहस्थों के यहाँ जाने लगे, तब यदि वे जान जाए कि इस गाँव यावत् राजधानी में किसी भिक्षु के पूर्व-परिचित या पश्चात्-परिचित गृहस्थ, गृहस्थपत्नी, उसके पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू, दास-दासी, नौकर-नौकरानियाँ आदि श्रद्धालुजन रहते हैं तो इस प्रकार के घरों में भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए जाए-आए नहीं

केवली भगवान कहते हैं-यह कर्मों के आने का कारण है, क्योंकि समय से पूर्व अपने घर में साधु या साध्वी को आए देखकर वह उसके लिए आहार बनाने के सभी साधन जुटाएगा। अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थकरों द्वारा पूर्वोपदिष्ट यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु, कारण या उपदेश है कि वह इस प्रकार के परिचित कुलों में भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए जाए-आए नहीं। बल्कि स्वजनादि या श्रद्धालु परिचित घरों को जानकर एकान्त स्थान में चला जाए, कोई आता-जाता और देखता न हो, ऐसे एकान्त में खड़ा हो जाए। ऐसे स्वजनादि सम्बद्ध ग्राम आदि में भिक्षा के समय प्रवेश करे और स्वजनादि से भिन्न अन्यान्य घरों से सामुदानिक रूप से एषणीय तथा वेषमात्र से प्राप्त निर्दोष आहार उपभोग करे।

यदि कदाचित् भिक्षा के समय प्रविष्ट साधु को देखकर वह गृहस्थ उसके लिए आधाकर्मिक आहार बनाने के साधन जुटाने लगे या आहार बनाने लगे, उसे देखकर भी वह साधु इस अभिप्राय से चूपचाप देखता रहे कि जब यह आहार लेकर आएगा, तभी उसे लेने से इन्कार कर दूँगा, यह माया का स्पर्श करना है। साधु ऐसा न करे। वह पहले से ही इस पर ध्यान दे और कहे-आयुष्मन् ! इस प्रकार का आधाकर्मिक आहार खाना या पीना मेरे लिए कल्पनीय नहीं है। अतः मेरे लिए न तो इसके साधन एकत्रित करो और न इसे बनाओ। उस साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ आधाकर्मिक आहार बनाकर लाए और साधु को देने लगे तो वह साधु उस आहार को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर मिलने पर भी न ले।

**सूत्र - ३८५**

गृहस्थ के घरमें साधु-साध्वी के प्रवेश करने पर उसे यह ज्ञात हो जाए कि वहाँ किसी अतिथि के लिए माँस या मत्स्य भूना जा रहा है, तथा तेल के पुए बनाए जा रहे हैं, इसे देखकर वह अतिशीघ्रता से पास में जाकर याचना न करे। रुग्ण साधु के लिए अत्यावश्यक हो तो किसी पथ्यानुकूल सात्विक आहार की याचना कर सकता है।

**सूत्र - ३८६**

गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए जाने पर वहाँ से भोजन लेकर जो साधु सुगन्धित आहार स्वयं खा लेता है और दुर्गन्धित आहार बाहर फेंक देता है, वह माया-स्थान का स्पर्श करता है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। जैसा भी आहार प्राप्त हो, साधु उसका समभावपूर्वक उपभोग करे, उसमें से किंचित् भी फेंके नहीं।

**सूत्र - ३८७**

गृहस्थ के यहाँ पानी के लिए प्रविष्ट जो साधु-साध्वी वहाँ से यथाप्राप्त जल लेकर वर्ण-गन्ध-युक्त पानी को पी जाते हैं और कसैला पानी फेंक देते हैं, वे मायास्थान का स्पर्श करते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। जैसा भी जल प्राप्त हुआ हो, उसे समभाव से पी लेना चाहिए, उसमें से जरा-सा भी बाहर नहीं डालना चाहिए।

**सूत्र - ३८८**

भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु-साध्वी उसके यहाँ से बहुत-सा नाना प्रकार का भोजन ले आए तब वहाँ जो साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज तथा अपरिहारिक साधु-साध्वी निकटवर्ती रहते हों, उन्हें पूछे बिना एवं निमंत्रित किये बिना जो साधु-साध्वी उस आहार को परठ देते हैं, वे मायास्थान का स्पर्श करते हैं। वह साधु उस आहार को लेकर उन साधर्मिक, समनोज साधुओं के पास जाए। वहाँ जाकर सर्वप्रथम उस आहार को दिखाए और इस प्रकार कहे-आयुष्मन् श्रमणों ! यह चतुर्विध आहार हमारी आवश्यकता से बहुत अधिक है, अतः आप इसका उपभोग करें, और अन्यान्य भिक्षुओं को वितरित कर दें। इस प्रकार कहने पर कोई भिक्षु यों कहे कि-आयुष्मन्

श्रमण ! इस आहार में से जितना हम खा-पी सकेंगे, खा-पी लेंगे, अगर हम यह सारा का सारा उपभोग कर सके तो सारा खा-पी लेंगे । यही उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान-दर्शनादी की) समग्रता है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

### सूत्र - ३८९

साधु या साध्वी यदि जाने कि दूसरे के उद्देश्य से बनाया गया आहार देने के लिए नीकाला गया है, यावत् अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर स्वीकार न करे । यदि गृहस्वामी आदि ने उक्त आहार ले जाने की भलीभाँति अनुमति दे दी है । उन्होंने वह आहार उन्हें अच्छी तरह से सौंप दिया है यावत् तुम जिसे चाहे दे सकते हो तो उसे यावत् प्रासुक और एषणीय समझकर ग्रहण कर लेवे । - यही उस भिक्षु या भिक्षुणी की समग्रता है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१ - उद्देशक-१०

### सूत्र - ३९०

कोई भिक्षु साधारण आहार लेकर आता है और उन साधर्मिक साधुओं से बिना पूछे ही जिसे चाहता है, उसे बहुत दे देता है, तो ऐसा करके वह माया-स्थान का स्पर्श करता है । उसे ऐसा नहीं करना चाहिए ।

असाधारण आहार प्राप्त होने पर भी आहार को लेकर गुरुजनादि के पास जाए, कहे- "आयुष्मन् श्रमणों ! यहाँ मेरे पूर्व-परिचित तथा पश्चात्-परिचित, जैसे कि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर या गणावच्छेदक आदि, अगर आपकी अनुमति हो तो मैं इन्हें पर्याप्त आहार दूँ ।" उसके इस प्रकार कहने पर यदि गुरु-जनादि कहें- 'आयुष्मन् श्रमण ! तुम अपनी ईच्छानुसार उन्हें यथापर्याप्त आहार दे दो ।' वह साधु जितना वे कहें, उतना आहार उन्हें दे । यदि वे कहें कि 'सारा आहार दे दो', तो सारा का सारा दे दे ।

### सूत्र - ३९१

यदि कोई भिक्षु भिक्षा में सरस स्वादिष्ट आहार प्राप्त करके उसे नीरस तुच्छ आहार से ढँक कर छिपा देता है, ताकि आचार्य, उपाध्याय, यावत् गणावच्छेदक आदि मेरे प्रिय व श्रेष्ठ आहार को देखकर स्वयं न ले ले, मुझे इसमें से किसी को कुछ भी नहीं देना है । ऐसा करने वाला साधु मायास्थान का स्पर्श करता है । साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए । वह साधु उस आहार को लेकर आचार्य आदि के पास जाए और वहाँ जाते ही सबसे पहले झोली खोलकर पात्र को हाथ में ऊपर उठाकर एक-एक पदार्थ उन्हें बता दे । कोई भी पदार्थ जरा-भी न छिपाए । यदि कोई भिक्षु गृहस्थ के घर से प्राप्त भोजन को लेकर मार्ग में ही कहीं, सरस-सरस आहार को स्वयं खाकर शेष बचे तुच्छ एवं नीरस आहार को लाता है, तो ऐसा करने वाला साधु मायास्थान का सेवन करता है । साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए ।

### सूत्र - ३९२

साधु या साध्वी यदि यह जाने कि वहाँ ईक्ष के पर्व का मध्य भाग है, पर्वसहित इक्षुखण्ड है, पेरे हुए ईख के छिलके हैं, छिला हुआ अग्रभाग है, ईख की बड़ी शाखाएँ हैं, छोटी डालियाँ हैं, मूँग आदि की तोड़ी हुई फली तथा चौले की फलियाँ पकी हुई हैं, परन्तु इनके ग्रहण करने पर इनमें खाने योग्य भाग बहुत थोड़ा और फेंकने योग्य भाग बहुत अधिक है, इस प्रकार के अधिक फेंकने योग्य आहार को अकल्पनीय और अनैषणीय मानकर मिलने पर भी न ले ।

साधु या साध्वी यदि यह जाने कि इस गूदेदार पके फल में बहुत गुठलियाँ हैं, या इस अनन्नास में बहुत काँटे हैं, इसे ग्रहण करने पर इस आहार में खाने योग्य भाग अल्प है, फेंकने योग्य भाग अधिक है, तो इस प्रकार के गूदेदार फल के प्राप्त होने पर उसे अकल्पनीय समझकर न ले ।

भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए प्रवेश करे, तब यदि वह बहुत-सी गुठलियों एवं बीज वाले फलों के लिए आमंत्रण करे तो इस वचन सूनकर और उस पर विचार करके पहले ही साधु उससे कहे बहुत-से बीज-गुठली से युक्त फल लेना मेरे लिए कल्पनीय नहीं है । यदि तुम मुझे देना चाहते हो तो इस फल का जितना गूदा है, उतना मुझे दे दो, बीज-गुठलियाँ नहीं । भिक्षु के इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ अपने बर्तन में से उपर्युक्त फल लाकर देने लगे तो जब उसी गृहस्थ के हाथ या पात्र में वह हो तभी उसको अप्रासुक और अनैषणीय मानकर लेने से मना कर दे । इतने पर भी वह गृहस्थ हठात् साधु के पात्रमें डाल दे तो फिर न तो हाँ-हूँ कहे, न धिक्कार कहे और न ही अन्यथा कहे,

किन्तु उस आहार को लेकर एकान्तमें जाए । वहाँ जाकर जीव-जन्तु, काई, लीलण-फूलण, गीली मिट्टी, मकड़ी जाले आदि से रहित किसी निरवद्य उद्यान में या उपाश्रय में बैठकर उक्त फल के खाने योग्य सार भाग का उपभोग करे और फेंकने योग्य बीज, गुठलियों एवं काँटों को लेकर वह एकान्त स्थल में चला जाए यावत् प्रमार्जन करके उन्हें परठ दे ।

### सूत्र - ३९३

साधु या साध्वी को यदि गृहस्थ बीमार साधु के लिए खांड आदि की याचना करने पर अपने घर के भीतर रखे हुए बर्तन में से बिड़-लवण या उद्भिज-लवण को विभक्त करके उसमें से कुछ अंश नीकालकर, देने लगे तो वैसे लवण को जब वह गृहस्थ के पात्र में या हाथ में हो तभी उसे अप्रासुक, अनैषणीय समझकर लेने से मना कर दे। कदाचित् सहसा उस नमक को ग्रहण कर लिया हो, तो मालूम होने पर वह गृहस्थ यदि निकटवर्ती हो तो, लवणादि को लेकर वापिस उसके पास जाए । वहाँ जाकर कहे-आयुष्मन् गृहस्थ ! तुमने मुझे यह लवण जानबूझ कर दिया है या अनजाने में ? यदि वह कहे-अनजाने में ही दिया है, किन्तु आयुष्मन् ! अब यदि आपके काम आने योग्य है तो मैं आपको स्वेच्छा से जानबूझ कर देता हूँ । आप अपनी ईच्छानुसार इसका उपभोग करें या परस्पर बाँट लें । घर वालों के द्वारा इस प्रकार की अनुज्ञा मिलने तथा वह वस्तु समर्पित की जाने पर साधु अपने स्थान पर आकर (अचित्त हो तो) उसे यतनापूर्वक खाए तथा पीए ।

यदि स्वयं उसे खाने या पीने में असमर्थ हों तो वहाँ आस-पास जो साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ एवं अपरिहारिक साधु रहते हों, उन्हें दे देना चाहिए । यदि वहाँ आस-पास कोई साधर्मिक आदि साधु न हों तो उस पर्यास से अधिक आहार को जो परिष्ठापनविधि बताई है, तदनुसार एकान्त निरवद्य स्थान में जाकर परठ दे । यही उस भिक्षु या भिक्षुणी की समग्रता है ।

## अध्ययन-१ – उद्देशक-११

### सूत्र - ३९४

स्थिरवासी सम-समाचारी वाले साधु अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करनेवाले साधु भिक्षामें मनोज्ञ भोजन प्राप्त होने पर कहते हैं-जो भिक्षु ग्लान है, उसके लिए तुम यह मनोज्ञ आहार ले लो और उसे दे दो । अगर वह रोगी भिक्षु न खाए तो तुम खा लेना । उस भिक्षुने उनसे वह आहार को अच्छी तरह छिपाकर रोगी भिक्षु को दूसरा आहार दिखलाते हुए कहता है-भिक्षुओं न आपके लिए यह आहार दिया है । किन्तु यह आहार आपके लिए पथ्य नहीं है, यह रूक्ष है, तीखा है, कड़वा है, कसैला है, खट्टा है, अधिक मीठा है, अतः रोग बढ़ानेवाला है । इससे आपको कुछ भी लाभ नहीं होगा । इस प्रकार कपटाचरण करनेवाला भिक्षु मातृस्थान स्पर्श करता है । भिक्षु को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए । किन्तु जैसा भी आहार हो, उसे वैसा ही दिखलाए-रोगी को स्वास्थ्य लाभ हो, वैसा पथ्य आहार देकर उसकी सेवा करे

### सूत्र - ३९५

यदि समनोज्ञ स्थिरवासी साधु अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले साधुओं को मनोज्ञ भोजन प्राप्त होने पर यों कहे कि 'जो भिक्षु रोगी है, उसके लिए यह मनोज्ञ आहार ले जाओ, अगर वह रोगी भिक्षु इसे न खाए तो यह आहार वापस हमारे पास ले आना, क्योंकि हमारे यहाँ भी रोगी साधु है । इस पर आहार लेने वाला वह साधु उनसे कहे कि यदि मुझे आने में कोई विघ्न उपस्थित न हुआ तो यह आहार वापस ले आऊंगा । उसे उन पूर्वोक्त कर्मों के आयतनों का सम्यक् परित्याग करके (यथातथ्य व्यवहार करना चाहिए) ।

### सूत्र - ३९६

अब संयमशील साधु को सात पिण्डैषणाएं और सात पानैषणाएं जान लेनी चाहिए ।

(१) पहली पिण्डैषणा-असंसृष्ट हाथ और असंसृष्ट पात्र । हाथ और बर्तन (सचित्त) वस्तु से असंसृष्ट हो तो उनसे अशनादि आहार की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले । यह पहली पिण्डैषणा है ।

(२) दूसरी पिण्डैषणा है-संसृष्ट हाथ और संसृष्ट पात्र । यदि दाता का हाथ और बर्तन (अचित्त वस्तु से) लिप्त

है तो उनसे वह अशनादि आहार की स्वयं याचना करे या वह गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। यह दूसरी पिण्डैषणा है।

(३) तीसरी पिण्डैषणा है-इस क्षेत्र में पूर्व, आदि चारों दिशाओं में कई श्रद्धालु व्यक्ति रहते हैं, जैसे कि वे गृहपति, यावत् नौकरानियाँ हैं। उनके यहाँ अनेकविध बर्तनों में पहले से भोजन रखा हुआ होता है, जैसे कि थाल में, तपेली या बटलोई में, सरक में, परक में, वरक में। फिर साधु यह जाने कि गृहस्थ का हाथ तो (देय वस्तु से) लिप्त नहीं है, बर्तन लिप्त है, अथवा हाथ लिप्त है, बर्तन अलिप्त है, तब वह पात्रधारी या पाणिपात्र साधु पहले ही उसे देखकर कहे तुम मुझे असंसृष्ट हाथ में संसृष्ट बर्तन से अथवा संसृष्ट हाथ से असंसृष्ट बर्तन से, हमारे पात्र में या हाथ पर वस्तु लाकर दो। उस प्रकार के भोजन को या तो वह साधु स्वयं माँग ले, या फिर बिना माँगे ही गृहस्थ लाकर दे तो उसे प्रासुक एवं एषणीय समझकर मिलने पर ले ले। यह तीसरी पिण्डैषणा है।

(४) चौथी पिण्डैषणा है-भिक्षु यह जाने कि यहाँ कटकर तुष अलग किये हुए चावल आदि अन्न है, यावत् भुने शालि आदि चावल हैं, जिनके ग्रहण करने पर पश्चात्-कर्म की सम्भावना नहीं है और न ही तुष आदि गिराने पड़ते हैं, इस प्रकार के धान्य यावत् भुने शालि आदि चावल या तो साधु स्वयं माँग ले; या फिर गृहस्थ बिना माँगे ही उसे दे तो प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होने पर ले ले। यह चौथी पिण्डैषणा है।

(५) पाँचवी पिण्डैषणा है-...साधु यह जाने कि गृहस्थ के यहाँ अपने खाने के लिए किसी बर्तन में या भोजन रखा हुआ है, जैसे कि सकोरे में, काँसे के बर्तन में, या मिट्टी के किसी बर्तन में! फिर यह भी जान जाए कि उसके हाथ और पात्र जो सचित्त जल से धोए थे, अब कच्चे पानी से लिप्त नहीं है। उस प्रकार के आहार को प्रासुक जानकर या तो साधु स्वयं माँग ले या गृहस्थ स्वयं देने लगे तो वह ग्रहण कर ले। यह पाँचवी पिण्डैषणा है।

(६) छठी पिण्डैषणा है-...भिक्षु यह जाने कि गृहस्थ ने अपने लिए या दूसरे के लिए बर्तन में से भोजन नीकाला है, परन्तु दूसरे ने अभी तक उस आहार को ग्रहण नहीं किया है, तो उस प्रकार का भोजन गृहस्थ के पात्र में हो या उसके हाथ में हो, उसे प्रासुक और एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण करे। यह छठी पिण्डैषणा है।

(७) सातवीं पिण्डैषणा है-गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी वहाँ बहु-उज्झित-धर्मिक भोजन जाने, जिसे अन्य बहुत से द्विपद-चतुष्पद श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र और भिखारी लोग नहीं चाहते, उस प्रकार के भोजन की स्वयं याचना करे अथवा वह गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर ले ले। यह सातवीं पिण्डैषणा है।

(८) इसके पश्चात् सात पानैषणाएं हैं। इन सात पानैषणाओं में से प्रथम पानैषणा इस प्रकार है-असंसृष्ट हाथ और असंसृष्ट पात्र। इसी प्रकार शेष सब पानैषणाओं का वर्णन समझना। इतना विशेष है कि चौथी पानैषणा में नानात्व का निरूपण है-वह भिक्षु या भिक्षुणि जिन पान के प्रकारों के सम्बन्ध में जाने, यथा-तिल का धोवन, तुष का धोवन, जौ का धोवन (पानी), चावल आदि का पानी, कांजी का पानी या शुद्ध उष्णजल। इनमें से किसी भी प्रकार के पानी के ग्रहण करने पर निश्चय ही पश्चात्कर्म नहीं लगता हो तो उस प्रकार के पानी को प्रासुक और एषणीय मानकर ग्रहण कर ले।

### सूत्र - ३९७

इन सात पिण्डैषणाओं तथा सात पानैषणाओं में से किसी एक प्रतिमा को स्वीकार करने वाला साधु इस प्रकार न कहे कि 'इन सब साधु-भदन्तों ने मिथ्यारूप से प्रतिमाएं स्वीकार की हैं, एकमात्र मैंने ही प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया है।' (अपितु कहे) जो यह साधु-भगवंत इन प्रतिमाओं को स्वीकार करके विचरण करते हैं, जो मैं भी इस प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करता हूँ, ये सभी जिनाज्ञा में उद्यत हैं और इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे की समाधिपूर्वक विचरण करते हैं। इस प्रकार जो साधु-साध्वी पिण्डैषणा-पानैषणा का विधिवत् पालन करते हैं, उन्हीं में भिक्षुभाव की या ज्ञानादि आचार की समग्रता है।

### अध्ययन-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-२ – शय्येषणा

## उद्देशक-१

## सूत्र - ३९८

साधु या साध्वी उपाश्रय की गवेषणा करना चाहे तो ग्राम या नगर यावत् राजधानी में प्रवेश करके साधु के योग्य उपाश्रय का अन्वेषण करते हुए यदि यह जाने कि वह उपाश्रय अंडों से यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो वैसे उपाश्रय में वह साधु या साध्वी स्थान, शय्या और निषीधिका न करे । वह साधु या साध्वी जिस उपाश्रय को अंडों यावत् मकड़ी के जाले आदि से रहित जाने; वैसे उपाश्रय का यतनापूर्वक प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके उसमें कारयोत्सर्ग, संस्तारक एवं स्वाध्याय करे ।

यदि साधु ऐसा उपाश्रय जाने, जो कि इसी प्रतिज्ञा से प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का समारम्भ करके बनाया गया है, उसीके उद्देश्य से खरीदा गया है, उधार लिया गया है, निर्बल से छीना गया है, उसके स्वामी की अनुमति के बिना लिया गया है, तो ऐसा उपाश्रय; चाहे वह पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत यावत् स्वामी द्वारा आसेवित हो या अनासेवित, उसमें कारयोत्सर्ग, शय्या-संस्तारक या स्वाध्याय न करे । वैसे ही बहुत-से साधर्मिक साधुओं, एक साधर्मिणी साध्वी, बहुत-सी साधर्मिणी साध्वीयों के उद्देश्य से बनाये हुए आदि उपाश्रय में कारयोत्सर्गादि का निषेध समझना चाहिए ।

वह साधु या साध्वी यदि ऐसा उपाश्रय जाने, जो बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रों एवं भिखारियों के उद्देश्य से प्राणी आदि का समारम्भ करके बनाया गया है, वह अपुरुषान्तरकृत आदि हो, तो ऐसे उपाश्रय में कारयोत्सर्ग आदि न करे ।

वह साधु या साध्वी यदि ऐसा उपाश्रय जाने; जो कि बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रों एवं भिखमंगों के खास उद्देश्य से बनाया तथा खरीदा आदि गया है, ऐसा उपाश्रय अपुरुषान्तरकृत आदि हो, अनासेवित हो तो, ऐसे उपाश्रय में कारयोत्सर्गादि न करे ।

इसके विपरीत यदि ऐसा उपाश्रय जाने, जो श्रमणादि को गिन-गिन कर या उनके उद्देश्य से बनाया आदि गया हो, किन्तु वह पुरुषान्तरकृत है, उसके मालिक द्वारा अधिकृत है, परिभुक्त तथा आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके उसमें यतनापूर्वक कारयोत्सर्ग, शय्या या स्वाध्याय करे ।

वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसा उपाश्रय जाने कि असंयत गृहस्थ ने साधुओं के निमित्त बनाया है, काष्ठादि लगा कर संस्कृत किया है, बाँस आदि से बाँधा है, घास आदि से आच्छादित किया है, गोबर आदि से लीपा है, संवारा है, घिसा है, चिकना किया है, या ऊबड़खाबड़ स्थान को समतल बनाया है, सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किया है, ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो उनमें कारयोत्सर्ग, शय्यासंस्तारक और स्वाध्याय न करे । यदि वह यह जान जाए कि ऐसा उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उसमें स्थान आदि क्रिया करे ।

## सूत्र - ३९९

वह साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि असंयत गृहस्थ ने साधुओं के लिए जिसके छोटे द्वार को बड़ा बनाया है, जैसे पिण्डेषणा अध्ययन में बताया गया है, यहाँ तक कि उपाश्रय के अन्दर और बाहर ही हरियाली ऊखाड़-ऊखाड़ कर, काट-काट कर वहाँ संस्तारक बिछाया गया है, अथवा कोई पदार्थ उसमें से बाहर नीकाले गए हैं, वैसे उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो वहाँ कारयोत्सर्गादि क्रियाएं न करें ।

यदि वह यह जाने कि ऐसा उपाश्रय पुरुषान्तरकृत है, यावत् आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक स्थान आदि करे ।

वह साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि असंयत गृहस्थ, साधुओं के निमित्त से पानी से उत्पन्न हुए कन्द, मूल, पत्तों, फूलों या फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जा रहा है, भीतर से कन्द आदि पदार्थों को बाहर

नीकाला गया है, ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो उसमें साधु कायोत्सर्गादि क्रियाएं न करें यदि वह यह जाने कि ऐसा उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक स्थानादि कार्य कर सकता है ।

वह साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि असंयत-गृहस्थ साधुओं को उसमें ठहराने की दृष्टि से चौकी, पट्टे, नसैनी या ऊखल आदि सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा रहा है, अथवा कई पदार्थ बाहर नीकाल रहा है, यदि वैसा उपाश्रय-अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो साधु उसमें कायोत्सर्गादि कार्य न करे ।

यदि फिर वह जान जाए कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है, तो उनका प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उसमें स्थानादि कार्य करे ।

### सूत्र - ४००

वह साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जो कि एक स्तम्भ पर है, या मचान पर है, दूसरी आदि मंजिल पर है, अथवा महल के ऊपर है, अथवा प्रासाद के तल पर बना हुआ है, अथवा ऊंचे स्थान पर स्थित है, तो किसी अत्यंत गाढ़ कारण के बिना उक्त उपाश्रय में स्थान-स्वाध्याय आदि कार्य न करे ।

कदाचित् किसी अनिवार्य कारणवश ऐसे उपाश्रय में ठहरना पड़े, तो वहाँ प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से हाथ, पैर, आँख, दाँत या मुँह एक बार या बार-बार न धोए, वहाँ मल-मूत्रादि का उत्सर्ग न करे, जैसे कि उच्चार, प्रस्रवण, मुख का मल, नाक का मैल, वमन, पित्त, मवाद, रक्त तथा शरीर के अन्य किसी भी अवयव के मल का त्याग वहाँ न करे, क्योंकि केवलज्ञानी प्रभु ने इसे कर्मों के आने का कारण बताया है ।

वह (साधु) वहाँ से मलोत्सर्ग आदि करता हुआ फिसल जाए या गिर पड़े । ऊपर से फिसलने या गिरने पर उसके हाथ, पैर, मस्तक या शरीर के किसी भी भाग में, या इन्द्रिय पर चोट लग सकती है, ऊपर से गिरने से स्थावर एवं त्रस प्राणी भी घायल हो सकते हैं, यावत् प्राणरहित हो सकते हैं । अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थकर आदि द्वारा पहले से ही बताई हुई यह प्रतिज्ञा है, हेतु है, कारण है और उपदेश है कि इस प्रकार के उच्च स्थान में स्थित उपाश्रय में साधु कायोत्सर्ग आदि कार्य न करे ।

### सूत्र - ४०१

वह भिक्षु या भिक्षुणी जिस उपाश्रय को स्त्रियों से, बालकों से, क्षुद्र प्राणियों से या पशुओं से युक्त जाने तथा पशुओं या गृहस्थ के खाने-पीने योग्य पदार्थों से जो भरा हो, तो इस प्रकार के उपाश्रय में साधु कायोत्सर्ग कार्य न करे ।

साधु का गृहपतिकुल के साथ निवास कर्मबन्ध का उपादान कारण है । गृहस्थ परिवार के साथ निवास करते हुए हाथ पैर आदि का कदाचित् स्तम्भन हो जाए अथवा सूजन हो जाए, विशुचिका या वमन की व्याधि उत्पन्न हो जाए, अथवा अन्य कोई ज्वर, शूल, पीड़ा, दुःख या रोगांतक पैदा हो जाए, ऐसी स्थिति में वह गृहस्थ करुणाभाव से प्रेरित होकर उस भिक्षु के शरीर पर तेल, घी, नवनीत अथवा वसा से मालिश करेगा । फिर उसे प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से स्नान कराएगा अथवा कल्क, लोध, वर्णक, चूर्ण या पद्म से घिसेगा, शरीर पर लेप करेगा, अथवा शरीर का मैल दूर करने के लिए उबटन करेगा । तदनन्तर प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से एक धोएगा या, मल-मलकर नहलाएगा, अथवा मस्तक पर पानी छींटेगा तथा अरणी की लकड़ी को परस्पर रगड़ कर अग्नि उज्ज्वलित-प्रज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा अधिक तपाएगा ।

इस तरह गृहस्थकुल के साथ उसके घर में ठहरने से अनेक दोषों की संभावना देखकर तीर्थकर प्रभु ने भिक्षु के लिए पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि वह ऐसे गृहस्थकुलसंसक्त मकान में न ठहरे, न ही कायोत्सर्गादि क्रियाएं करे ।

### सूत्र - ४०२

साधु के लिए गृहस्थ-संसर्गयुक्त उपाश्रय में निवास करना अनेक दोषों का कारण है क्योंकि उसमें गृहपति, उसकी पत्नी, पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ, दास-दासियाँ, नौकर-नौकरानियाँ आदि रहती हैं । कदाचित् वे परस्पर एक-दूसरे को

कटु वचन कहें, मारे-पीटे, बंद करे या उपद्रव करे। उन्हें ऐसा करते देख भिक्षु के मन में ऊंचे-नीचे भाव आ सकते हैं। इसलिए तीर्थकरों ने पहले से ही साधु के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है, हेतु, कारण या उपदेश दिया है कि वह गृहस्थसंसर्गयुक्त उपाश्रय में न ठहरे, न कायोत्सर्गादि करे।

### सूत्र - ४०३

गृहस्थों के साथ एक मकान में साधु का निवास करना इसलिए भी कर्मबन्ध का कारण है कि उसमें गृह-स्वामी अपने प्रयोजन के लिए अग्निकाय को उज्ज्वलित-प्रज्वलित करेगा, प्रज्वलित अग्नि को बुझाएगा। वहाँ रहते हुए भिक्षु के मन में कदाचित् ऊंचे-नीचे परिणाम आ सकते हैं कि ये गृहस्थ अग्नि को उज्ज्वलित करे अथवा उज्ज्वलित न करे, तथा ये अग्नि को प्रज्वलित करे अथवा प्रज्वलित न करे, अग्नि को बुझा दे या न बुझाए।

इसीलिए तीर्थकरों ने पहले से ही साधु के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि वह उस उपाश्रय में न ठहरे, न कायोत्सर्गादि क्रिया करे।

### सूत्र - ४०४

गृहस्थों के साथ एक जगह निवास करना साधु के लिए कर्मबन्ध का कारण है। जैसे कि उस मकान में गृहस्थ के कुण्डल, करधनी, मणि, मुक्ता, चाँदी, सोना या सोने के कड़े, बाजूबंद, तीनलड़ा-हार, फूलमाला, अठारह लड़ी का हार, नौ लड़ी का हार, एकावली हार, मुक्तावली हार, या कनकावली हार, रत्नावली हार, अथवा वस्त्रा-भूषण आदि से अलंकृत और विभूषित युवती या कुमारी कन्या को देखकर भिक्षु अपने मन में ऊंच-नीच संकल्प-विकल्प कर सकता है कि ये आभूषण आदि मेरे घर में भी थे, एवं मेरी स्त्री या कन्या भी इसी प्रकार की थी, या ऐसी नहीं थी। इसीलिए तीर्थकरों ने पहले से ही साधुओं के लिए ऐसी प्रतिज्ञा का निर्देश दिया है, ऐसा हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि साधु ऐसे उपाश्रय में न ठहरे, न कायोत्सर्गादि क्रियाएं करे।

### सूत्र - ४०५

गृहस्थों के साथ एक स्थान में निवास करने वाले साधु के लिए कि उसमें गृहपत्नीयाँ, गृहस्थ की पुत्रियाँ, पुत्रवधूएं, उसकी धायमाताएं, दासियाँ या नौकरानियाँ भी रहेंगी। उनमें कभी परस्पर ऐसा वार्तालाप भी होना सम्भव है कि, 'ये जो श्रमण भगवान होते हैं, वे शीलवान, वयस्क, गुणवान, संयमी, शान्त, ब्रह्मचारी एवं मैथुन धर्म से सदा उपरत होते हैं। अतः मैथुन-सेवन इनके लिए कल्पनीय नहीं है। परन्तु जो स्त्री इनके साथ मैथुन-क्रीड़ा में प्रवृत्त होती है, उसे ओजस्वी, तेजस्वी, प्रभावशाली, रूपवान और यशस्वी तथा संग्राम में शूरवीर, चमक-दमक वाले एवं दर्शनीय पुत्र की प्राप्ति होती है। यह बातें सूनकर, उनमें से पुत्र-प्राप्ति की ईच्छुक कोई स्त्री उस तपस्वी भिक्षु को मैथुन-सेवन के लिए अभिमुख कर ले, ऐसा सम्भव है। इसीलिए तीर्थकरों ने साधुओं के लिए पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा बताई है, यावत् साधु ऐसे गृहस्थों से संसक्त उपाश्रय में न ठहरे, न कायोत्सर्गादि क्रिया करे।

## अध्ययन-२ – उद्देशक-२

### सूत्र - ४०६

कोई गृहस्थ शौचाचार-परायण होते हैं और भिक्षुओं के स्नान न करने के कारण तथा मोकाचारी होने के कारण उनके मोकलिप्त शरीर और वस्त्रों से आने वाली वह दुर्गन्ध उस गृहस्थ के लिए प्रतिकूल और अप्रिय भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त वे गृहस्थ जो कार्य पहले करते थे, अब भिक्षुओं की अपेक्षा से बाद में करेंगे और जो कार्य बाद में करते थे, वे पहले करने लगेंगे अथवा भिक्षुओं के कारण वे असमय में भोजनादि क्रियाएं करेंगे या नहीं भी करेंगे। अथवा वे साधु उक्त गृहस्थ के लिहाज से प्रतिलेखनादि क्रियाएं समय पर नहीं करेंगे, बाद में करेंगे, या नहीं भी करेंगे। इसलिए तीर्थकरादि ने भिक्षुओं के लिए पहले से ही यह प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि वह गृहस्थ-संसक्त उपाश्रय में कायोत्सर्ग, ध्यान आदि क्रियाएं न करें।

### सूत्र - ४०७

गृहस्थों के साथ में निवास करने वाले साधु के लिए वह कर्मबन्ध का कारण हो सकता है, क्योंकि वहाँ गृहस्थ

ने अपने लिए नाना प्रकार के भोजन तैयार किये होंगे, उसके पश्चात् वह साधुओं के लिए अशनादि चतुर्विध आहार तैयार करेगा। उस आहार को साधु भी खाना या पीना चाहेगा या उस आहार में आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा। इसलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थकरों ने पहले से यह प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि वह गृहस्थ-संसक्त उपाश्रय में स्थानादि कार्य न करे।

### सूत्र - ४०८

गृहस्थ के साथ ठहरने वाले साधु के लिए वह कर्मबन्ध का कारण हो सकता है, क्योंकि वहीं गृहस्थ अपने स्वयं के लिए पहले नाना प्रकार के काष्ठ-ईंधन को काटेगा, उसके पश्चात् वह साधु के लिए भी विभिन्न प्रकार के ईंधन को काटेगा, खरीदेगा या किसी से उधार लेगा और काष्ठ से काष्ठ का घर्षण करके अग्निकाय को उज्ज्वलित एवं प्रज्वलित करेगा। ऐसी स्थितिमें सम्भव है वह साधु भी गृहस्थ की तरह शीत निवारणार्थ अग्नि का आताप और प्रताप लेना चाहेगा तथा उसमें आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा। इसीलिए तीर्थकर भगवानने पहले से ही भिक्षु के लिए यह प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि वह गृहस्थ संसक्त उपाश्रयमें स्थानादि कार्य न करे

### सूत्र - ४०९

वह भिक्षु या भिक्षुणी रात में या विकाल में मल-मूत्रादि की बाधा होने पर गृहस्थ के घर का द्वारभाग खोलेगा, उस समय कोई चोर या उसका सहचर घर में प्रविष्ट हो जाएगा, तो उस समय साधु को मौन रखना होगा। ऐसी स्थिति में साधु के लिए ऐसा कहना कल्पनीय नहीं है कि यह चोर प्रवेश कर रहा है, या प्रवेश नहीं कर रहा है, यह छिप रहा है या नहीं छिप रहा है, नीचे कूद रहा है या नहीं कूदता है, बोल रहा है या नहीं बोल रहा है, इसने चूराया है, या किसी दूसरे ने चूराया है, उसका धन चूराया है अथवा दूसरे का धन चूराया है द यही चोर है, या यह उसका उपचारक है, यह घातक है, इसी ने यहाँ यह कार्य किया है। और कुछ भी न कहने पर जो वास्तव में चोर नहीं है, उस तपस्वी साधु पर चोर होने की शंका हो जाएगी। इसीलिए तीर्थकर भगवान ने पहले से ही साधु के लिए यह प्रतिज्ञा बताई है यावत् वहाँ कायोत्सर्गादि क्रिया करे।

### सूत्र - ४१०

जो साधु या साध्वी उपाश्रय के सम्बन्ध में यह जाने कि उसमें घास के ढेर या पुआल के ढेर, अंडे, बीज, हरियाली, ओस, सचित्त जल, कीडीनगर, काई, लीलण-फूलण, गीली मिट्टी या मकड़े के जालों से युक्त हैं, तो इस प्रकार के उपाश्रय में वह स्थान, शयन आदि कार्य न करें। यदि वह साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि उसमें घास के ढेर या पुआल का ढेर, अंडों, बीजों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त नहीं है तो इस प्रकार के उपाश्रय में वह स्थान-शयनादि कार्य करे।

### सूत्र - ४११

पथिकशालाओं में, उद्यान में निर्मित विश्रामगृहों में, गृहस्थ के घरों में, या तापसों के मठों आदि में जहाँ (- अन्य सम्प्रदाय के) साधु बार-बार आते-जाते हों, वहाँ निर्ग्रन्थ साधुओं को मासकल्प आदि नहीं करना चाहिए।

### सूत्र - ४१२

हे आयुष्मन् ! जिन पथिकशाला आदिमें साधु भगवंतोंने ऋतुबद्ध मासकल्प या वर्षावास कल्प बीताया है, उन्हीं स्थानोंमें अगर वे बिना कारण पुनः पुनः निवास करते हैं, तो उनकी वह शय्या कालातिक्रान्त दोषयुक्त होती है।

### सूत्र - ४१३

हे आयुष्मन् ! जिन पथिकशालाओं आदि में, जिन साधु भगवंतोंने ऋतुबद्ध कल्प या वर्षावास कल्प बीताया है, उससे दूगुना-दूगुना काल अन्यत्र बीताये बिना पुनः उन्हीं में आकर ठहर जाते हैं तो उनकी वह शय्या उपस्थान दोषयुक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१४

आयुष्मन् ! इस संसार में पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु हैं जैसे कि गृहस्वामी, गृह-

पत्नी, उसकी पुत्र-पुत्रियाँ, पुत्रवधूएँ, धायमाताएँ, दास-दासियाँ या नौकर-नौकरानियाँ आदि; उन्होंने निर्ग्रन्थ साधुओं के आचार-व्यवहार के विषय में तो सम्यक्तया नहीं सूना है, किन्तु उन्होंने यह सूना है कि साधु-महात्माओं को निवास के लिए स्थान आदि का दान देने से स्वर्गादि फल मिलता है। इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति एवं अभिरुचि रखते हुए उन गृहस्थों ने बहुत से शाक्यादि श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथि-दरिद्रों और भिखारियों आदि के उद्देश्य से विशाल मकान बनवा दिए हैं। जैसे कि लुहार आदि की शालाएँ, देवालय की पार्श्ववर्ती धर्मशालाएँ, सभाएँ, प्रपाएँ, दुकानें, मालगोदाम, यानगृह, रथादि बनाने के कारखाने, चूने के कारखाने, दर्भ, चर्म एवं वल्कल के कारखाने, कोयले के कारखाने, काष्ठ-कर्मशाला, श्मशान भूमि में बने हुए घर, पर्वत पर बने हुए मकान, पर्वत की गुफा से निर्मित आवासगृह, शान्तिकर्मगृह, पाषाणमण्डल, उस प्रकार के गृहस्थ निर्मित आवासस्थानों में, निर्ग्रन्थ आकर ठहरते हैं, तो वह शय्या अभिक्रान्तक्रिया से युक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१५

हे आयुष्मन् ! इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में अनेक श्रद्धालु होते हैं, जैसे कि गृहपति यावत् नौकरानियाँ। निर्ग्रन्थ साधुओं के आचार से अनभिज्ञ इन लोगों ने श्रद्धा, प्रतीति और अभिरुचि से प्रेरित होकर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण आदि के उद्देश्य से विशाल मकान बनवाए हैं, जैसे कि लोहकारशाला यावत् भूमिगृह। ऐसे लोहकारशाला यावत् भूमिगृहों में चरकादि परिव्राजक शाक्यादि श्रमण इत्यादि पहले नहीं ठहरे हैं। ऐसे मकानों में अगर निर्ग्रन्थ श्रमण आकर पहले ठहरते हैं, तो वह शय्या अनभिक्रान्तक्रिया युक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१६

इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में कई श्रद्धा भक्ति से युक्त जन हैं, जैसे कि गृहपति यावत् उसकी नौकरानियाँ। उन्हें पहले से ही यह ज्ञात होता है कि ये श्रमण भगवंत शीलवान् यावत् मैथुनसेवन से उपरत होते हैं, इन भगवंतों के लिए आधाकर्मदोष से युक्त उपाश्रय में निवास करना कल्पनीय नहीं है। अतः हमने अपने प्रयोजन के लिए जो ये लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि बनवाए हैं, वे सब हम इन श्रमणों को दे देंगे, और हम अपने प्रयोजन के लिए बाद में दूसरे लोहकारशाला आदि बना लेंगे।

गृहस्थों का इस प्रकार का वार्तालाप सूनाकर तथा समझकर भी जो निर्ग्रन्थ श्रमण गृहस्थों द्वारा प्रदत्त उक्त प्रकार के लोहकारशाला आदि मकानों में आकर ठहरते हैं, वे अन्यान्य छोटे-बड़े उपहार रूप घरों का उपयोग करते हैं, तो आयुष्मन् शिष्य ! उनकी वह शय्या वर्ज्यक्रिया से युक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१७

इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में कई श्रद्धालुजन होते हैं, जैसे कि गृहपति, यावत् दासियाँ आदि। वे उनके आचार-व्यवहार से तो अनभिज्ञ होते हैं, लेकिन वे श्रद्धा, प्रतीति और रुचि से प्रेरित होकर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण यावत् भिक्षाचरों को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से जहाँ-तहाँ लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि विशाल भवन बनवाते हैं। जो निर्ग्रन्थ साधु उस प्रकार के लोहकारशाला आदि भवनों में आकर रहते हैं, वहाँ रहकर वे अन्यान्य छोटे-बड़े उपहार रूप में प्रदत्त घरों का उपयोग करते हैं तो वह शय्या उनके लिए महावर्ज्यक्रिया से युक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१८

इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में कई श्रद्धालु व्यक्ति होते हैं, जैसे कि-गृहपति, उसकी पत्नी यावत् नौकरानियाँ आदि। वे उनके आचार-व्यवहार से तो अज्ञात होते हैं, लेकिन श्रमणों के प्रति श्रद्धा, प्रतीति और रुचि से युक्त होकर सब प्रकार के श्रमणों के उद्देश्य से लोहकारशाला यावत् भूमिगृह बनवाते हैं। सभी श्रमणों के उद्देश्य से निर्मित उस प्रकार के मकानों में जो निर्ग्रन्थ श्रमण आकर ठहरते हैं, तथा गृहस्थों द्वारा यावत् गृहों का उपयोग करते हैं, उनके लिए वह शय्या सावद्यक्रिया दोष से युक्त हो जाती है।

### सूत्र - ४१९

इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में गृहपति, उनकी पत्नी, पुत्री, पुत्रवधू आदि कई श्रद्धा-भक्ति से ओतप्रोत व्यक्ति हैं उन्होंने साधुओं के आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में तो जाना-सूना नहीं है, किन्तु उनके प्रति श्रद्धा, प्रतीति और

रुचि से प्रेरित होकर उन्होंने किसी एक ही प्रकार के निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग के उद्देश्य से लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि मकान जहाँ-तहाँ बनवाए हैं। उन मकानों का निर्माण पृथ्वीकाय के यावत् त्रसकाय के महान् संरम्भ-समारम्भ और आरंभ से तथा नाना प्रकार के महान् पापकर्मजनक कृत्यों से हुआ है जैसे कि साधु वर्ग के लिए मकान पर छत आदि डाली गई है, उसे लीपा गया है, संस्तारक कक्ष को सम बनाया गया है, द्वार के ढक्कन लगाया गया है, इन कार्यों में शीतल सचित्त पानी पहले ही डाला गया है, अग्नि भी पहले प्रज्वलित की गई है। जो निर्ग्रन्थ श्रमण उस प्रकार के आरम्भ-निर्मित लोहकारशाला आदि मकानों में आकर रहते हैं, भेंट रूप में प्रदत्त छोटे-बड़े गृहों में ठहरते हैं, वे द्विपक्ष (द्रव्य से साधुरूप और भाव से गृहस्वरूप) कर्म का सेवन करते हैं। यह शय्या महा-सावद्यक्रिया से युक्त होती है।

### सूत्र - ४२०

इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में कतिपय गृहपति यावत् नौकरानियाँ श्रद्धालु व्यक्ति हैं। वे साधुओं के आचार-व्यवहार के विषय में सून चूके हैं, वे साधुओं के प्रति श्रद्धा, प्रतीति और रुचि से प्रेरित भी हैं, किन्तु उन्होंने अपने निजी प्रयोजन के लिए यत्र-तत्र मकान बनवाए हैं, जैसे कि लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि। उनका निर्माण पृथ्वीकाय के यावत् त्रसकाय के महान् संरम्भ-समारम्भ एवं आरम्भ से तथा नाना प्रकार के पापकर्मजनक कृत्यों से हुआ है। जो पूज्य निर्ग्रन्थ श्रमण उस प्रकार के लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि वासस्थानों में आकर रहते हैं, अन्यान्य प्रशस्त उपहाररूप पदार्थों का उपयोग करते हैं वे एकपक्ष (भाव के साधुरूप) कर्म का सेवन करते हैं। हे आयुष्मन्! यह शय्या अल्पसावद्यक्रिया रूप होती है। यह (शय्यैषणाविवेक) ही उस भिक्षु या भिक्षुणी के लिए समग्रता है।

### अध्ययन-२ – उद्देशक-३

### सूत्र - ४२१

वह प्रासुक, उच्छ और एषणीय उपाश्रय सुलभ नहीं है। और न ही इन सावद्यकर्मों के कारण उपाश्रय शुद्ध मिलता है, जैसे कि कहीं साधु के निमित्त उपाश्रय का छप्पर छाने से या छत डालने से, कहीं उसे लीपने-पोतने से, कहीं संस्तारकभूमि सम करने से, कहीं उसे बन्द करने के लिए द्वार लगाने से, कहीं शय्यातर गृहस्थ द्वारा साधु के लिए आहार बनाकर देने से एषणादोष लगाने के कारण।

कई साधु विहार चर्या-परायण हैं, कई कायोत्सर्ग करने वाले हैं, कई स्वाध्यायरत हैं, कई साधु शय्या-संस्तारक एवं पिण्डपात की गवेषणा में रत रहते हैं। इस प्रकार संयम या मोक्ष का पथ स्वीकार किये हुए कितने ही सरल एवं निष्कपट साधु माया न करते हुए उपाश्रय के यथावस्थित गुण-दोष बतला देते हैं।

कई गृहस्थ पहले से साधु को दान देने के लिए उपाश्रय बनवाकर रख लेते हैं, फिर छलपूर्वक कहते हैं- 'यह मकान हमने चरक आदि परिव्राजकों के लिए रख छोड़ा है, या यह मकान, हमने पहले से अपने लिए बनवा कर रख छोड़ा है, अथवा पहले से यह मकान भाई-भतीजों को देने के लिए रखा है, दूसरों ने भी पहले इस मकान का उपयोग कर लिया है, नापसंद होने के कारण बहुत पहले से हमने इस मकान को खाली छोड़ रखा है। पूर्णतया निर्दोष होने के कारण आप इस मकान का उपयोग कर सकते हैं।' विचक्षण साधु इस प्रकार के छल को सम्यक् तया जानकर उस उपाश्रय में न ठहरे।

प्रश्न 'गृहस्थों के पूछने पर जो साधु इस प्रकार उपाश्रय के गुण-दोषों को सम्यक् प्रकार से बतला देता है, क्या वह सम्यक् है?' 'हाँ, वह सम्यक् है।'

### सूत्र - ४२२

वह साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जो छोटा है, या छोटे द्वारों वाला है, तथा नीचा है, या नित्य जिसके द्वार बंध रहते हैं, तथा चरक आदि परिव्राजकों से भरा हुआ है। इस प्रकार के उपाश्रय में वह रात्रि में या विकाल में भीतर से बाहर निकलता हुआ या भीतर प्रवेश करता हुआ पहले हाथ से टटोल ले, फिर पैर से संयम पूर्वक नीकले या प्रवेश करे। केवली भगवान कहते हैं (अन्यथा) यह कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि वहाँ पर शाक्य आदि

श्रमणों के या ब्राह्मणों के जो छत्र, पात्र, दंड, लाठी, ऋषि-आसन, नालिका, वस्त्र, चिलिमिली मृगचर्म, चर्मकोश, या चर्म-छेदनक हैं, वे अच्छी तरह से बंधे हुए नहीं हैं, अस्त-व्यस्त रखे हुए हैं, अस्थिर हैं, कुछ अधिक चंचल हैं। रात्रि में या विकाल में अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर (अयतना से) नीकलता-जाता हुआ साधु यदि फिसल पड़े या गिर पड़े (तो उनके उक्त उपकरण टूट जाएंगे) अथवा उस साधु के फिसलने या गिर पड़ने से उसके हाथ, पैर, सिर या अन्य इन्द्रियों के चोट लग सकती है या वे टूट सकते हैं, अथवा प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों को आघात लगेगा, वे दब जाएंगे यावत् वे प्राण रहित हो जाएंगे।

इसलिए तीर्थकर आदि आप्तपुरुषों ने पहले से यह प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि इस प्रकार के उपाश्रय में रात को या विकाल में पहले हाथ से टटोल कर फिर पैर रखना चाहिए तथा यतना पूर्वक गमनागमन करना चाहिए।

### सूत्र - ४२३

वह साधु पथिकशालाओं, आरामगृहों, गृहपति के घरों, परिव्राजकों के मठों आदि को देख-जान कर और विचार करके कि यह उपाश्रय कैसा है ? इसका स्वामी कौन है ? फिर उपाश्रय की याचना करे। जैसे कि वहाँ पर या उस उपाश्रय का स्वामी है, समधिष्ठाता है, उससे आज्ञा माँगे और कहे- आयुष्मन् ! आपकी ईच्छानुसार जितने काल तक और जितना भाग आप देना चाहें, उतने काल तक, उतने भाग में हम रहेंगे।

गृहस्थ यह पूछे कि "आप कितने समय तक यहाँ रहेंगे ?" इस पर मुनि उत्तर दे- "आयुष्मन् सदगृहस्थ ! आप जितने समय तक और उपाश्रय के जितने भाग में ठहरने की अनुज्ञा देंगे, उतने समय और स्थान तक में रहकर फिर हम विहार कर जाएंगे। इसके अतिरिक्त जितने भी साधर्मिक साधु आएंगे, वे भी आपकी अनुमति के अनुसार उतने समय और उतने भाग में रहकर फिर विहार कर जाएंगे।"

### सूत्र - ४२४

साधु या साध्वी जिस गृहस्थ के उपाश्रय में निवास करें, उसका नाम और गोत्र पहले से जान ले। उसके पश्चात् उसके घर में निमंत्रित करने या न करने पर भी उसके घर या अशनादि चतुर्विध आहार अप्रासुक-अनैषणीय जानकर ग्रहण न करें।

### सूत्र - ४२५

वह साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि से युक्त हो, सचित्त जल से युक्त हो, तो उसमें प्राज्ञ साधु-साध्वी को निर्गमन-प्रवेश करना उचित नहीं है और न ही ऐसा उपाश्रय वाचना, यावत् चिन्तन के लिए उपयुक्त है। ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग आदि कार्य न करे।

### सूत्र - ४२६

वह साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जिसमें निवास के लिए गृहस्थ के घर में से होकर जाना पड़ता हो, अथवा जो उपाश्रय गृहस्थ के घर से प्रतिबद्ध है, वहाँ प्राज्ञ साधु का आना-जाना उचित नहीं है और न ही ऐसा उपाश्रय वाचनादि स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है। ऐसे उपाश्रय में साधु स्थानादि कार्य न करे।

### सूत्र - ४२७

यदि साधु या साध्वी ऐसे उपाश्रय को जाने कि इस उपाश्रय-बस्ती में गृह-स्वामी, उसकी पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ पुत्रवधुएं, दास-दासियाँ आदि परस्पर एक दूसरे को कोसती हैं-झिड़कती हैं, मारती-पीटती, यावत् उपद्रव करती हैं, प्रज्ञावान साधु को इस प्रकार के उपाश्रय में न तो निर्गमन-प्रवेश ही करना योग्य है, और न ही वाचनादि स्वाध्याय करना उचित है। यह जानकर साधु इस प्रकार के उपाश्रय में स्थानादि कार्य न करे।

### सूत्र - ४२८

साधु या साध्वी अगर जाने कि इस उपाश्रय में गृहस्थ, उसकी पत्नी, पुत्री यावत् नौकरानियाँ एक-दूसरे के शरीर पर तेल, घी, नवनीत या वसा से मर्दन करती हैं या चुपड़ती हैं, तो प्राज्ञ साधु का वहाँ जाना-आना ठीक नहीं है

और न ही वहाँ वाचनादि स्वाध्याय करना । साधु इस प्रकार के उपाश्रय में स्थानादि कार्य न करे ।

### सूत्र - ४२९

साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, कि इस उपाश्रय में गृहस्वामी यावत् नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे के शरीर को स्नान करने योग्य पानी से, कर्क से, लोघ्न से, वर्णद्रव्य से, चूर्ण से, पक्ष से मलती हैं, रगड़ती हैं, मैल उतारती हैं, उबटन करती हैं; वहाँ प्राज्ञ साधु का नीकलना या प्रवेश करना उचित नहीं है और न ही वह स्थान वाचनादि स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है । ऐसे उपाश्रय में साधु स्थानादि कार्य न करे ।

### सूत्र - ४३०

वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि जाने कि इस उपाश्रय में गृहस्वामी, यावत् नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे के शरीर पर प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से छींटे मारती हैं, धोती हैं, सींचती हैं, या स्नान कराती हैं, ऐसा स्थान प्राज्ञ के जाने-आने या स्वाध्याय के लिए उपयुक्त नहीं है । इस प्रकार के उपाश्रय में साधु स्थानादि क्रिया न करे ।

### सूत्र - ४३१

साधु या साध्वी ऐसे उपाश्रय को जाने, जिसकी बस्ती में गृहपति, उसकी पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ यावत् नौकरानियाँ आदि नग्न खड़ी रहती हैं या नग्न बैठी रहती हैं, और नग्न होकर गुप्त रूप से मैथुन-धर्म विषयक परस्पर वार्तालाप करती हैं, अथवा किसी रहस्यमय अकार्य के सम्बन्ध में गुप्त-मंत्रणा करती हैं; तो वहाँ प्राज्ञ-साधु का निर्गमन-प्रवेश या वाचनादि करना उचित नहीं है । इस प्रकार के उपाश्रय में साधु कायोत्सर्गादि क्रिया न करे ।

### सूत्र - ४३२

वह साधु या साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने जो गृहस्थ स्त्री-पुरुषों आदि के चित्रों से सुसज्जित है, तो ऐसे उपाश्रय में प्राज्ञ साधु को निर्गमन-प्रवेश करना या वाचना आदि करना उचित नहीं है । इस प्रकार के उपाश्रय में साधु स्थानादि कार्य न करे ।

### सूत्र - ४३३

कोई साधु या साध्वी संस्तारक की गवेषणा करना चाहे और वह जिस संस्तारक को जाने कि वह अण्डों से यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो ऐसे संस्तारक को मिलने पर भी ग्रहण न करे । जिस संस्तारक को जाने कि वह अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु भारी है, वैसे संस्तारक को भी मिलने पर ग्रहण न करे ।

वह साधु या साध्वी, जिस संस्तारक को जाने कि वह अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हलका भी है, किन्तु अप्रातिहारिक है, तो ऐसे संस्तारक को भी मिलने पर ग्रहण न करे । जिस संस्तारक को जाने कि वह अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हलका भी है, प्रातिहारिक भी है, किन्तु ठीक से बंधा हुआ नहीं है, तो ऐसे संस्तारक को भी मिलने पर ग्रहण न करे ।

वह साधु या साध्वी, संस्तारक को जाने कि वह अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हलका है, प्रातिहारिक है और सुदृढ़ बंधा हुआ भी है, तो ऐसे संस्तारक को मिलने पर ग्रहण करे ।

### सूत्र - ४३४

इन दोषों के आयतनों को छोड़कर साधु इन चार प्रतिमाओं से संस्तारक की एषणा करना जान ले-पहली प्रतिमा यह है-साधु-साध्वी अपने संस्तरण के लिए आवश्यक और योग्य वस्तुओं का नामोल्लेख कर-कर के संस्तारक की याचना करे, जैसे इक्कड, कढिणक, जंतुक, परक, सभी प्रकार का तृण, कुश, कूर्चक, वर्वक नामक तृण विशेष, या पराल आदि । साधु पहले से ही इक्कड आदि किसी भी प्रकार की घास का बना हुआ संस्तारक देखकर गृहस्थ के नामोल्लेख पूर्वक कहे क्या तुम मुझे इन संस्तारकमें से अमुक संस्तारक को दोगे ? इस प्रकार के प्रासुक एवं निर्दोष संस्तारक की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ ही बिना याचना किए दे तो साधु उसे ग्रहण कर ले । यह प्रथम प्रतिमा है

### सूत्र - ४३५

दूसरी प्रतिमा यह है साधु या साध्वी गृहस्थ के मकान में रखे हुए संस्तारक को देखकर उनकी याचना करे कि

क्या तुम मुझे इन संस्तारकों में से किसी एक संस्तारक को दोगे ? इस प्रकार के निर्दोष एवं प्रासुक संस्तारक की स्वयं याचना करे, यदि दाता बिना याचना किए ही दे तो प्रासुक एवं एषणीय जानकर उसे ग्रहण करे ।

इसके अनन्तर तीसरी प्रतिमा यह है-यह साधु-साध्वी जिस उपाश्रय में रहना चाहता है, यदि किसी उपाश्रय में इक्कड़ यावत् पराल तक के संस्तारक हों तो गृहस्वामी की आज्ञा लेकर उस संस्तारक को प्राप्त करके वह साधना में संलग्न रहे । यदि संस्तारक न मिले तो वह उत्कटुक आसन, पद्मासन आदि आसनों में बैठकर रात्रि व्यतीत करे ।

### सूत्र - ४३६

चौथी प्रतिमा यह है-वह साधु या साध्वी उपाश्रय में पहले से ही संस्तारक बिछा हुआ हो, जैसे कि वहाँ तृणशय्या, पथर की शिला या लकड़ी का तख्त, तो उस संस्तारक की गृहस्वामी से याचना करे, उसके प्राप्त होने पर वह उस पर शयन आदि क्रिया कर सकता है । यदि वहाँ कोई भी संस्तारक बिछा हुआ न मिले तो वह उत्कटुक आसन तथा पद्मासन आदि आसनों से बैठकर रात्रि व्यतीत करे । यह चौथी प्रतिमा है ।

### सूत्र - ४३७

इन चारों प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा को धारण करके विचरण करने वाला साधु, अन्य प्रतिमाधारी साधुओं की निन्दा या अवहेलना करता हुआ यों न कहे-ये सब साधु मिथ्या रूप से प्रतिमा धारण किये हुए हैं, मैं ही अकेला सम्यक् रूप से प्रतिमा स्वीकार किए हुए हूँ । ये जो साधु भगवान इन चार प्रतिमाओं में से किसी एक को स्वीकार करके विचरण करते हैं, और मैं जिस प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करता हूँ, ये सब जिनाज्ञा में उपस्थित हैं । इस प्रकार पारस्परिक समाधिपूर्वक विचरण करे ।

### सूत्र - ४३८

वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि संस्तारक वापस लौटाना चाहे, उस समय यदि उस संस्तारक को अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त जाने तो इस प्रकार का संस्तारक (उस समय) वापस न लौटाए ।

### सूत्र - ४३९

वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि संस्तारक वापस सौंपना चाहे, उस समय उस संस्तारक को अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित जाने तो, उस प्रकार के संस्तारक को बार-बार प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके, सूर्य की धूप देकर एवं यतनापूर्वक झाड़कर गृहस्थ को संयत्नपूर्वक वापस सौंपे ।

### सूत्र - ४४०

जो साधु या साध्वी स्थिरवास कर रहा हो, या उपाश्रय में रहा हुआ हो, अथवा ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ आकर ठहरा हो, उस प्रज्ञावान, साधु को चाहिए कि वह पहले ही उसके परिपार्श्व में उच्चार-प्रस्रवण-विसर्जन भूमि को अच्छी तरह देख ले ।

केवली भगवान ने कहा है-यह अप्रतिलेखित उच्चार-प्रस्रवण-भूमि कर्मबन्ध का कारण है । कारण यह है कि वैसी भूमि में कोई भी साधु या साध्वी रात्रि में या विकाल में मल-मूत्रादि का परिष्ठापन करता हुआ फिसल या गिर सकता है । उसके पैर फिसलने या गिरने पर हाथ, पैर, सिर या शरीर के किसी अवयव को गहरी चोट लग सकती है, अथवा वहाँ स्थित प्राणी, भूत, जीव या सत्त्व को चोट लग सकती है, ये दब सकते हैं, यहाँ तक कि मर सकते हैं ।

इसी कारण तीर्थकरादि आप्त पुरुषों ने पहले से ही भिक्षुओं के लिए यह प्रतिज्ञा बताई है, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि साधु को उपाश्रय में ठहरने से पहले मल-मूत्र-परिष्ठापन करने हेतु भूमि की आवश्यक प्रतिलेखना कर लेनी चाहिए ।

### सूत्र - ४४१

साधु या साध्वी शय्या-संस्तारकभूमि की प्रतिलेखना करना चाहे, वह आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेदक, बालक, वृद्ध, शैक्ष, ग्लान एवं अतिथि साधु के द्वारा स्वीकृत भूमि को छोड़कर उपाश्रय के अन्दर, मध्य स्थान में या सम और विषम स्थान में, अथवा वातयुक्त और निर्वातस्थान में भूमि का बार-बार

प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके अत्यन्त प्रासुक शय्या-संस्तारक को यतनापूर्वक बिछाए ।

### सूत्र - ४४२

साधु या साध्वी अत्यन्त प्रासुक शय्या-संस्तारक बिछाकर उस शय्या-संस्तारक पर चढ़ना चाहे तो उस पर चढ़ने से पूर्व मस्तक सहित शरीर के ऊपरी भाग से लेकर पैरों तक भली-भाँति प्रमार्जन करके फिर यतनापूर्वक उस शय्यासंस्तारक पर आरूढ़ हो । उस अतिप्रासुक शय्यासंस्तारक पर आरूढ़ होकर यतनापूर्वक उस पर शयन करे ।

### सूत्र - ४४३

साधु या साध्वी उस अतिप्रासुक शय्यासंस्तारक पर शयन करते हुए परस्पर एक दूसरे को, अपने हाथ से दूसरे के हाथ की, अपने पैरों से दूसरे के पैर की और अपने शरीर से दूसरे के शरीर को आशातना नहीं करना चाहिए । अपितु एक दूसरे की आशातना न करते हुए यतनापूर्वक सोना चाहिए । वह साधु या साध्वी उच्छ्वास या निश्वास लेते हुए, खाँसते हुए, छींकते हुए, या उबासी लेते हुए, डकार लेते हुए, अथवा अपानवायु छोड़ते हुए पहले ही मुँह या गुदा को हाथ से अच्छी तरह ढाँक कर यतना से उच्छ्वास आदि ले यावत् अपानवायु को छोड़े ।

### सूत्र - ४४४

संयमशील साधु या साध्वी को किसी समय सम शय्या मिले या विषम मिले, कभी हवादार निवास-स्थान प्राप्त हो या निर्वात हो, किसी दिन धूल से भरा उपाश्रय मिले या स्वच्छ मिले, कदाचित् उपसर्गयुक्त शय्या मिले या उपसर्ग रहित मिले । इन सब प्रकार की शय्याओं के प्राप्त होने पर जैसी भी सम-विषम आदि शय्या मिली, उसमें समचित्त होकर रहे, मन में जरा भी खेद या ग्लानि का अनुभव न करे ।

यही (शय्यैषणा-विवेक) उस भिक्षु या भिक्षुणी का सम्पूर्ण भिक्षुभाव है, कि वह सब प्रकार से ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के आचार से युक्त होकर सदा समाहित होकर विचरण करने का प्रयत्न करता है । - ऐसा मैं कहता हूँ

## अध्ययन-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-३ – ईर्या

## उद्देशक-१

## सूत्र - ४४५

वर्षाकाल आ जाने पर वर्षा हो जाने से बहुत-से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत-से बीज अंकुरित हो जाते हैं, मार्गों में बहुत-से प्राणी, बहुत-से बीज उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत हरियाली हो जाती है, ओस और पानी बहुत स्थानों में भर जाते हैं, पाँच वर्ण की काई, लीलण-फूलण आदि हो जाती है, बहुत-से स्थानों में कीचड़ या पानी से मिट्टी गीली हो जाती है, कई जगह मकड़ी के जाले हो जाते हैं। वर्षा के कारण मार्ग रूक जाते हैं, मार्ग पर चला नहीं जा सकता। इस स्थिति को जानकर साधु को (वर्षाकाल में) एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार नहीं करना चाहिए। अपितु वर्षाकाल में यथावसर प्राप्त वसति में ही संयत रहकर वर्षावास व्यतीत करना चाहिए।

## सूत्र - ४४६

वर्षावास करने वाले साधु या साध्वी को उस ग्राम, नगर, खेड़, कर्बट, मडम्ब, पट्टण, द्रोणमुख, आकर, निगम, आश्रम, सन्निवेश या राजधानी की स्थिति भलीभाँति जान लेनी चाहिए। जिस ग्राम, नगर यावत् राजधानी में एकान्त में स्वाध्याय करने के लिए विशाल भूमि न हो, मलमूत्र त्याग के लिए योग्य विशाल भूमि न हो, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक की प्राप्ति भी सुलभ न हो, और न प्रासुक, निर्दोष एवं एषणीय आहार-पानी ही सुलभ हो, जहाँ बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र और भिखारी लोग आए हुए हों, और भी दूसरे आने वाले हों, जिससे सभी मार्गों में भीड़ हो, साधु-साध्वी को भिक्षाटन, स्वाध्याय, शौच आदि आवश्यक कार्यों से अपने स्थान से सुखपूर्वक नीकलना और प्रवेश करना भी कठिन हो, स्वाध्याय आदि क्रिया भी निरुपद्रव न हो सकती हो, ऐसे ग्राम, नगर आदि में वर्षाकाल प्रारंभ हो जाने पर भी साधु-साध्वी वर्षावास व्यतीत न करे।

वर्षावास करने वाला साधु या साध्वी यदि ग्राम यावत् राजधानी के सम्बन्ध में यह जाने कि इस ग्राम यावत् राजधानी में स्वाध्याय-योग्य विशाल भूमि है, मल-मूत्र-विसर्जन के लिए विशाल स्थण्डिलभूमि है, यहाँ पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक की प्राप्ति भी सुलभ है, साथ ही प्रासुक, निर्दोष एवं एषणीय आहार-पानी भी सुलभ है, यहाँ बहुत-से श्रमण-ब्राह्मण आदि आये हुए नहीं हैं और न आएँगे, यहाँ के मार्गों पर जनता की भीड़ भी इतनी नहीं है, जिससे कि साधु-साध्वी को भिक्षाटन, स्वाध्याय, शौच आदि आवश्यक कार्यों के लिए अपने स्थान से नीकलना और प्रवेश करना कठिन हो, स्वाध्यायादि क्रिया भी निरुपद्रव हो सके, तो ऐसे ग्राम यावत् राजधानी में साधु या साध्वी संयमपूर्वक वर्षावास व्यतीत करे।

## सूत्र - ४४७

साधु या साध्वी यह जाने कि वर्षाकाल व्यतीत हो चूका है, अतः वृष्टि न हो तो चातुर्मासिक काल समाप्त होते ही अन्यत्र विहार कर देना चाहिए। यदि कार्तिक मास में वृष्टि हो जाने से मार्ग आवागमन के योग्य न रहे तो हेमन्त ऋतु के पाँच या दस दिन व्यतीत हो जाने पर वहाँ से विहार करना चाहिए। यदि मार्ग बीच-बीच में अंडे, बीज, हरियाली, यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो, अथवा वहाँ बहुत-से श्रमण-ब्राह्मण आदि आए हुए न हों, न ही आने वाले हों, तो यह जानकर साधु ग्रामानुग्राम विहार न करे।

यदि साधु या साध्वी यह जाने कि वर्षाकाल के चार मास व्यतीत हो चुके हैं, और वृष्टि हो जाने से मुनि को हेमन्त ऋतु के पाँच अथवा दस दिन तक वहीं रहने के पश्चात् अब मार्ग ठीक हो गए हैं, बीच-बीच में अब अण्डे यावत् मकड़ी के जाले आदि नहीं हैं, बहुत-से श्रमण-ब्राह्मण आदि भी उन मार्गों पर आने-जाने लगे हैं, या आने वाले भी हैं, तो यह जानकर साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार कर सकता है।

## सूत्र - ४४८

साधु या साध्वी एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करते हुए अपने सामने की युगमात्र भूमि को देखते हुए चले और मार्ग में त्रसजीवों को देखे तो पैर के अग्रभाग को उठाकर चले। यदि दोनों ओर जीव हों तो पैरों को सिकोड़ कर

चले अथवा दोनों पैरों को तिरछे-टेढ़े रखकर चले । यदि कोई दूसरा साफ मार्ग हो, तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए, किन्तु जीवजन्तुओं से युक्त सरल मार्ग से न जाए । साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यह जाने कि मार्ग में बहुत से त्रस प्राणी हैं, बीज बिखरे हैं, हरियाली है, सचित्त पानी है या सचित्त मिट्टी है, जिसकी योनि विध्वस्त नहीं हुई है, ऐसी स्थिति में दूसरा निर्दोष मार्ग हो तो साधु-साध्वी उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाएं, किन्तु उस सरल मार्ग से न जाए ।

### सूत्र - ४४९

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में विभिन्न देशों की सीमा पर रहने वाले दस्युओं के, म्लेच्छों के या अनार्यों के स्थान मिले तथा जिन्हें बड़ी कठिनता से आर्यों का आचार समझाया जा सकता है, जिन्हें दुःख से, धर्मबोध देकर अनार्यकर्मों से हटाया जा सकता है, ऐसे अकाल में जागने वाले, कुसमय में खाने-पीने वाले मनुष्यों के स्थान मिले तो अन्य ग्राम आदि में विहार हो सकता है या अन्य आर्यजनपद विद्यमान हो, तो प्रासुक-भोजी साधु उन म्लेच्छादि के स्थान में विहार करने की दृष्टि से जाने का मन में संकल्प न करे ।

केवली भगवान कहते हैं-वहाँ जाना कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि वे म्लेच्छ अज्ञानी लोग साधु को देखकर- 'यह चोर है, यह हमारे शत्रु के गाँव से आया है', यों कहकर वे उस भिक्षु को गाली-गलौच करेंगे, कोसेंगे, रस्सों से बाँधेंगे, कोठरी में बंद कर देंगे, डंडों से पीटेंगे, अंगभंग करेंगे, हैरान करेंगे, यहाँ तक कि प्राणों से रहित भी कर सकते हैं, इसके अतिरिक्त वे दुष्ट उसके वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोँछन आदि उपकरणों को तोड़-फोड़ डालेंगे, अपहरण कर लेंगे या उन्हें कहीं दूर फेंक देंगे । इसीलिए तीर्थकर आदि आप्त पुरुषों द्वारा भिक्षुओं के लिए पहले से ही निर्दिष्ट यह प्रतिज्ञा, हेतु, कारण और उपदेश है कि भिक्षु उन सीमा-प्रदेशवर्ती दस्युस्थानों तथा म्लेच्छ, अनार्य, दुर्बोध्य आदि लोगों के स्थानों में, अन्य आर्य जनपदों तथा आर्य ग्रामों के होते हुए जाने का संकल्प भी न करे । अतः इन स्थानों को छोड़कर संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ।

### सूत्र - ४५०

साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग में यह जाने कि ये अराजक प्रदेश है, या यहाँ केवल युवराज का शासन है, जो कि अभी राजा नहीं बना है, अथवा दो राजाओं का शासन है, या परस्पर शत्रु दो राजाओं का राज्याधिकार है, या धर्मादि-विरोधी राजा का शासन है, ऐसी स्थिति में विहार के योग्य अन्य आर्य जनपदों के होते, इस प्रकार के प्रदेशों में विहार करने की दृष्टि से गमन करने का विचार न करे ।

केवली भगवान ने कहा है-ऐसे अराजक आदि प्रदेशों में जाना कर्मबन्ध का कारण है । क्योंकि वे अज्ञानी जन साधु के प्रति शंका कर सकते हैं कि 'यह चोर है, यह गुप्तचर है, यह हमारे शत्रु राजा के देश से आया है' तथा इस प्रकार की कुशंका से ग्रस्त होकर वे साधु को अपशब्द कह सकते हैं, मार-पीट सकते हैं, यहाँ तक कि उसे जान से भी मार सकते हैं । इसके अतिरिक्त उसके वस्त्र, पात्र, कंबल, पाद-प्रोँछन आदि उपकरणों को तोड़फोड़ सकते हैं, लूट सकते हैं और दूर फेंक सकते हैं । इन सब आपत्तियों की संभावना से तीर्थकर आदि आप्त पुरुषों द्वारा साधुओं के लिए पहले से ही यह प्रतिज्ञा, हेतु, कारण और उपदेश निर्दिष्ट है कि साधु अराजक आदि प्रदेशों में जाने का संकल्प न करे । अतः साधु को इन प्रदेशों को छोड़कर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए ।

### सूत्र - ४५१

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी यह जाने कि आगे लम्बा अटवी-मार्ग है । यदि उस अटवी के विषय में वह यह जाने कि यह एक, दो, तीन, चार, या पाँच दिनों में पार किया जा सकता है अथवा पार किया जा सकता है, तो विहार के योग्य अन्य मार्ग होते, उस अनेक दिनों में पार किये जा सकने वाले भयंकर अटवी-मार्ग से जाने का विचार न करे । केवली भगवान कहते हैं-ऐसा करना कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि मार्ग में वर्षा हो जाने से द्वीन्द्रिय आदि जीवों की उत्पत्ति हो जाने पर, मार्ग में कोई लीलन-फूलन, बीज, हरियाली, सचित्त पानी और अविध्वस्त मिट्टी आदि के होने से संयम की विराधना होनी संभव है । इसीलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थकरादि ने पहले

से इस प्रतिज्ञा हेतु, कारण और उपदेश का निर्देश किया है कि साधु अन्य साफ और एकाद दिन में ही पार किया जा सके ऐसे मार्ग के रहते इस प्रकार के अटवी-मार्ग से जाने का संकल्प न करे। अतः साधु को परिचित और साफ मार्ग से ही यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए।

### सूत्र - ४५२

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी यह जाने कि मार्ग में नौका द्वारा पार कर सकने योग्य जलमार्ग है; परन्तु यदि वह यह जाने कि नौका असंयत के निमित्त मूल्य देकर खरीद कर रहा है, या उधार ले रहा है, या नौका की अदला-बदली कर रहा है, या नाविक नौका को स्थल से जल में लाता है, अथवा जल से उसे स्थल में खींच ले जाता है, नौका से पानी उलीचकर खाली करता है, अथवा कीचड़ में फँसी हुई नौका को बाहर नीकाल कर साधु के लिए तैयार करके साधु को उस पर चढ़ने के लिए प्रार्थना करता है; तो इस प्रकार की नौका (पर साधु न चढ़े।) चाहे वह ऊर्ध्वगामिनी हो, अधोगामिनी हो या तिर्यग्गामिनी, जो उत्कृष्ट एक योजनप्रमाण क्षेत्र में चलती है, या अर्द्ध योजनप्रमाण क्षेत्र में चलती है, गमन करने के लिए उस नौका पर साधु सवार न हो।

(कारणवश नौका में बैठना पड़े तो) साधु या साध्वी सर्वप्रथम तिर्यग्गामिनी नौका को जान-देख ले। यह जानकर वह गृहस्थ की आज्ञा को लेकर एकान्त में चला जाए। वहाँ जाकर भाण्डोपकरण का प्रतिलेखन करे, तत्पश्चात् सभी उपकरणों को इकट्ठे करके बाँध ले। फिर सिर से लेकर पैर तक शरीर का प्रमार्जन करे। आगार सहित प्रत्याख्यान करे। यह सब करके एक पैर जल में और एक स्थल में रखकर यतनापूर्वक उस नौका पर चढ़े।

### सूत्र - ४५३

साधु या साध्वी नौका पर चढ़ते हुए न नौका के अगले भाग में बैठे, न पिछले भाग में बैठे और न मध्य भागमें। तथा नौका के बाजुओं को पकड़-पकड़ कर या अंगुली से बता-बताकर या उसे ऊंची या नीची करके एकटक जल को न देखे।

यदि नाविक नौका में चढ़े हुए साधु से कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! तुम इस नौका को ऊपर की ओर खींचो, अथवा अमुक वस्तु को नौका में रखकर नौका को नीचे की ओर खींचो, या रस्सी को पकड़कर नौका को अच्छी तरह से बाँध दो, अथवा रस्सी से कस दो।" नाविक के इस प्रकार के वचनों को स्वीकार न करे, किन्तु मौन बैठा रहे।

यदि नौकारूढ़ साधु को नाविक यह कहे कि-"आयुष्मन् श्रमण ! यदि तुम नौका को ऊपर या नीचे की ओर खींच नहीं सकते, या रस्सी पकड़कर नौका को भलीभाँति बाँध नहीं सकते या जोर से कस नहीं सकते, तो नाव पर रखी हुई रस्सी को लाकर दो। हम स्वयं नौका को ऊपर या नीचे की ओर खींच लेंगे, जोर से कस देंगे।" इस पर भी साधु नाविक के इस वचन को स्वीकार न करे, चूपचाप उपेक्षाभाव से बैठा रहे।

यदि नाविक यह कहे कि-"आयुष्मन् श्रमण ! जरा इस नौका को तुम डांड से, पीठ से, बड़े बाँस से, बल्ली से और अबलुक से तो चलाओ।" नाविक के इस प्रकार के वचन को मुनि स्वीकार न करे, बल्कि उदासीन भाव से मौन होकर बैठा रहे।

नौका में बैठे हुए साधु से अगर नाविक यह कहे कि "इस नौका में भरे हुए पानी को तुम हाथ से, पैर से, भाजन से या पात्र से, उलीच कर बाहर नीकाल दो।" परन्तु साधु नाविक के इस वचन को स्वीकार न करे, वह मौन होकर बैठा रहे।

यदि नाविक नौकारूढ़ साधु से यह कहे कि "नाव में हुए इस छिद्र को तो तुम अपने हाथ से, पैर से, भुजा से, जंघा से, पेट से, सिर से या शरीर से, अथवा नौका के जल नीकालने वाले उपकरणों से, वस्त्र से, मिट्टी से, कुशपात्र से, तृणविशेष से बन्द कर दो, रोक दो।" साधु नाविक के इस कथन को स्वीकार न करके मौन धारण करके बैठा रहे।

वह साधु या साध्वी नौका में छिद्र से पानी आता हुआ देखकर, नौका को उत्तरोत्तर जल से परिपूर्ण होती देखकर, नाविक के पास जाकर यों न कहे कि "तुम्हारी इस नौका में पानी आ रहा है, उत्तरोत्तर नौका जल से परिपूर्ण

हो रही है ।'' इस प्रकार से मन एवं वचन को आगे-पीछे न करके साधु रहे । वह शरीर और उपकरणों आदि पर मूर्च्छा न करके तथा अपनी लेश्या को संयमबाह्य प्रवृत्ति में न लगाता हुआ अपनी आत्मा को एकत्व भाव में लीन करके समाधि में स्थित अपने शरीर-उपकरण आदि का व्युत्सर्ग करे ।

इस प्रकार नौका के द्वारा पार करने योग्य जल को पार करने के बाद जिस प्रकार तीर्थकरों ने विधि बताई है उस विधि का विशिष्ट अध्यवसायपूर्वक पालन करता हुआ रहे ।

यही (ईर्याविषयक विशुद्धि ही) उस भिक्षु और भिक्षुणी की समग्रता है । जिसके लिए समस्त अर्थों में समित, ज्ञानादि सहित होकर वह सदैव प्रयत्न करता रहे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३ – उद्देशक-२

#### सूत्र - ४५४

नौका में बैठे हुए गृहस्थ आदि यदि नौकारूढ़ मुनि से यह कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! तुम जरा हमारे छत्र, भाजन, बर्तन, दण्ड, लाठी, योगासन, नलिका, वस्त्र, यवनिका, मृगचर्म, चमड़े की थैली, अथवा चर्म-छेदनक शस्त्र को तो पकड़ रखो; इन विविध शस्त्रों को तो धारण करो, अथवा इस बालक या बालिका को पानी पीला दो; तो वह साधु उसके उक्त वचन को सूनकर स्वीकार न करे, किन्तु मौन धारण करके बैठा रहे ।

#### सूत्र - ४५५

यदि कोई नौकारूढ़ व्यक्ति नौका पर बैठे हुए किसी अन्य गृहस्थ से इस प्रकार कहे- 'आयुष्मन् गृहस्थ ! यह श्रमण जड़ वस्तुओं की तरह नौका पर केवल भारभूत है, अतः इसकी बाँहें पकड़कर नौका से बाहर जलमें फेंक दो ।' इस प्रकार की बात सूनकर और हृदय में धारण करके यदि वह मुनि वस्त्रधारी है तो शीघ्र ही फटे-पुराने वस्त्रों को खोलकर अलग कर दे और अच्छे वस्त्रों को अपने शरीर पर अच्छी तरह बाँधकर लपेट ले, तथा कुछ वस्त्र अपने सिर के चारों ओर लपेट ले ।

यदि वह साधु यह जाने कि ये अत्यन्त क्रूरकर्मा अज्ञानी जन अवश्य ही मुझे बाँहें पकड़ नाव से बाहर पानी में फैंकेंगे तब वह फैंके जाने से पूर्व ही उन गृहस्थों को सम्बोधित करके कहे 'आप लोग मुझे बाँहें पकड़ कर नौका से बाहर जल में मत फैंको; मैं स्वयं ही जल में प्रवेश कर जाऊंगा ।' कोई अज्ञानी नाविक सहसा बलपूर्वक साधु को बाँहें पकड़ कर नौका से बाहर जल में फेंक दे तो साधु मन को न तो हर्ष से युक्त करे और न शोक से ग्रस्त । वह मन में किसी प्रकार का ऊंचा-नीचा संकल्प-विकल्प न करे और न ही उन अज्ञानी जनों को मारने-पीटने के लिए उद्यत हो । वह उनसे किसी प्रकार का प्रतिशोध लेने का विचार भी न करे । इस प्रकार वह जलप्लावित होता हुआ मुनि जीवन-मरण में हर्ष-शोक से रहित होकर, अपनी चित्तवृत्ति को शरीरादि बाह्य वस्तुओं के मोह में समेट कर, अपने आपको आत्मैकत्वभाव में लीन कर ले और शरीर-उपकरण आदि का व्युत्सर्ग करके आत्मसमाधि में स्थिर हो जाए । फिर वह यतनापूर्वक जल में प्रवेश कर जाए ।

#### सूत्र - ४५६

जलमें डूबते समय साधु-साध्वी अपने एक हाथ से दूसरे हाथ का, एक पैर से दूसरे पैर का, तथा शरीर के अन्य अंगोंपांगों का भी परस्पर स्पर्श न करे। वह परस्पर स्पर्श न करता हुआ इसी तरह यतनापूर्वक जलमें बहता चला जाए । साधु या साध्वी जल में बहते समय उन्मज्जन-निमज्जन भी न करे और न इस बात का विचार करे कि यह पानी मेरे कानों में, आँखों में, नाक में या मुँह में न प्रवेश कर जाए । बल्कि वह यतनापूर्वक जल में (समभाव के साथ) बहता जाए ।

यदि साधु या साध्वी जल में बहते हुए दुर्बलता का अनुभव करे तो शीघ्र ही थोड़ी या समस्त उपधि का त्याग कर दे, वह शरीरादि पर से भी ममत्व छोड़ दे, उन पर किसी प्रकार की आसक्ति न रखे । यदि वह यह जाने कि मैं उपधि सहित ही इस जल से पार होकर किनारे पहुँच जाऊंगा, तो जब तक शरीर से जल टपकता रहे तथा शरीर गीला रहे, तब तक वह नदी के किनारे पर ही खड़ा रहे ।

साधु या साध्वी जल टपकते हुए, जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श न करे, न उसे एक या अधिक बार सहलाए, न उसे एक या अधिक बार घिसे, न उस पर मालिश करे और न ही उबटन की तरह शरीर से मैल उतारे। वह भीगे हुए शरीर और उपधि को सूखाने के लिए धूप से थोड़ा या अधिक गर्म भी न करे।

जब वह यह जान ले कि अब मेरा शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूँद या जल का लेप भी नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से उस शरीर का स्पर्श करे, उसे सहलाए, उसे रगड़े, मर्दन करे यावत् धूप में खड़ा रहकर उसे थोड़ा या अधिक गर्म भी करे। तदनन्तर संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

### सूत्र - ४५७

साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहस्थों के साथ अधिक वार्तालाप करते न चलें, किन्तु ईर्या-समिति का यथाविधि पालन करते हुए विहार करे।

### सूत्र - ४५८

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में जंघा-प्रमाण जल पड़ता हो तो उसे पार करने के लिए वह पहले सिर सहित शरीर के ऊपरी भाग से लेकर पैर तक प्रमार्जन करे। इस प्रकार सिर से पैर तक का प्रमार्जन करके वह एक पैर को जल में और एक पैर को स्थल में रखकर यतनापूर्वक जल को, भगवान के द्वारा कथित ईर्यासमिति की विधि अनुसार पार करे। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पार करते हुए हाथ से हाथ का, पैर से पैर का तथा शरीर के विविध अवयवों का परस्पर स्पर्श न करे। इस प्रकार वह भगवान द्वारा प्रतिपादित ईर्या-समिति विधि अनुसार जल को पार करे।

साधु या साध्वी जंघा-प्रमाण जल में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार चलते हुए शारीरिक सुख-शान्ति की अपेक्षा से या दाह उपशान्त करने के लिए गहरे और विस्तृत जल में प्रवेश न करे और जब उसे यह अनुभव होने लगे कि मैं उपकरणादि-सहित जल से पार नहीं हो सकता, तो वह उनका त्याग कर दे, शरीर-उपकरण आदि के ऊपर से ममता का विसर्जन कर दे। उसके पश्चात् वह यतनापूर्वक शास्त्रोक्त विधि से उस जंघा-प्रमाण जल को पार करे।

यदि वह यह जाने कि मैं उपधि-सहित ही जल से पार हो सकता हूँ तो वह उपकरण सहित पार हो जाए। परन्तु किनारे पर आने के बाद जब तक उसके शरीर से पानी की बूँद टपकती हो, उसका शरीर जरा-सा भी भीगा है, तब तक वह किनारे ही खड़ा रहे।

वह साधु-साध्वी जल टपकते हुए या जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श न करे, न उसे एक या अधिक बार घिसे, न उस पर मालिश करे, और न ही उबटन की तरह उस शरीर से मैल उतारे। वह भीगे हुए शरीर और उपधि को सूखाने के लिए धूप में थोड़ा या अधिक गर्म भी न करे। जब वह यह जान ले कि शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूँद या जल का लेप भी नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से उस शरीर का स्पर्श करे, यावत् धूप में खड़ा रहकर उसे थोड़ा या अधिक गर्म करे। तत्पश्चात् वह साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

### सूत्र - ४५९

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी गीली मिट्टी एवं कीचड़ से भरे हुए अपने पैरों से हरितकाय का बार-बार छेदन करके तथा हरे पत्तों को मोड़-मोड़ कर या दबा कर एवं उन्हें चीर-चीर कर मसलता हुआ मिट्टी न उतारे और न हरितकाय की हिंसा करने के लिए उन्मार्ग में इस अभिप्राय से जाए कि 'पैरों पर लगी हुई इस कीचड़ और गीली मिट्टी को यह हरियाली अपने आप हटा देगी', ऐसा करने वाला साधु मायास्थान का स्पर्श करता है। साधु को इस प्रकार नहीं करना चाहिए। वह पहले ही हरियाली से रहित मार्ग का प्रतिलेखन करे, और तब उसी मार्ग से यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी के मार्ग में यदि टेकरे हों, खाइयाँ, या नगर के चारों ओर नहरें हों, किले हों, या नगर के मुख्य द्वार हों, अर्गलाएं हों, आगल दिये जाने वाले स्थान हों, गड्डे हों, गुफाएं हों या भूगर्भ-मार्ग हों तो अन्य मार्ग के होने पर उसी अन्य मार्ग से यतनापूर्वक गमन करे, लेकिन ऐसे सीधे मार्ग से गमन न करे। केवली

भगवान कहते हैं-यह मार्ग कर्मबन्ध का कारण है ।

ऐसे विषम मार्ग से जाने से साधु-साध्वी का पै आदि फिसल सकता है, वह गिर सकता है । शरीर के किसी अंग-उपांग को चोट लग सकती है, त्रसजीव की भी विराधना हो सकती है, सचित्त वृक्ष आदि का अवलम्बन ले तो भी अनुचित है ।

वहाँ जो भी वृक्ष, गुच्छ, झाड़ियाँ, लताएं, बेलें, तृण अथवा गहन आदि हो, उन हरितकाय का सहारा ले लेकर चले या ऊतरे अथवा वहाँ जो पथिक आ रहे हों, उनका हाथ माँगे । उनके हाथ का सहारा मिलने पर उसे पकड़ कर यतनापूर्वक चले या ऊतरे । इस प्रकार साधु या साध्वी को संयमपूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए ।

साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार कर रहे हों, मार्ग में यदि जौ, गेहूँ आदि धान्यों के ढेर हों, बैलगाड़ियाँ या रथ पड़े हों, स्वदेश-शासक या परदेश-शासक की सेना के नाना प्रकार के पड़ाव पड़े हों, तो उन्हें देखकर यदि कोई दूसरा मार्ग हो तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए, किन्तु उस सीधे, (किन्तु दोषापत्तियुक्त) मार्ग से न जाए ।

उसे देखकर कोई सैनिक किसी दूसरे सैनिक से कहे-“आयुष्मन् ! यह श्रमण हमारी सेना का गुप्त भेद ले रहा है, अतः इसकी बाँहें पकड़ कर खींचो । उसे घसीटो ।” इस पर वह सैनिक साधु को बाँहें पकड़ कर खींचने या घसीटने लगे, उस समय साधु को अपने मन में न हर्षित होना चाहिए, न रुष्ट; बल्कि उसे समभाव एवं समाधिपूर्वक सह लेना चाहिए । इस प्रकार उसे यतनापूर्वक एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरण करते रहना चाहिए ।

### सूत्र - ४६०

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में सामने से आते हुए पथिक मिले और वे साधु से पूछे “यह गाँव कितना बड़ा या कैसा है ? यावत् यह राजधानी कैसी है ? यहाँ पर कितने घोड़े, हाथी तथा भिखारी हैं, कितने मनुष्य निवास करते हैं ? क्या इस गाँव यावत् राजधानी में प्रचुर आहार, पानी, मनुष्य एवं धान्य हैं, अथवा थोड़े ही हैं ?” इस प्रकार पूछे जाने पर साधु उनका उत्तर न दे । उन प्रातिपथिकों से भी इस प्रकार के प्रश्न न पूछे । उनके द्वारा न पूछे जाने पर भी वह ऐसी बातें न करे । अपितु संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करता रहे । यही (संयमपूर्वक विहारचर्या) उस भिक्षु या भिक्षुणी की साधुता की सर्वांगपूर्णता है; जिसके लिए सभी ज्ञानादि आचाररूप अर्थों से समित होकर साधु सदा प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३ – उद्देशक-३

### सूत्र - ४६१

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी मार्ग में आने वाले उन्नत भू-भाग या टेकरे, खाड़ियाँ, नगर को चारों ओर से वेष्टित करने वाली नहरें, किले, नगर के मुख्य द्वार, अर्गला, अर्गलापाशक, गड्ढे, गुफाएं या भूगर्भ मार्ग तथा कूटागार, प्रासाद, भूमिगृह, वृक्षों को काटछांट कर बनाए हुए गृह, पर्वतीय गुफा, वृक्ष के नीचे बना हुआ चैत्य-स्थल, चैत्यमय स्तूप, लोहकार आदि की शाला, आयतन, देवालय, सभा, प्याऊ, दुकान, गोदाम, यानगृह, यान-शाला, चूने का, दर्भकर्म का, घास की चटाइयों आदि का, चर्मकर्म का, कोयले बनाने का और काष्ठकर्म का कारखाना, तथा श्मशान, पर्वत, गुफा आदि में बने हुए गृह, शान्तिकर्म गृह, पाषाणमण्डप एवं भवनगृह आदि को बाँहें बार-बार ऊपर उठाकर, यावत् ताक-ताक कर न देखे, किन्तु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करने में प्रवृत्त रहे ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वियों के मार्ग में यदि कच्छ, घास के संग्रहार्थ राजकीय त्यक्त भूमि, भूमिगृह, नदी आदि से वेष्टित भू-भाग, गम्भीर, निर्जल प्रदेश का अरण्य, गहन दुर्गम वन, गहन दुर्गम पर्वत, पर्वत पर भी दुर्गम स्थान, कूप, तालाब, द्रह नदियाँ, बावड़ियाँ, पुष्करिणियाँ, दीर्घिकाएं, जलाशय, बिना खोदे तालाब, सरोवर, सरोवर की पंक्तियाँ और बहुत से मिले हुए तालाब हों तो अपनी भुजाएं ऊंची उठाकर, यावत् ताक-ताक कर न देखे । केवली भगवान कहते हैं-यह कर्मबन्ध का कारण है; (क्योंकि) ऐसा करने से जो इन स्थानों में मृग, पशु, पक्षी, साँप, सिंह, जलचर, स्थलचर, खेचर जीव रहते हैं, वे साधु की इन असंयम-मूलक चेष्टाओं को देखकर त्रास पायेंगे, वित्रस्त होंगे, किसी वाड़ की शरण चाहेंगे, वहाँ रहने वालों को साधु के विषय में शंका होगी । यह साधु हमें हटा रहा है, इस

प्रकार का विचार करेंगे।

इसीलिए तीर्थकरादि आप्तपुरुषों ने भिक्षुओं के लिए पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा, हेतु, कारण और उपदेश का निर्देश किया है कि बाँहें ऊंची उठाकर या अंगुलियों से निर्देश करके या शरीर को ऊंचा-नीचा करके ताक-ताक कर न देखे। अपितु यतनापूर्वक आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ संयम का पालन करे।

### सूत्र - ४६२

आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु अपने हाथ से उनके हाथ का, पैर से उनके पैर का तथा अपने शरीर से उनके शरीर का स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ साधु ईर्यासमिति पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु को मार्ग में यदि सामने से आते हुए कुछ यात्री मिले, और वे पूछे कि-“आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? कहाँ जाएंगे ?” (इस प्रश्न पर) जो आचार्य या उपाध्याय साथ में हैं, वे उन्हें सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंगे। आचार्य या उपाध्याय उत्तर दे रहे हों, तब वह साधु बीच में न बोले। किन्तु मौन रहकर ईर्यासमिति का ध्यान रखता हुआ रत्नाधिक क्रम से उनके साथ ग्रामानुग्राम विचारण करे।

रत्नाधिक साधु के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मुनि अपने हाथ से रत्नाधिक साधु के हाथ को, पैर से उनके पैर को तथा शरीर से उनके शरीर का स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ साधु ईर्यासमिति पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

### सूत्र - ४६३

रत्नाधिक साधुओं के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु को मार्ग में यदि सामने से आते हुए कुछ प्रातिपथिक मिले और वे यों पूछे कि-“आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? और कहाँ जाएंगे ?” (ऐसा पूछने पर) जो उन साधुओं में सबसे रत्नाधिक वे उनको सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंगे। तब वह साधु बीच में न बोले। किन्तु मौन रहकर ईर्यासमिति का ध्यान रखता हुआ उनके साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

संयमशील साधु या साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए रास्ते में सामने से कुछ पथिक निकट आ जाएं और वे यों पूछे “क्या आपने इस मार्ग में किसी मनुष्य को, मृग को, भैंसे को, पशु या पक्षी को, सर्प को या किसी जलचर जन्तु को जाते हुए देखा है ? वे किस ओर गए हैं ?” साधु न तो उन्हें कुछ बतलाए, न मार्गदर्शन करे, न ही उनकी बात को स्वीकार करे, बल्कि कोई उत्तर न देकर उदासीनतापूर्वक मौन रहे। अथवा जानता हुआ भी मैं नहीं जानता, ऐसा कहे। फिर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु को मार्ग में सामने से कुछ पथिक निकट आ जाएं और वे साधु से यों पूछे “क्या आपने इस मार्ग में जल में पैदा होने वाले कन्द, या मूल, अथवा छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज, हरित अथवा संग्रह किया हुआ पेयजल या निकटवर्ती जल का स्थान, अथवा एक जगह रखी हुई अग्नि देखी है ?” साधु न तो उन्हें कुछ बताए, तत्पश्चात् यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में सामने से आते हुए पथिक निकट आकर पूछे कि “क्या आपने इस मार्ग में जौ, गेहूँ आदि धान्यों का ढेर, रथ, बैलगाड़ियाँ, या स्वचक्र या परचक्र के शासन के सैन्य के नाना प्रकार के पड़ाव देखे हैं ? इस पर साधु उन्हें कुछ भी न बताए, तदनन्तर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को यदि मार्ग में कहीं प्रातिपथिक मिल जाएं और वे उससे पूछे कि यह गाँव कैसा है, या कितना बड़ा है ? यावत् राजधानी कैसी है या कितनी बड़ी है ? यहाँ कितने मनुष्य यावत् ग्रामयाचक रहते हैं ? तो उनकी बात को स्वीकार न करे, न ही कुछ बताए। मौन धारण करके रहे। संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

ग्रामानुग्राम विहार करते समय साधु-साध्वी को मार्ग में सम्मुख आते हुए कुछ पथिक मिल जाएं और वे उससे

पूछे- 'आयुष्मन् श्रमण ! यहाँ से ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर हैं ? तथा यहाँ से ग्राम यावत् राजधानी का मार्ग अब कितना शेष रहा है ?' साधु इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ भी न कहे, न ही कुछ बताए, वह उनकी बात को स्वीकार न करे, बल्कि मौन धारण करके रहे । और फिर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ।

### सूत्र - ४६४

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में मदोन्मत्त साँड़, विषैला साँप, यावत् चित्ते, आदि हिंसक पशुओं को सम्मुख-पथ से आते देखकर उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग से नहीं जाना चाहिए, और न ही एक मार्ग से दूसरे मार्ग पर संक्रमण करना चाहिए, न तो गहन वन एवं दुर्गम स्थान में प्रवेश करना चाहिए, न ही वृक्ष पर चढ़ना चाहिए और न ही उसे गहरे और विस्तृत जल में प्रवेश करना चाहिए । वह ऐसे अवसर पर सुरक्षा के लिए किसी बाड़ की शरण की, सेना की या शस्त्र की आकांक्षा न करे; अपितु शरीर और उपकरणों के प्रति राग-द्वेष रहित होकर काया का व्युत्सर्ग करे, आत्मैकत्वभाव में लीन हो जाए और समाधिभाव में स्थिर रहे । तत्पश्चात् यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी जाने कि मार्ग में अनेक दिनों में पार करने योग्य अटवी-मार्ग है । यदि उस अनेक दिनों में पार करने योग्य अटवी-मार्ग के विषय में वह यह जाने कि इस अटवी-मार्ग में अनेक चोर (लूटेरे) इकट्ठे होकर साधु के उपकरण छीनने की दृष्टि से आ जाते हैं, यदि सचमुच उस अटवीमार्ग में वे चोर इकट्ठे होकर आ जाएं तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग में न जाए, न एक मार्ग से दूसरे मार्ग पर संक्रमण करे, यावत् समाधि भाव में स्थिर रहे । तत्पश्चात् यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

### सूत्र - ४६५

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु के पास यदि मार्ग में चोर संगठित होकर आ जाएं और वे कहें कि 'ये वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोँछन आदि लाओ, हमें दे दो, या यहाँ पर रख दो ।' इस प्रकार कहने पर साधु उन्हें वे न दे, और न नीकाल कर भूमि पर रखे । अगर वे बलपूर्वक लेने लगे तो उन्हें पुनः लेने के लिए उनकी स्तुति करके हाथ जोड़कर या दीन-वचन कहकर याचना न करे । यदि माँगना हो तो उन्हें धर्म-वचन कहकर-समझाकर माँगें, अथवा मौनभाव धारण करके उपेक्षाभाव से रहे ।

यदि वे चोर साधु को गाली-गलौच करें, अपशब्द कहें, मारे-पीटे, हैरान करे, यहाँ तक कि उसका वध करने का प्रयत्न करे और उसके वस्त्रादि को फाड़ डाले, तोड़फोड़ कर दूर फेंक दें, तो भी वह साधु ग्राम में जाकर लोगों से उस बात को न कहे, न ही फरियाद करे, न ही किसी गृहस्थ के पास जाकर कहे कि 'चोरों ने हमारे उपकरण छीनने के लिए अथवा हमें कोसा है, मारा-पीटा है, हमें हैरान किया है, हमारे उपकरणादि नष्ट करके दूर फेंक दिए हैं ।' ऐसे कुविचारों को साधु मन में भी न लाए और न वचन से व्यक्त करे । किन्तु निर्भय, निर्द्वन्द्व और अनासक्त होकर आत्म-भाव में लीन होकर शरीर और उपकरणों का व्युत्सर्ग कर दे और राग-द्वेष रहित होकर समाधिभाव में विचरण करे ।

यही उस साधु या साध्वी के भिक्षु जीवन की समग्रता है कि वह सभी अर्थों में सम्यक् प्रवृत्तियुक्त होकर संयम पालन में सदा प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-४ – भाषाजात

## उद्देशक-१

## सूत्र - ४६६

संयमशील साधु या साध्वी इन वचन (भाषा) के आचारों को सूनकर, हृदयंगम करके, पूर्व-मुनियों द्वारा अनाचरित भाषा-सम्बन्धी अनाचारों को जाने । जो क्रोध से वाणी का प्रयोग करते हैं, जो अभिमानपूर्वक, जो छल-कपट सहित, अथवा जो लोभ से प्रेरित होकर वाणी का प्रयोग करते हैं, जानबूझकर कठोर बोलते हैं, या अनजाने में कठोर वचन कह देते हैं-ये सब भाषाएं सावद्य हैं, साधु के लिए वर्जनीय हैं । विवेक अपनाकर साधु इस प्रकार की सावद्य एवं अनाचरणीय भाषाओं का त्याग करे । वह साधु या साध्वी ध्रुव भाषा को जानकर उसका त्याग करे, अध्रुव भाषा को भी जानकर उसका त्याग करे । वह अशनादि आहार लेकर ही आएगा, या आहार लिए बिना ही आएगा, वह आहार करके ही आएगा, या आहार किये बिना ही जाएगा, अथवा वह अवश्य आया था या नहीं आया था, वह आता है, अथवा नहीं आता है, वह अवश्य आएगा, अथवा नहीं आएगा; वह यहाँ भी आया था, अथवा वह यहाँ नहीं आया था; वह यहाँ अवश्य आता है, अथवा कभी नहीं आता, अथवा वह यहाँ अवश्य आएगा या कभी नहीं आएगा ।

संयमी साधु या साध्वी विचारपूर्वक भाषा समिति से युक्त निश्चितभाषी एवं संयत होकर भाषा का प्रयोग करे जैसे कि यह १६ प्रकार के वचन हैं-एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, स्त्रीलिंग-कथन, पुल्लिंग-कथन, नपुंसक-लिंगकथन, अध्यात्म-कथन, उपनीत-कथन, अपनीत-कथन, अपनीताऽपनीत-कथन, अपनीतोपनीत-कथन, अतीतवचन, वर्तमानवचन, अनागत वचन, प्रत्यक्षवचन और परोक्षवचन ।

यदि उसे 'एकवचन' बोलना हो तो वह एकवचन ही बोले, यावत् परोक्षवचन पर्यन्त जिस किसी वचन को बोलना हो, तो उसी वचन का प्रयोग करे । जैसे-यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या यह कोई अन्य है, इस प्रकार विचारपूर्वक निश्चय हो जाए, तभी निश्चयभाषी हो तथा भाषा-समिति से युक्त होकर संयत भाषामें बोले

इन पूर्वोक्त भाषागत दोष-स्थानों का अतिक्रमण करके (भाषाप्रयोग करना चाहिए) । साधु को भाषा के चार प्रकारों को जान लेना चाहिए । सत्या, मृषा, असत्यामृषा (व्यवहारभाषा) नाम का चौथा भाषाजात है ।

जो मैं यह कहता हूँ उसे-भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर भगवान हो चुके हैं, वर्तमान में जो भी तीर्थंकर भगवान हैं और भविष्य में जो भी तीर्थंकर भगवान होंगे, उन सबने इन्हीं चार प्रकार की भाषाओं का प्रतिपादन किया है, प्रतिपादन करते हैं और प्रतिपादन करेंगे अथवा उन्होंने प्ररूपण किया है, प्ररूपण करते हैं और प्ररूपण करेंगे । तथा यह भी उन्होंने प्रतिपादन किया है कि ये सब भाषाद्रव्य अचित्त हैं, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं, तथा चय-उपचय वाले एवं विविध प्रकार के परिणमन धर्म वाले हैं ।

## सूत्र - ४६७

संयमशील साधु-साध्वी को भाषा के सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि बोलने से पूर्व भाषा अभाषा होती है, बोलते समय भाषा भाषा कहलाती है और बोलने के पश्चात् बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है ।

जो भाषा सत्या है, जो भाषा मृषा है, जो भाषा सत्यामृषा है अथवा जो भाषा असत्यामृषा है, इन चारों भाषाओं में से (केवल सत्या और असत्यामृषा का प्रयोग ही आचरणीय है ।) उसमें भी यदि सत्यभाषा सावद्य, अनर्थदण्डक्रियायुक्त, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, कठोर, कर्मों की आस्रवकारिणी तथा छेदनकारी, भेदनकारी, परितापकारिणी, उपद्रवकारिणी एवं प्राणियों का विघात करने वाली हो तो विचारशील साधु को मन से विचार करके ऐसी सत्यभाषा का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए । जो भाषा सूक्ष्म सत्य सिद्ध हो तथा जो असत्यामृषा भाषा हो, साथ ही असावद्य, अक्रिय यावत् जीवों के लिए अघातक हो तो संयमशील साधु मन से पहले पर्यालोचन करके इन्हीं दोनों भाषाओं का प्रयोग करे ।

## सूत्र - ४६८

साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमंत्रित कर रहे हों और आमंत्रित करने पर भी वह न सूने तो उसे इस

प्रकार न कहे-अरे होल रे गोले ! या हे गोल ! अय वृषल ! हे कुपक्ष ! अरे घटदास ! या ओ कुत्ते ! ओ चोर ! अरे गुप्तचर अरे झूठे ! ऐसे ही तुम हो, ऐसे ही तुम्हारे माता-पिता हैं । साधु इस प्रकार की सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले ।

संयमशील साधु या साध्वी किसी पुरुष आमंत्रित करने पर भी वह न सूने तो उसे इस प्रकार सम्बोधित करे - हे अमुक ! हे आयुष्मन् ! ओ श्रावकजी ! हे उपासक ! धार्मिक ! या हे धर्मप्रिय ! इस प्रकार की निरवद्य यावत् भूतोपघातरहित भाषा विचारपूर्वक बोले ।

साधु या साध्वी किसी महिला को बुला रहे हों, बहुत आवाझ देने पर भी वह न सूने तो उसे ऐसे नीच सम्बोधनों से सम्बोधित न करे-अरी होली ! अरी गोली ! अरी वृषली ! हे कुपक्षे ! अरी घटदासी ! कुत्ती ! अरी चोरटी ! हे गुप्तचरी ! अरी मायाविनी ! अरी झूठी ! ऐसी ही तू है और ऐसे ही तेरे माता-पिता हैं ! विचारशील साधु-साध्वी इस प्रकार की सावद्य सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले ।

साधु या साध्वी किसी महिला को आमंत्रित कर रहे हों, वह न सूने तो-आयुष्मती ! भवती, भगवती ! श्राविके उपासिके ! धार्मिके ! धर्मप्रिये ! इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीवोपघात-रहित भाषा विचारपूर्वक बोले ।

### सूत्र - ४६९

साधु या साध्वी इस प्रकार न कहे कि 'नभोदेव है, गर्ज देव है, या विद्युतदेव है, प्रवृष्ट देव है, या निवृष्ट देव है, वर्षा बरसे तो अच्छी या न बरसे तो अच्छा, धान्य उत्पन्न हों या न हों, रात्रि सुशोभित हो या न हो, सूर्य उदय हो या न हो, वह राजा जीते या न जीते ।' साधु इस प्रकार की भाषा न बोले । साधु या साध्वी को कहने का प्रसंग उपस्थित हो तो आकाश को गुह्यानुचरित-कहे या देवों के गमनागमन करने का मार्ग कहे । यह पयोधर जल देनेवाला है, संमूर्च्छिम जल बरसता है, या वह मेघ बरसता है, या बादल बरस चूका है, इस प्रकार की भाषा बोले ।

यही उस साधु और साध्वी की साधुता की समग्रता है कि वह ज्ञानादि अर्थों से तथा समितियों से युक्त होकर सदा इसमें प्रयत्न करे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-४ - उद्देशक-२

### सूत्र - ४७०

संयमशील साधु या साध्वी यद्यपि अनेक रूपों को देखते हैं तथापि उन्हें देखकर इस प्रकार न कहे । जैसे कि गण्डी माला रोग से ग्रस्त या जिसका पैर सूझ गया हो को गण्डी, कुष्ठ-रोग से पीड़ित को कोढ़िया, यावत् मधुमेह से पीड़ित रोगी को मधुमेही कहकर पुकारना, अथवा जिसका हाथ कटा हुआ है उसे हाथकटा, पैरकटे को पैरकटा, नाक कटा हुआ हो उसे नकटा, कान कट गया हो उसे कानकटा और ओठ कटा हुआ हो, उसे ओठकटा कहना । ये और अन्य जितने भी इस प्रकार के हों, उन्हें इस प्रकार की भाषाओं से सम्बोधित करने पर वे व्यक्ति दुःखी या कुपित हो जाते हैं । अतः ऐसा विचार करके उन लोगों को उन्हें (जैसे हों वैसी) भाषा से सम्बोधित न करे ।

साधु या साध्वी यद्यपि कितने ही रूपों को देखते हैं, तथापि वे उनके विषय में इस प्रकार कहें । जैसे कि ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, उपादेयवचनी या लब्धियुक्त कहें । जिसकी यशःकीर्ति फैली हुई हो उसे यशस्वी, जो रूपवान् हो उसे अभिरूप, जो प्रतिरूप हो उसे प्रतिरूप, प्रासाद गुण से युक्त हो उसे प्रासादीय, जो दर्शनीय हो, उसे दर्शनीय कहकर सम्बोधित करे । ये और जितने भी इस प्रकार के अन्य व्यक्ति हों, उन्हें इस प्रकार की भाषाओं से सम्बोधित करने पर वे कुपित नहीं होते । अतः इस प्रकार निरवद्य भाषाओं का विचार करके साधु-साध्वी निर्दोष भाषा बोले ।

साधु या साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं, जैसे कि खेतों की क्यारियाँ, खाइयाँ या नगर के चारों ओर बनी नहरें, प्राकार, नगर के मुख्य द्वार, अर्गलाएं, गड्ढे, गुफाएं, कूटागार, प्रासाद, भूमिगृह, वृक्षागार, पर्वतगृह, चैत्य युक्त वृक्ष, चैत्ययुक्त स्तूप, लोहा आदिके कारखाने, आयतन, देवालय, सभा, प्याऊ, दुकानें, मालगोदाम, यानगृह, धर्म-शालाएं, चूने, दर्भ, वल्क के कारखाने, वन कर्मालय, कोयले, काष्ठ आदि के कारखाने, श्मशान-गृह, शान्ति-कर्मगृह,

गिरिगृह, गृहागृह, भवन आदि; इनके विषय में ऐसा न कहे; जैसे कि यह अच्छा बना है, भलीभाँति तैयार किया गया है, सुन्दर बना है, यह कल्याणकारी है, यह करने योग्य है; इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा न बोले ।

साधु या साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं, जैसे कि खेतों की क्यारियाँ यावत् भवनगृह; तथापि इस प्रकार कहें-जैसे कि यह आरम्भ से बना है, सावद्यकृत है, या यह प्रयत्न-साध्य है, इसी प्रकार जो प्रसादगुण से युक्त हो, उसे प्रासादीय, जो देखने योग्य हो, उसे दर्शनीय, जो रूपवान हो उसे अभिरूप, जो प्रतिरूप हो उसे प्रतिरूप कहे । इस प्रकार विचारपूर्वक असावद्य यावत् जीवोपघात से रहित भाषा का प्रयोग करे ।

### सूत्र - ४७१

साधु या साध्वी अशनादि चतुर्विध आहार को देखकर भी इस प्रकार न कहे जैसे कि यह आहारादि पदार्थ अच्छा बना है, या सुन्दर बना है, अच्छी तरह तैयार किया गया है, या कल्याणकारी है और अवश्य करने योग्य है । इस प्रकार की भाषा साधु या साध्वी सावद्य यावत् जीवोपघातक जानकर न बोले ।

इस प्रकार कह सकते हैं, जैसे कि यह आहारादि पदार्थ आरम्भ से बना है, सावद्यकृत है, प्रयत्नसाध्य है या भद्र है, उत्कृष्ट है, रसिक है, या मनोज्ञ है; इस प्रकार असावद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषाप्रयोग करे ।

वह साधु या साध्वी परिपुष्ट शरीर वाले किसी मनुष्य, साँड़, भैंसे, मृग या पशु-पक्षी, सर्प या जलचर अथवा किसी प्राणी को देखकर ऐसा न कहे कि वह स्थूल है, इसके शरीर में बहुत चर्बी है, यह गोलमटोल है, यह वध या वहन करने योग्य है, यह पकाने योग्य है । इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा का प्रयोग न करे ।

### सूत्र - ४७२

संयमशील साधु या साध्वी परिपुष्ट शरीर वाले किसी मनुष्य, बैल, यावत् किसी भी विशालकाय प्राणी को देखकर ऐसे कह सकता है कि यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचितकाय है, दृढ़ संहनन वाला है, या इसके शरीर में रक्त-माँस संचित हो गया है, इसकी सभी इन्द्रियाँ परिपूर्ण हैं । इस प्रकार की असावद्य यावत् जीवोपघात से रहित भाषा बोले ।

साधु या साध्वी नाना प्रकार की गायों तथा गोजाति के पशुओं को देखकर ऐसा न कहे कि ये गायें दूहने योग्य हैं अथवा इनको दूहने का समय हो रहा है, तथा यह बैल दमन करने योग्य है, यह वृषभ छोटा है, या यह वहन करने योग्य है, यह रथ में जोतने योग्य है, इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा का प्रयोग न करे ।

इस प्रकार कह सकता है, जैसे कि-यह वृषभ जवान है, यह गाय प्रौढ़ है, दुधारू है, यह बैल बड़ा है, यह संवहन योग्य है । इस प्रकार असावद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा का प्रयोग करे ।

संयमी साधु या साध्वी किसी प्रयोजनवश किन्हीं बगीचों में, पर्वतों पर या वनों में जाकर वहाँ बड़े-बड़े वृक्षों को देखकर ऐसे न कहे, कि-यह वृक्ष (काटकर) मकान आदि में लगाने योग्य है, यह तोरण-नगर का मुख्य द्वार बनाने योग्य है, यह घर बनाने योग्य है, यह फलक (तख्त) बनाने योग्य है, इसकी अर्गला बन सकती है, या नाव बन सकती है, पानी की बड़ी कुंडी अथवा छोटी नौका बन सकती है, अथवा यह वृक्ष चौकी काष्ठमयी पात्री, हल, कुलिक, यंत्रयष्टि नाभि, काष्ठमय, अहरन, काष्ठ का आसन आदि बनाने के योग्य है अथवा काष्ठशय्या रथ आदि यान, उपाश्रय आदि के निर्माण के योग्य है । इस प्रकार सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा साधु न बोले । इस प्रकार कह सकते हैं कि ये वृक्ष उत्तम जाति के हैं, दीर्घ हैं, वृत्त हैं, ये महालय हैं, इनकी शाखाएं फट गई हैं, इनकी प्रशाखाएं दूर तक फैली हुई हैं, ये वृक्ष प्रासादीय हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं, प्रतिरूप हैं । इस प्रकार की असावद्य यावत् जीवोपघात-रहित भाषा का प्रयोग करे ।

साधु या साध्वी प्रचुर मात्रा में लगे हुए वन फलों को देखकर इस प्रकार न कहे जैसे कि-ये फल पक गए हैं, या पराल आदि में पकाकर खाने योग्य हैं, ये पक जाने से ग्रहण कालोचित फल हैं, अभी ये फल बहुत कोमल हैं, क्योंकि इनमें अभी गुठली नहीं पड़ी है, ये फल तोड़ने योग्य या दो टुकड़े करने योग्य है । इस प्रकार सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले । इस प्रकार कह सकता है, जैसे कि ये फल वाले वृक्ष असंतृत हैं, इनके फल प्रायः निष्पन्न हो चूके हैं, ये वृक्ष एक साथ बहुत-सी फलोत्पत्ति वाले हैं, या ये भूतरूप-कोमल फल हैं । इस प्रकार असावद्य

यावत् जीवोपघात-रहित भाषा विचारपूर्वक बोले ।

साधु या साध्वी बहुत मात्रा में पैदा हुई औषधियों को देखकर यों न कहे, कि ये पक गई हैं, या ये अभी कच्ची या हरी हैं, ये छवि वाली हैं, ये अब काटने योग्य हैं, ये भूनने या सेकने योग्य हैं, इनमें बहुत-सी खाने योग्य हैं। इस प्रकार सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा साधु न बोले । इस प्रकार कह सकता है, कि इनमें बीज अंकुरित हो गए हैं, ये अब जम गई हैं, सुविकसित या निष्पन्नप्रायः हो गई हैं, या अब ये स्थिर हो गई हैं, ये ऊपर उठ गई हैं, ये भुट्टों, सिरों, या बालियों से रहित हैं, अब ये भुट्टों आदि से युक्त हैं, या धान्य-कणयुक्त हैं । साधु या साध्वी इस प्रकार निरवद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा बोले ।

### सूत्र - ४७३

साधु या साध्वी कई शब्दों को सूनते हैं, तथापि यों न कहे, जैसे कि-यह मांगलिक शब्द है, या यह अमांगलिक शब्द है । इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा न बोले । कभी बोलना हो तो सुशब्द को 'यह सुशब्द है' और दुःशब्द को 'यह दुःशब्द है' ऐसी निरवद्य यावत् जीवोपघातरहित भाषा बोले । इसी प्रकार रूपों के विषय में-कृष्ण को कृष्ण, यावत् श्वेत को श्वेत कहे, गन्धों के विषय में सुगन्ध को सुगन्ध और दुर्गन्ध को दुर्गन्ध कहे, रसों के विषय में तिक्त को तिक्त, यावत् मधुर को मधुर कहे, स्पर्शों के विषय में कर्कश को कर्कश यावत् उष्ण को उष्ण कहे ।

### सूत्र - ४७४

साधु या साध्वी क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करके विचारपूर्वक निष्ठाभासी हो, सून-समझकर बोले, अत्वरितभाषा एवं विवेकपूर्वक बोलने वाला हो और भाषासमिति से युक्त संयत भाषा का प्रयोग करे ।

यही वास्तव में साधु-साध्वी के आचार का सामर्थ्य है, जिसमें वह सभी ज्ञानादि अर्थों से युक्त होकर सदा प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-५ – वस्त्रैषणा

## उद्देशक-१

## सूत्र - ४७५

साधु या साध्वी वस्त्र की गवेषणा करना चाहते हैं, तो उन्हें वस्त्रों के सम्बन्ध में जानना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-जांगमिक, भांगिक, सानिक, पोत्रक, लोमिक और तूलकृत। तथा इसी प्रकार के अन्य वस्त्र को भी मुनि ग्रहण कर सकता है। जो निर्ग्रन्थ मुनि तरुण है, समय के उपद्रव से रहित है, बलवान, रोगरहित और स्थिर संहनन है, वह एक ही वस्त्र धारण करे, दूसरा नहीं। जो साध्वी है, वह चार संघाटिका धारण करे-उसमें एक, दो हाथ प्रमाण विस्तृत, दो तीन हाथ प्रमाण और एक चार हाथ प्रमाण लम्बी होनी चाहिए। इस प्रकार के वस्त्रों के न मिलने पर वह एक वस्त्र को दूसरे के साथ सिले।

## सूत्र - ४७६

साधु-साध्वी को वस्त्र-ग्रहण करने के लिए आधे योजन से आगे जाने का विचार करना नहीं चाहिए।

## सूत्र - ४७७

साधु या साध्वी को यदि वस्त्र के सम्बन्ध में ज्ञात हो जाए कि कोई भावुक गृहस्थ धन के ममत्व से रहित निर्ग्रन्थ साधु को देने की प्रतिज्ञा करके किसी एक साधर्मिक साधु का उद्देश्य रखकर प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों का समारम्भ करके यावत् (पिण्डैषणा समान) अनैषणीय समझकर मिलने पर भी न ले।

तथा पिण्डैषणा अध्ययन में जैसे बहुत-से साधर्मिक साधु, एक साधर्मिणी साध्वी, बहुत-सी साधर्मिणी साध्वीयाँ, एवं बहुत-से शाक्यादि श्रमण-ब्राह्मण आदि को गिन-गिन कर तथा बहुत-से शाक्यादि श्रमण-ब्राह्मणादि का उद्देश्य रखकर जैसे क्रीत आदि तथा पुरुषान्तरकृत आदि विशेषणों से युक्त आहार ग्रहण का निषेध किया गया है, उसी प्रकार यहाँ सारा वर्णन समझ लेना।

## सूत्र - ४७८

साधु या साध्वी यदि किसी वस्त्र के विषय में यह जान जाए कि असंयमी गृहस्थ ने साधु के निमित्त से उसे खरीदा है, धोया है, रंगा है, घिस कर साफ किया है, चिकना या मुलायम बनाया है, संस्कारित किया है, सुवासित किया है और ऐसा वह वस्त्र अभी पुरुषान्तरकृत यावत् दाता द्वारा आसेवित नहीं हुआ है, तो ग्रहण न करे। यदि साधु या साध्वी यह जान जाए कि वह वस्त्र पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

## सूत्र - ४७९

साधु-साध्वी यदि ऐसे नाना प्रकार के वस्त्रों को जाने, जो कि महाधन से प्राप्त होने वाले वस्त्र हैं, जैसे कि-आजिनक, श्लक्ष्ण, श्लक्ष्ण कल्याण, आजक, कायक, क्षौमिक दुकूल, पट्टरेशम के वस्त्र, मलयज के सूते से बने वस्त्र, वल्कल तन्तुओं से निर्मित वस्त्र, अंशक, चीनांशुक, देशराग, अमिल, गर्जल, स्फटिक तथा अन्य इसी प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होने पर भी विचारशील साधु उन्हें ग्रहण न करे। साधु या साध्वी यदि चर्म से निष्पन्न ओढ़ने के वस्त्र जाने जैसे कि औद्र, पेष, पेषलेश, स्वर्णरस में लिपटे वस्त्र, सोने कही कान्ति वाले वस्त्र, सोने के रस की पट्टियाँ दिये हुए वस्त्र, सोने के पुष्प गुच्छों से अंकित, सोने के तारों से जटित और स्वर्ण चन्द्रिकाओं से स्पर्शित, व्याघ्रचर्म, चीते का चर्म, आभरणों से मण्डित, आभरणों से चित्रित ये तथा अन्य इसी प्रकार के चर्म-निष्पन्न वस्त्र प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

## सूत्र - ४८०

इन दोषों के आयतनों को छोड़कर चार प्रतिमाओं से वस्त्रैषणा करनी चाहिए। पहली प्रतिमा-वह साधु या साध्वी मन में पहले संकल्प किये हुए वस्त्र की याचना करे, जैसे कि-जांगमिक, भांगिक, सानज, पोत्रक, क्षौमिक या तूलनिर्मित वस्त्र, उस प्रकार के वस्त्र की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ स्वयं दे तो प्रासुक और एषणीय होने पर ग्रहण करे।

दूसरी प्रतिमा-वह साधु या साध्वी वस्त्र को पहले देखकर गृह-स्वामी यावत् नौकरानी आदि से उसकी याचना करे। आयुष्मन् गृहस्थ भाई! अथवा बहन! क्या तुम इन वस्त्रों में से किसी एक वस्त्र को मुझे दोगे/दोगी? इस प्रकार साधु या साध्वी पहले स्वयं वस्त्र की याचना करे अथवा वह गृहस्थ दे तो प्रासुक एवं एषणीय होने पर ग्रहण करे।

तीसरी प्रतिमा-साधु या साध्वी वस्त्र के सम्बन्ध में जाने, जैसे कि-अन्दर पहनने के योग्य या ऊपर पहनने के योग्य। तदनन्तर इस प्रकार के वस्त्र की याचना करे या गृहस्थ उसे दे तो उस वस्त्र को प्रासुक एवं एषणीय होने पर मिलने पर ग्रहण करे।

चौथी प्रतिमा-वह साधु या साध्वी उज्जितधार्मिक वस्त्र की याचना करे। जिस वस्त्र को बहुत से अन्य शाक्यादि भिक्षु यावत् भिखारी लोग भी लेना न चाहें, ऐसे वस्त्र की याचना करे अथवा वह गृहस्थ स्वयं ही साधु को दे तो उस वस्तु को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर ले। इन चारों प्रतिमाओं के विषय में जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है, वैसे ही यहाँ समझ लेना चाहिए।

कदाचित् इन (पूर्वोक्त) वस्त्र-एषणाओं से वस्त्र की गवेषणा करने वाले साधु को कोई गृहस्थ कहे कि-आयुष्मन् श्रमण! तुम इस समय जाओ, एक मास, या दस या पाँच रात के बाद अथवा कल या परसों आना, तब हम तुम्हें एक वस्त्र देंगे। ऐसा सूनकर हृदय में धारण करके वह साधु विचार कर पहले ही कह दे मेरे लिए इस प्रकार का संकेतपूर्वक वचन स्वीकार करना कल्पनीय नहीं है। अगर मुझे वस्त्र देना चाहते हो तो दे दो।

उस साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ यों कहे कि-आयुष्मन् श्रमण! अभी तुम जाओ। थोड़ी देर बाद आना, हम तुम्हें एक वस्त्र दे देंगे। इस पर वह पहले मन में विचार करके उस गृहस्थ से कहे मेरे लिए इस प्रकार से संकेतपूर्वक वचन स्वीकार करना कल्पनीय नहीं है। अगर मुझे देना चाहते हो तो इसी समय दे दो।

साधु के इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहस्थ घर के किसी सदस्य को यों कहे कि 'वह वस्त्र लाओ, हम उसे श्रमण को देंगे। हम तो अपने निजी प्रयोजन के लिए बाद में भी समारम्भ करके और उद्देश्य करके यावत् और वस्त्र बनवा लेंगे। ऐसा सूनकर विचार करके उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे।

कदाचित् गृहस्वामी घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि 'वह वस्त्र लाओ, तो हम उसे स्नानीय पदार्थ से, चन्दन आदि उद्वर्तन द्रव्य से, लोघ्न से, वर्ण से, चूर्ण से या पद्म आदि सुगन्धित पदार्थों से, एक बार या बार-बार घिसकर श्रमण को देंगे। ऐसा सूनकर एवं उस पर विचार करके वह साधु पहले से ही कह दे-तुम इस वस्त्र को स्नानीय पदार्थों से यावत् पद्म आदि सुगन्धित द्रव्यों से आघर्षण या प्रघर्षण मत करो। यदि मुझे वह वस्त्र देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो। साधु के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ स्नानीय सुगन्धित द्रव्यों से एक बार या बार-बार घिसकर उस वस्त्र को देने लगे तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर भी ग्रहण न करे।

कदाचित् गृहपति घर के किसी सदस्य से कहे कि 'उस वस्त्र को लाओ, हम उसे प्रासुक शीतल जल से या प्रासुक उष्ण जल से एक बार या कई बार धोकर श्रमण को देंगे।' इस प्रकार की बात सूनकर एवं उस पर विचार करके वह पहले ही दाता से कह दे-'इस वस्त्र को तुम प्रासुक शीतल जल से या प्रासुक उष्ण जल से एक बार या कई बार मत धोओ। यदि मुझे इसे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो। इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ उस वस्त्र को ठण्डे या गर्म जल से एक बार या कई बार धोकर साधु को देने लगे तो वह उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

यदि वह गृहस्थ अपने घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि 'उस वस्त्र को लाओ, हम उसमें से कन्द यावत् हरी नीकालकर साधु को देंगे।' इस प्रकार की बात सूनकर, उस पर विचार करके वह पहले ही दाता से कह दे-'इस वस्त्र में से कन्द यावत् हरी मत नीकालो, मेरे लिए इस प्रकार का वस्त्र ग्रहण करना कल्पनीय नहीं है।' साधु के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ कन्द यावत् हरी वस्तु को नीकाल कर देने लगे तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनैषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

कदाचित् वह गृहस्वामी वस्त्र को दे, तो वह पहले ही विचार करके उससे कहे-तुम्हारे ही इस वस्त्र को मैं

अन्दर-बाहर चारों ओर से भलीभाँति देखूँगा, क्योंकि केवली भगवान कहते हैं-वस्त्र को प्रतिलेखना किये बिना लेना कर्मबन्धन का कारण है। कदाचित् उस वस्त्र के सिरे पर कुछ बँधा हो, कोई कुण्डल बँधा हो, या धागा, चाँदी, सोना, मणिरत्न, यावत् रत्नों की माला बँधी हो, या कोई प्राणी, बीज या हरी वनस्पति बँधी हो। इसीलिए तीर्थकर आदि आप्तपुरुषों ने पहले से ही इस प्रतिज्ञा, हेतु, कारण और उपदेश का निर्देश किया है कि साधु वस्त्रग्रहण से पहले ही उस वस्त्र की अन्दर-बाहर चारों ओर से प्रतिलेखना करे।

### सूत्र - ४८१

साधु-साध्वी यदि ऐसे वस्त्र को जाने जो कि अंडों से यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हैं तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनैषणीय मानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। साधु या साध्वी यदि जाने के यह वस्त्र अंडों से यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु अभीष्ट कार्य करने में असमर्थ है, अस्थिर है, या जीर्ण है, अध्रुव है, धारण करने के योग्य नहीं है, तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी यदि ऐसा वस्त्र जाने, जो कि अण्डों से, यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, साथ ही वह वस्त्र अभीष्ट कार्य करने में समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य है, दाता की रुचि को देखकर साधु के लिए भी कल्पनीय हो तो उस प्रकार के वस्त्र को प्रासुक और एषणीय समझकर प्राप्त होने पर साधु ग्रहण कर सकता है।

‘मेरा वस्त्र नया नहीं है।’ ऐसा सोचकर साधु या साध्वी उसे थोड़े व बहुत सुगन्धित द्रव्य से यावत् पद्मराग से आघर्षित-प्रघर्षित न करे। ‘मेरा वस्त्र नूतन नहीं है।’ इस अभिप्राय से साधु या साध्वी उस मलिन वस्त्र को बहुत बार थोड़े-बहुत शीतल या उष्ण प्रासुक जल से एक बार या बार-बार प्रक्षालन न करे। ‘मेरा वस्त्र दुर्गन्धित है।’ यों सोचकर उसे बहुत बार थोड़े-बहुत सुगन्धित द्रव्य आदि से आघर्षित-प्रघर्षित न करे, न ही शीतल या उष्ण प्रासुक जल से उसे एक बार या बार-बार धोए। यह आलापक भी पूर्ववत् है।

### सूत्र - ४८२

संयमशील साधु या साध्वी वस्त्र को धूप में कम या अधिक सूखाना चाहे तो वह वैसे वस्त्र को सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध पृथ्वी पर, तथा ऊपर से सचित्त मिट्टी गिरती हो, तथा ऐसी पृथ्वी पर, सचित्त शिला पर, सचित्त मिट्टी के ढेले पर, जिसमें धुन या दीमक का निवास हो ऐसी जीवाधिष्ठित लकड़ी पर प्राणी, अण्डे, बीज, मकड़ी के जाले आदि जीवजन्तु हों, ऐसे स्थान में थोड़ा अथवा अधिक न सूखाए।

संयमशील साधु या साध्वी वस्त्र को धूप में कम या अधिक सूखाना चाहे तो वह उस प्रकार के वस्त्र को ढूँठ पर, दरवाजे की देहली पर, ऊखल पर, स्नान करने की चौकी पर, इस प्रकार के और भी भूमि से ऊंचे स्थान पर जो भलीभाँति बंधा हुआ नहीं है, ठीक तरह से भूमि पर गाड़ा हुआ या रखा हुआ नहीं है, निश्चल नहीं है, हवा से इधर-उधर चलविचल हो रहा है, (वहाँ, वस्त्र को) आताप या प्रताप न दे।

साधु या साध्वी यदि वस्त्र को धूप में थोड़ा या बहुत सूखाना चाहते हों तो घर की दीवार पर, नदी के तट पर, शिला पर, रोड़े-पथर पर, या अन्य किसी उस प्रकार के अंतरीक्ष (उच्च) स्थान पर जो कि भलीभाँति बंधा हुआ, या जमीन पर गड़ा हुआ नहीं है, चंचल आदि है, यावत् थोड़ा या अधिक न सूखाए। यदि साधु या साध्वी वस्त्र को धूप में थोड़ा या अधिक सूखाना चाहते हों तो उस वस्त्र को स्तम्भ पर, मंच पर, ऊपर की मंजिल पर, महल पर, भवन के भूमिगृह में, अथवा इसी प्रकार के अन्य ऊंचे स्थानों पर जो कि दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, कंपित एवं चलाचल हो, थोड़ा या बहुत न सूखाए।

साधु उस वस्त्र को लेकर एकान्त में जाए; वहाँ जाकर (देखे कि) जो भूमि अग्र से दग्ध हो, यावत् वहाँ अन्य कोई उस प्रकार की निरवद्य अचित्त भूमि हो, उस निर्दोष स्थंडिलभूमि का भलभाँति प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके तत्पश्चात् यतनापूर्वक उस वस्त्र को थोड़ा या अधिक धूप में सूखाए।

यही उस साधु या साध्वी का सम्पूर्ण आचार है, जिसमें सभी अर्थों एवं ज्ञानादि आचार से सहित होकर वह सदा प्रयत्नशील रहे। -ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-५ – उद्देशक-२

## सूत्र - ४८३

साधु या साध्वी वस्त्रैषणा समिति के अनुसार एषणीय वस्त्रों की याचना करे, और जैसे भी वस्त्र मिले और लिए हों, वैसे ही वस्त्रों को धारण करे, परन्तु न उन्हें धोए, न रंगे और न ही धोए हुए तथा रंगे हुए वस्त्रों को पहने। उन साधारण-से वस्त्रों को न छिपाते हुए ग्राम-ग्रामान्तर में समतापूर्वक विचरण करे। यही वस्त्रधारी साधु का समग्र है।

वह साधु या साध्वी, यदि गृहस्थ के घर में आहार-पानी के लिए जाना चाहे तो समस्त कपड़े साथ में लेकर उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करे। इसी प्रकार बस्ती के बाहर स्वाध्यायभूमि या शौचार्थ स्थंडिलभूमि में जाते समय एवं ग्रामानुग्राम विहार करते समय सभी वस्त्रों को साथ लेकर विचरण करे।

यदि वह यह जाने कि दूर-दूर तक तीव्र वर्षा होती दिखाई दे रही है तो यावत् पिण्डैषणा-समान सब आचरण करे। अन्तर इतना ही है कि वहाँ समस्त उपधि साथ में लेकर जाने का विधि-निषेध है, जबकि यहाँ केवल सभी वस्त्रों को लेकर जाने का विधि-निषेध है।

## सूत्र - ४८४

कोई साधु मुहूर्त्त आदि नियतकाल के लिए किसी दूसरे साधु से प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करता है और फिर किसी दूसरे ग्राम आदि में एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन अथवा पाँच दिन तक निवास करके वापस आता है। इस बीच यह वस्त्र उपहत हो जाता है। लौटाने पर वस्त्र का स्वामी उसे वापिस लेना स्वीकार नहीं करे, लेकर दूसरे साधु को नहीं देवे; किसी को उधार भी नहीं देवे, उस वस्त्र के बदले दूसरा वस्त्र भी नहीं लेवे, दूसरे के पास जाकर ऐसा भी नहीं कहे कि-आयुष्मन् श्रमण ! आप इस वस्त्र को धारण करना चाहते हैं, इसका उपभोग करना चाहते हैं ? उस दृढ़ वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े करके परिष्ठापन भी नहीं करे। किन्तु उस उपहत वस्त्र का स्वामी उसी उपहत करने वाले साधु को दे, परन्तु स्वयं उसका उपभोग न करे।

वह एकाकी साधु इस प्रकार की बात सूनकर उस पर मन में यह विचार करे कि सबका कल्याण चाहने वाले एवं भय का अन्त करने वाले ये पूज्य श्रमण उस प्रकार के उपहत वस्त्रों को उन साधुओं से, जो कि इनसे मुहूर्त्त भर आदि काल का उद्देश्य करके प्रातिहारिक ले जाते हैं, और एक दिन से लेकर पाँच दिन तक किसी ग्राम आदि में निवास करके आते हैं, न स्वयं ग्रहण करते हैं, न परस्पर एक दूसरे को देते हैं, यावत् न वे स्वयं उन वस्त्रों का उपयोग करते हैं। इस प्रकार बहुवचन का आलापक कहना चाहिए। अतः मैं भी मुहूर्त्त आदि का उद्देश्य करके इनसे प्रातिहारिक वस्त्र माँगकर एक दिन से लेकर पाँच दिन तक ग्रामान्तर में ठहरकर वापस लौट आऊँ, जिससे यह वस्त्र मेरा हो जाएगा। ऐसा विचार करने वाला साधु मायास्थान का स्पर्श करता है, अतः ऐसा विचार न करे।

## सूत्र - ४८५

साधु या साध्वी सुन्दर वर्ण वाले वस्त्रों को विवर्ण न करे, तथा विवर्ण वस्त्रों को सुन्दर वर्ण वाले न करे। मैं दूसरा नया वस्त्र प्राप्त कर लूँगा, इस अभिप्राय से अपना पुराना वस्त्र किसी दूसरे साधु को न दे और न किसी से उधार वस्त्र ले, और न ही वस्त्र की परस्पर अदलाबदली करे। दूसरे साधु के पास जाकर ऐसा न कहे-आयुष्मन् श्रमण ! क्या तुम मेरे वस्त्र को धारण करना या पहनना चाहते हो ? इसके अतिरिक्त उस सुदृढ़ वस्त्र को टुकड़े-टुकड़े करके फेंके नहीं, साधु उसी प्रकार का वस्त्र धारण करे, जिसे गृहस्थ या अन्य व्यक्ति अमनोज्ञ समझे।

(वह साधु) मार्ग में सामने आते हुए चोरों को देखकर उस वस्त्र की रक्षा के लिए चोरों से भयभीत होकर साधु उन्मार्ग से न जाए अपितु जीवन-मरण के प्रति हर्ष-शोक रहित, बाह्य लेश्या से मुक्त, एकत्वभाव में लीन होकर देह और वस्त्रादि का व्युत्सर्ग करके समाधिभाव में स्थिर रहे। इस प्रकार संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी के मार्ग के बीच में अटवी वाला लम्बा मार्ग हो, और वह जाने कि इस अटवीबहुल मार्ग में बहुत से चोर वस्त्र छीनने के लिए इकट्ठे होकर आते हैं, तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग से न जाए, किन्तु देह और वस्त्रादि के प्रति अनासक्त यावत् समाधिभाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक

ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी के मार्ग में चोर इकट्ठे होकर वस्त्रहरण करने के लिए आ जाए और कहे कि आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र लाओ, हमारे हाथ में दे दो, या हमारे सामने रख दो, तो जैसे ईर्याऽध्ययन में वर्णन किया है, उसी प्रकार करे । इतना विशेष है कि यहाँ वस्त्र का अधिकार है ।

यही वस्तुतः साधु-साध्वी का सम्पूर्ण ज्ञानादि आचार है । जिसमें सभी अर्थों में ज्ञानादि से सहित होकर सदा प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-६ – पात्रैषणा

## उद्देशक-१

## सूत्र - ४८६

संयमशील साधु या साध्वी यदि पात्र ग्रहण करना चाहे तो जिन पात्रों को जाने वे इस प्रकार हैं-तुम्बे का पात्र, लकड़ी का पात्र और मिट्टी का पात्र । इन तीनों प्रकार के पात्रों को साधु ग्रहण कर सकता है । जो निर्ग्रन्थ तरुण बलिष्ठ स्वस्थ और स्थिर-सहन वाला है, वह इस प्रकार का एक ही पात्र रखे, दूसरा नहीं । वह साधु, साध्वी अर्द्धयोजन के उपरांत पात्र लेने के लिए जाने का मन में विचार न करे ।

साधु या साध्वी को यदि पात्र के सम्बन्ध में यह ज्ञात हो जाए कि किसी भावुक गृहस्थ ने धन के सम्बन्ध से रहित निर्ग्रन्थ साधु को देने की प्रतिज्ञा (विचार) करके किसी एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से समारम्भ करके पात्र बनवाया है, यावत् (पिण्डैषणा समान) अनैषणीय समझकर मिलने पर भी न ले । जैसे यह सूत्र एक साधर्मिक साधु के लिए है, वैसे ही अनेक साधर्मिक साधुओं, एक साधर्मिणी साध्वी एवं अनेक साधर्मिणी साध्वियों के सम्बन्ध में शेष तीन आलापक समझ लेने चाहिए । और पाँचवा आलापक (पिण्डैषणा अध्ययन में) जैसे बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि को गिन गिन कर देने के सम्बन्ध में है, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए ।

यदि साधु-साध्वी यह जाने के असंयमी गृहस्थने भिक्षुओं को देने की प्रतिज्ञा करके बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, आदि के उद्देश्य से पात्र बनाया है उसका भी शेष वर्णन वस्त्रैषणा के आलापक के समान समझ लेना चाहिए

साधु या साध्वी यदि यह जाने कि नाना प्रकार के महामूल्यवान पात्र हैं, जैसे कि लोहे के पात्र, रांगे के पात्र, तांबे के पात्र, सीसे के पात्र, चाँदी के पात्र, सोने के पात्र, पीतल के पात्र, हारपुट धातु के पात्र, मणि, काँच और कांसे के पात्र, शंख और सींग के पात्र, दाँत के पात्र, वस्त्र के पात्र, पथर के पात्र, या चमड़े के पात्र, दूसरे भी इसी तरह के नाना प्रकार के महा-मूल्यवान पात्रों को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे ।

साधु या साध्वी फिर भी उन पात्रों को जाने, जो नाना प्रकार के महामूल्यवान बन्धन वाले हैं, जैसे कि वे लोहे के बन्धन हैं, यावत् चर्म-बंधन वाले हैं, अथवा अन्य इसी प्रकार के महामूल्यवान बन्धन वाले हैं, तो उन्हें अप्रासुक और अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे ।

इन पूर्वोक्त दोषों के आयतनों का परित्याग करके पात्र ग्रहण करना चाहिए ।

साधु को चार प्रतिमा पूर्वक पात्रैषणा करनी चाहिए । पहली प्रतिमा यह है कि साधु या साध्वी कल्पनीय पात्र का नामोल्लेख करके उसकी याचना करे, जैसे कि तुम्बे का पात्र, या लकड़ी का पात्र या मिट्टी का पात्र; उस प्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे, या फिर वह स्वयं दे और वह प्रासुक और एषणीय हो तो प्राप्त होने पर उसे ग्रहण करे ।

दूसरी प्रतिमा है-वह साधु या साध्वी पात्रों को देखकर उनकी याचना करे, जैसे कि गृहपति यावत् कर्म-चारिणी से । वह पात्र देखकर पहले ही उसे कहे-क्या मुझे इनमें से एक पात्र दोगे ? जैसे कि तुम्बा, काष्ठ या मिट्टी का पात्र । इस प्रकार के पात्र की याचना करे, या गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण करे ।

तीसरी प्रतिमा इस प्रकार है-वह साधु या साध्वी यदि ऐसा पात्र जाने कि वह गृहस्थ के द्वारा उपभुक्त है अथवा उसमें भोजन किया जा रहा है, ऐसे पात्र की पूर्ववत् याचना करे अथवा वह गृहस्थ दे दे तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण करे ।

चौथी प्रतिमा यह है-वह साधु या साध्वी किस उज्झितधार्मिक पात्र की याचना करे, जिसे अन्य बहुत-से शाक्यभिक्षु, ब्राह्मण यावत् भिखारी तक भी नहीं चाहते, उस प्रकार के पात्र की पूर्ववत् स्वयं याचना करे, अथवा वह गृहस्थ स्वयं दे तो प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण करे । इन चार प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा का ग्रहण...जैसे पिण्डैषणा-अध्ययन में वर्णन है, उसी प्रकार जाने ।

साधु को इसके द्वारा पात्र-गवेषणा करते देखकर यदि कोई गृहस्थ कहे कि "अभी तो तुम जाओ, तुम एक मास यावत् कल या परसों तक आना..." शेष सारा वर्णन वस्त्रैषणा समान जानना । इसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ कहे

अभी तो तुम जाओ, थोड़ी देर बाद आना, हम तुम्हें एक पात्र देंगे, आदि शेष वर्णन भी वस्त्रैषणा तरह समझ लेना ।

कदाचित् कोई गृहनायक पात्रान्वेषी साधु को देखकर अपने परिवार के किसी पुरुष या स्त्री को बुलाकर यों कहे 'वह पात्र लाओ, हम उस पर तेल, घी, नवनीत या वसा चुपड़कर साधु को देंगे...' शेष सारा वर्णन, इसी प्रकार स्नानीय पदार्थ आदि से घिसकर... इत्यादि वर्णन, तथैव शीतल प्रासुक जल, उष्ण जल से या धोकर... आदि अवशिष्ट समग्र वर्णन, इसी प्रकार कंदादि उसमें से नीकाल कर साफ करके... इत्यादि सारा वर्णन भी वस्त्रैषणा समान समझ लेना । विशेषता सिर्फ यही है कि वस्त्र के बदले यहाँ 'पात्र' शब्द कहना चाहिए ।

कदाचित् कोई गृहनायक साधु से इस प्रकार कहे— "आयुष्मन् श्रमण ! आप मुहूर्त्तपर्यन्त ठहरिए । जब तक हम अशन आदि चतुर्विध आहार जुटा लेंगे या तैयार कर लेंगे, तब हम आपको पानी और भोजन से भरकर पात्र देंगे, क्योंकि साधु को खाली पात्र देना अच्छा और उचित नहीं होता ।" इस पर साधु उस गृहस्थ से कह दे— "मेरे लिए आधाकर्मि आहार खाना या पीना कल्पनीय नहीं है । अतः तुम आहार की सामग्री मत जुटाओ, आहार तैयार न करो । यदि मुझे पात्र देना चाहते हो तो ऐसे खाली ही दे दो ।"

साधु के इस प्रकार कहने पर यदि कोई गृहस्थ अशनादि चतुर्विध आहार की सामग्री जुटाकर अथवा आहार तैयार करके पानी और भोजन भरकर साधु को वह पात्र देने लगे तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक और अनैषणीय समझकर मिलने पर ग्रहण न करे ।

कदाचित् कोई गृहनायक पात्र को सुसंस्कृत आदि किये बिना ही लाकर साधु को देने लगे तो साधु विचार-पूर्वक पहले ही उससे कहे— "मैं तुम्हारे इस पात्र को अन्दर-बाहर चारों ओर से भलीभाँति प्रतिलेखन करूँगा, क्योंकि प्रतिलेखन किये बिना पात्रग्रहण करना केवली भगवान न कर्मबन्ध का कारण बताया है । सम्भव है उस पात्र में जीव-जन्तु हों, बीज हों या हरी आदि हो । अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थकर आदि आप्तपुरुषों ने पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा का निर्देश किया है या ऐसा हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि साधु को पात्र ग्रहण करने से पूर्व ही उस पात्र को अन्दर-बाहर चारों ओर से प्रतिलेखन कर लेना चाहिए ।

अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त पात्र ग्रहण न करे... इत्यादि सारे आलापक वस्त्रैषणा के समान जान लेने चाहिए । विशेष यह कि यदि वह तेल, घी, नवनीत आदि स्निग्ध पदार्थ लगाकर या स्नानीय पदार्थों से रगड़कर पात्र को नया व सुन्दर बनाना चाहे, इत्यादि वर्णन 'अन्य उस प्रकार की स्थण्डिलभूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके यतनापूर्वक पात्र को साफ करे यावत् धूप में सूखाए' तक वस्त्रैषणा समान समझना ।

यही (पात्रैषणा विवेक ही) वस्तुतः उस साधु या साध्वी का समग्र आचार है, जिसमें वह ज्ञान आदि सर्व अर्थों से युक्त होकर सदा प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## अध्ययन-६ - उद्देशक-२

### सूत्र - ४८७

गृहस्थ के घर में आहार-पानी के लिए प्रवेश करने से पूर्व ही साधु या साध्वी अपने पात्र को भलीभाँति देखे, उसमें कोई प्राणी हो तो उन्हें नीकालकर एकान्त में छोड़ दे और धूल को पोंछकर झाड़ दे । तत्पश्चात् साधु अथवा साध्वी आहार-पानी के लिए उपाश्रय से बाहर निकले या गृहस्थ के घर में प्रवेश करे । केवली भगवान कहते हैं— ऐसा करना कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि पात्र के अन्दर द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, बीज या रज आदि रह सकते हैं, पात्रों का प्रतिलेखन-प्रमार्जन किये बिना उन जीवों की विराधना हो सकती है । इसीलिए तीर्थकर आदि आप्त-पुरुषों ने साधुओं के लिए पहले से ही इस प्रकार की प्रतिज्ञा, यह हेतु, कारण और उपदेश दिया है कि आहार-पानी के लिए जाने से पूर्व साधु पात्र का सम्यक् निरीक्षण करके कोई प्राणी हो तो उसे नीकाल कर एकान्त में छोड़ दे, रज आदि को पोंछकर झाड़ दे और तब यतनापूर्वक से नीकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे ।

### सूत्र - ४८८

साधु या साध्वी गृहस्थ के यहाँ आहार-पानी के लिए गये हों और गृहस्थ घर के भीतर से अपने पात्र में सचित्त

जल लाकर साधु को देने लगे, तो साधु उस प्रकार के पर-हस्तगत एवं पर-पात्रगत शीतल जल को अप्रासुक और अनैषणीय जानकर अपने पात्र में ग्रहण न करे। कदाचित् असावधानी से वह जल ले लिया हो तो शीघ्र दाता के जल पात्र में उड़ेल दे। यदि गृहस्थ उस पानी को वापस न ले तो किसी स्निग्ध भूमि में या अन्य किसी योग्य स्थान में उस जल का विधिपूर्वक परिष्ठापन कर दे। उस जल से स्निग्ध पात्र को एकान्त निर्दोष स्थान में रख दे।

वह साधु या साध्वी जल से आर्द्र और स्निग्ध पात्र को जब तक उसमें से बूँदें टपकती रहें, और वह गीला रहे, तब तक न तो पोंछे और न ही धूप में सूखाए। जब वह यह जान ले कि मेरा पात्र अब निर्गतजल और स्नेह-रहित हो गया है, तब वह उस प्रकार के पात्र को यतनापूर्वक पोंछ सकता है और धूप में सूखा सकता है।

साधु या साध्वी गृहस्थ के यहाँ आहारादि लेने के लिए प्रवेश करना चाहे तो अपने पात्र साथ लेकर वहाँ आहारादि के लिए प्रवेश करे या उपाश्रय से नीकले। इसी प्रकार स्वपात्र लेकर वस्ती से बाहर स्वाध्याय भूमि या शौचार्थ स्थण्डिलभूमि को जाए, अथवा ग्रामानुग्राम विहार करे। तीव्र वर्षा दूर-दूर तक हो रही हो यावत् तीरछे उड़ने वाले त्रस प्राणी एकत्रित हो कर गिर रहे हों, इत्यादि परिस्थितियों में वस्त्रैषणा के निषेधादेश समान समझना। विशेष इतना ही है कि वहाँ सभी वस्त्रों को साथ में लेकर जाने का निषेध है, जबकि यहाँ अपने सब पात्र लेकर जाने का निषेध है।

यही साधु-साध्वी का समग्र आचार है, जिसके परिपालन के लिए प्रत्येक साधु-साध्वी को ज्ञानादि सभी अर्थों में प्रयत्नशील रहना चाहिए। -ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-७ – अवग्रहप्रतिमा

## उद्देशक-१

## सूत्र - ४८९

मुनिदीक्षा लेते समय साधु प्रतिज्ञा करता है-“अब मैं श्रमण बन जाऊंगा। अनगार, अकिंचन, अपुत्र, अपशु एवं परदत्तभोजी होकर मैं अब कोई भी हिंसादि पापकर्म नहीं करूँगा।” इस प्रकार संयम पालन के लिए उत्थित होकर (कहता है-) ‘भन्ते ! मैं आज समस्त प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ।’

वह साधु ग्राम यावत् राजधानी में प्रविष्ट होकर स्वयं बिना दिये हुए पदार्थ को ग्रहण न करे, न दूसरों से ग्रहण कराए और न अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन-समर्थन करे।

जिन साधुओं के साथ या जिनके पास वह प्रव्रजित हुआ है, या विचरण कर रहा है या रह रहा है, उनके भी छत्रक, दंड, पात्रक यावत् चर्मच्छेदनक आदि उपकरणों की पहले उनसे अवग्रह-अनुज्ञा लिये बिना तथा प्रतिलेखन - प्रमार्जन किये बिना एक या अनेक बार ग्रहण न करे। अपितु उनसे पहले अवग्रह-अनुज्ञा लेकर, पश्चात् उसका प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके फिर संयमपूर्वक उस वस्तु को एक या अनेक बार ग्रहण करे।

## सूत्र - ४९०

साधु पथिकशालाओं, आरामगृहों, गृहस्थ के घरों और परिव्राजकों के आवासों में जाकर पहले साधुओं के आवास योग्य क्षेत्र भलीभाँति देख-सोचकर अवग्रह की याचना करे। उस क्षेत्र या स्थान का जो स्वामी हो, या जो वहाँ का अधिष्ठाता हो उससे इस प्रकार अवग्रह की अनुज्ञा माँगे “आपकी ईच्छानुसार-जितने समय तक रहने की तथा जितने क्षेत्र में निवास करने की तुम आज्ञा दोगे, उतने समय तक, उतने क्षेत्र में हम निवास करेंगे। यहाँ जितने समय तक आप की अनुज्ञा है, उतनी अवधि तक जितने भी अन्य साधु आएंगे, उनके लिए भी जितने क्षेत्र-काल की अवग्रहानुज्ञा ग्रहण करेंगे वे भी उतने ही समय तक उतने ही क्षेत्र में ठहरेंगे, पश्चात् वे और हम विहार कर देंगे।

अवग्रह के अनुज्ञापूर्वक ग्रहण कर लेने पर फिर वह साधु क्या करे ? वहाँ कोई साधर्मिक, साम्भोगिक एवं समनोज्ञ साधु अतिथि रूप में आ जाए तो वह साधु स्वयं अपने द्वारा गवेषणा करके लाये हुए अशनादि चतुर्विध आहार को उन साधर्मिक, सांभोगिक एवं समनोज्ञ साधुओं को उपनिमंत्रित करे, किन्तु अन्य साधु द्वारा या अन्य रुग्णादि साधु के लिए लाये आहारादि को लेकर उन्हें उपनिमंत्रित न करे।

## सूत्र - ४९१

पथिकशाला आदि अवग्रह को अनुज्ञापूर्वक ग्रहण कर लेने पर, फिर वह साधु क्या करे ? यदि वहाँ अन्य साम्भोगिक, साधर्मिक एवं समनोज्ञ साधु अतिथि रूप में आ जाए तो जो स्वयं गवेषणा करके लाए हुए पीठ, फलक, शय्यासंस्तारक आदि हों, उन्हें उन वस्तुओं के लिए आमंत्रित करें, किन्तु जो दूसरे के द्वारा या रुग्णादि अन्य साधु के लिए लाये हुए पीठ, फलक आदि हों, उनके लिए आमंत्रित न करे।

उस धर्मशाला आदि को अवग्रहपूर्वक ग्रहण कर लेने के बाद साधु क्या करे ? जो वहाँ आसपास में गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र आदि हैं, उनसे कार्यवश सूई, कैंची, कानकुरेदनी, नहरनी-आदि अपने स्वयं के लिए कोई साधु प्रातिहारिक रूप से याचना करके लाया हो तो वह उन चीजों को परस्पर एक दूसरे साधु को न दे-ले। अथवा वह दूसरे साधु को वे चीजें न सौंपे। उन वस्तुओं का यथायोग्य कार्य हो जाने पर वह उन प्रातिहारिक चीजों को लेकर उस गृहस्थ के यहाँ जाए और लम्बा हाथ करके उन चीजों को भूमि पर रखकर गृहस्थ से कहे-यह तुम्हारा अमुक पदार्थ है, यह अमुक है, इसे संभाल लो, देख लो। परन्तु उन सूई आदि वस्तुओं को साधु अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ पर रख कर न सौंपे।

## सूत्र - ४९२

साधु या साध्वी यदि ऐसे अवग्रह को जाने, जो सचित्त, स्निग्ध पृथ्वी यावत्, जीव-जन्तु आदि से युक्त हो, तो इस प्रकार के स्थान की अवग्रह-अनुज्ञा एक बार या अनेक बार ग्रहण न करे। साधु या साध्वी यदि ऐसे अवग्रह को

जाने, जो भूमि से बहुत ऊंचा हो, ढूँठ, देहली, खूँटी, ऊखल, मूसल आदि पर टिकाया हुआ एवं ठीक तरह से बंधा हुआ या गड़ा या रखा हुआ न हो, अस्थिर और चल-विचल हो, तो ऐसे स्थान की भी अवग्रह-अनुज्ञा एक या अनेक बार ग्रहण न करे।

ऐसे अवग्रह को जाने, जो घर की कच्ची पतली दीवार पर या नदी के तट या बाहर की भींत, शिला या पथर के टुकड़ों पर या अन्य किसी ऊंचे व विषम स्थान पर निर्मित हो, तथा दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अस्थिर और चल-विचल हो तो ऐसे स्थान की भी अवग्रह-अनुज्ञा ग्रहण न करे। ऐसे अवग्रह को जाने जो, स्तम्भ, मचान, ऊपर की मंजिल, प्रासाद या तलघर में स्थित हो या उस प्रकार के किसी उच्च स्थान पर हो तो ऐसे दुर्बद्ध यावत् चल-विचल स्थान की अवग्रह-अनुज्ञा ग्रहण न करे।

यदि ऐसे अवग्रह को जाने, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि और जल से युक्त हो, जिसमें स्त्रियाँ, छोटे बच्चे अथवा क्षुद्र रहते हों, जो पशुओं और उनके योग्य खाद्य-सामग्री से भरा हो, प्रज्ञावान साधु के लिए ऐसा आवास स्थान निर्गमन-प्रवेश, वाचना यावत् धर्मानुयोग-चिन्तन के योग्य नहीं है। ऐसा जानकर उस प्रकार के उपाश्रय की अवग्रह-अनुज्ञा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। जिस अवग्रह को जाने कि उसमें जाने का मार्ग गृहस्थ के घर के बीचोंबीच से है या गृहस्थ के घर से बिलकुल सटा हुआ है तो प्रज्ञावान साधु को ऐसे स्थान में नीकलना और प्रवेश करना तथा वाचन यावत् धर्मानुयोग-चिन्तन करना उचित नहीं है, ऐसा जानकर उस प्रकार के उपाश्रय की अवग्रह-अनुज्ञा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

ऐसे अवग्रह को जाने, जिसमें गृहस्वामी यावत् उसकी नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे पर आक्रोश करती हों, लड़ती-झगड़ती हों तथा परस्पर एक दूसरे के शरीर पर तेल, घी आदि लगाते हों, इसी प्रकार स्नानादि, जल से गात्रसिंचन आदि करते हों या नग्नस्थित हों इत्यादि वर्णन शय्याऽध्ययन के आलापकों की तरह यहाँ समझ लेना चाहिए। इतना ही विशेष है कि वहाँ यह वर्णन शय्या के विषय में है, यहाँ अवग्रह के विषय में है।

साधु या साध्वी ऐसे अवग्रह-स्थान को जाने, जिसमें अश्लील चित्र आदि अंकित या आकीर्ण हों, ऐसा उपाश्रय प्रज्ञावान साधु के निर्गमन-प्रवेश तथा वाचना से धर्मानुयोग चिन्तन के योग्य नहीं है। ऐसे उपाश्रय की अवग्रह-अनुज्ञा एक या अधिक बार ग्रहण नहीं करनी चाहिए। यही वास्तव में साधु या साध्वी का समग्र सर्वस्व है, जिसे सभी प्रयोजनो एवं ज्ञानादि से युक्त, एवं समितियों से समित होकर पालन करने के लिए वह सदा प्रयत्नशील ह। -ऐसा मैं कहता हूँ।

## अध्ययन-७ – उद्देशक-२

### सूत्र - ४९३

साधु धर्मशाला आदि स्थानों में जाकर, ठहरने के स्थान को देखभाल कर विचारपूर्वक अवग्रह की याचना करे। वह अवग्रह की अनुज्ञा माँगते हुए उक्त स्थान के स्वामी या अधिष्ठाता से कहे कि आपकी ईच्छानुसार-जितने समय तक और जितने क्षेत्र में निवास करने की आप हमें अनुज्ञा देंगे, उतने समय तक और उतने ही क्षेत्र में हम ठहरेंगे। हमारे जितने भी साधर्मिक साधु यहाँ आएंगे, उनके निवास के लिए भी जितने काल और जितने क्षेत्र तक इस स्थान में ठहरने की आपकी अनुज्ञा होगी, उतने काल और क्षेत्र में वे ठहरेंगे। नियत अवधि के पश्चात् वे और हम यहाँ से विहार कर देंगे।

उक्त स्थान के अवग्रह की अनुज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु उसमें निवास करते समय क्या करे? वहाँ (ठहरे हुए) शाक्यादि श्रमणों या ब्राह्मणों के दण्ड, छत्र, यावत् चर्मच्छेदनक आदि उपकरण पड़े हों, उन्हें वह भीतर से बाहर न निकाले और न ही बाहर से अन्दर रखे, तथा किसी सोए हुए श्रमण या ब्राह्मण को न जगाए। उनके साथ किंचित् मात्र भी अप्रीतिजनक या प्रतिकूल व्यवहार न करे, जिससे उनके हृदय को आघात पहुँचे।

### सूत्र - ४९४

वह साधु या साध्वी आम के वन में ठहरना चाहे तो उस आम्रवन का जो स्वामी या अधिष्ठाता हो, उससे

अवग्रह की अनुज्ञा प्राप्त करे उतने समय तक, उतने नियत क्षेत्र में आम्रवन में ठहरेंगे, इसी बीच हमारे समागत साधर्मिक भी इसी का अनुसरण करेंगे। अवधि पूर्ण होने के पश्चात् यहाँ से विहार कर जाएंगे।

उस आम्रवन में अवग्रहानुज्ञा ग्रहण करके ठहरने पर क्या करे ? यदि साधु आम खाना या उसका रस पीना चाहता है, तो वहाँ के आम यदि अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त देखे-जाने तो उस प्रकार के आम्रफलों को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे।

यदि साधु या साध्वी उस आम्रवन के आमों को ऐसे जाने कि वे हैं तो अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित, किन्तु वे तीरछे कटे हुए नहीं है, न खण्डित हैं तो उन्हें अप्रासुक एवं अनैषणीय मानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। यदि साधु या साध्वी यह जाने कि आम अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं, साथ ही तीरछे कटे हुए हैं और खण्डित हैं, तो उन्हें प्रासुक और एषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण करे।

यदि साधु या साध्वी आम का आधा भाग, आम की पेशी, आम की छाल या आम का गिरि, आम का रस, या आम के बारीक टुकड़े खाना-पीना चाहे, किन्तु वह यह जाने कि वह आम का अर्ध भाग यावत् आम के बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हैं तो उन्हें अप्रासुक एवं अनैषणीय मानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

यदि साधु या साध्वी यह जाने कि आम का आधा भाग यावत् आम के छोटे बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित हैं, किन्तु वे तीरछे कटे हुए नहीं हैं, और न ही खण्डित हैं तो उन्हें भी अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे।

यदि साधु या साध्वी यह जान ले कि आम की आधी फाँक से लेकर आम के छोटे बारीक टुकड़े तक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं, तीरछे कटे हुए भी हैं और खण्डित भी हैं तो उसको प्रासुक एवं एषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर ले।

वह साधु या साध्वी यदि इक्षुवन में ठहरना चाहे तो जो वहाँ का स्वामी या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी हो, उससे क्षेत्र-काल की सीमा खोलकर अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करके वहाँ निवास करे। उस इक्षुवन की अवग्र-हानुज्ञा ग्रहण करने से क्या प्रयोजन ? यदि वहाँ रहते हुए साधु कदाचित् ईख खाना या उसका रस पीना चाहे तो पहले यह जान ले कि वे ईख अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त तो नहीं है ? यदि वैसे हों तो साधु उन्हें अप्रासुक अनैषणीय जानकर छोड़ दे। यदि वे अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त तो नहीं हैं, किन्तु तीरछे कटे हुए या टुकड़े-टुकड़े किये हुए नहीं है, तब भी उन्हें पूर्ववत् जानकर न ले। यदि साधु को यह प्रतीति हो जाए कि वे ईख अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं, तीरछे कटे हुए तथा टुकड़े-टुकड़े किये हुए हैं तो उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जानकर प्राप्त होने पर वह ले सकता है। यह सारा वर्णन आम्रवन की तरह समझना चाहिए।

यदि साधु या साध्वी ईख के पर्व का मध्यभाग, ईख की गँड़ेरी, ईख का छिलका या ईख के अन्दर का गर्भ, ईख की छाल या रस, ईख के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े, खाना या पीना चाहे व पहले वह जान जाए कि वह ईख के पर्व का मध्यभाग यावत् ईख के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हैं, तो उस प्रकार के उन इक्षु-अवयवों को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर ग्रहण न करे। साधु साध्वी यदि यह जाने कि वह ईख के पर्व का मध्यभाग यावत् ईख के छोटे-छोटे कोमल टुकड़े अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित हैं, किन्तु तीरछे कटे हुए नहीं है, तो उन्हें पूर्ववत् जानकर ग्रहण न करे, यदि वे इक्षु-अवयव अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं तथा तीरछे कटे हुए भी हैं तो उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर वह ग्रहण कर सकता है।

यदि साधु या साध्वी (किसी कारणवश) लहसून के वन पर ठहरना चाहे तो पूर्वोक्त विधि से अवग्रहानुज्ञा ग्रहण करके रहे। किसी कारणवश लहसून खाना चाहे तो पूर्व सूत्रवत् पूर्वोक्त विधिवत् ग्रहण कर सकता है। इसके तीनों आलापक पूर्व सूत्रवत् समझना।

यदि साधु या साध्वी (किसी कारणवश) लहसून, लहसून का कंद, लहसून की छाल या छिलका या रस अथवा लहसून के गर्भ का आवरण खाना-पीना चाहे और उसे ज्ञात हो जाए कि यह लहसून यावत् लहसून का बीज

अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है, यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, किन्तु तीरछा कटा हुआ नहीं तो भी उसे न ले, यदि तीरछा कटा हुआ हो तो पूर्ववत् प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर ले सकता है।

### सूत्र - ४९५

साधु या साध्वी पथिकशाला आदि स्थानों में पूर्वोक्त विधिपूर्वक अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करके रहे। पूर्वोक्त अप्रीतिजनक प्रतिकूल कार्य न करे तथा विविध अवग्रहरूप स्थानों की याचना भी विधिपूर्वक करे। अव-गृहीत स्थानों में गृहस्थ तथा गृहस्थपुत्र आदि के संसर्ग से सम्बन्धित स्थानदोषों का परित्याग करके निवास करे।

भिक्षु इन सात प्रतिमाओं के माध्यम से अवग्रह ग्रहण करना जाने-

पहली प्रतिमा यह है-वह साधु पथिकशाला आदि स्थानों का सम्यक् विचार करके अवग्रह की पूर्ववत् विधिपूर्वक क्षेत्र-काल की सीमा के स्पष्टीकरण सहित याचना करे। इसका वर्णन स्थान की नियत अवधि पूर्ण होने के पश्चात् विहार कर देंगे तक समझना।

दूसरी प्रतिमा यह है-जिस भिक्षु का इस प्रकार का अभिग्रह होता है कि मैं अन्य भिक्षुओं के प्रयोजनार्थ अवग्रह की याचना करूँगा और अन्य भिक्षुओं के द्वारा याचित अवग्रह-स्थान में निवास करूँगा। तृतीय प्रतिमा यों है-जिस भिक्षु का इस प्रकार का अभिग्रह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओं के लिए अवग्रह-याचना करूँगा, परन्तु दूसरे भिक्षुओं के द्वारा याचित अवग्रह स्थान में नहीं ठहरूँगा।

चौथी प्रतिमा यह है-जिस भिक्षु के ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं के लिए अवग्रह याचना नहीं करूँगा किन्तु दूसरे द्वारा याचित अवग्रहस्थान में निवास करूँगा। पाँचवी प्रतिमा यह है-जिस भिक्षु को ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं अपने प्रयोजन के लिए ही अवग्रह की याचना करूँगा, किन्तु दूसरे दो, तीन, चार और पाँच साधुओं के लिए नहीं।

छठी प्रतिमा यों है-जो साधु जिसके अवग्रह की याचना करता है उसी अवगृहीत स्थान में पहले से ही रखा हुआ शय्या-संस्तारक मिल जाए, जैसे कि इक्कड़ यावत् पराल आदि; तभी निवास करता है। वैसे शय्या-संस्तारक न मिले तो उत्कटुक अथवा निषद्या-आसन द्वारा रात्रि व्यतीत करता है।

सातवी प्रतिमा इस प्रकार है-भिक्षुने जिस स्थान की अवग्रह-अनुज्ञा ली हो, यदि उसी स्थान पर पृथ्वी-शिला, काष्ठशिला तथा पराल आदि बिछा हुआ प्राप्त हो तो वहाँ रहता है, वैसे सहज संस्तृत पृथ्वीशिला आदि न मिले तो वह उत्कटुक या निषद्या-आसन पूर्वक बैठकर रात्रि व्यतीत कर देता है। इन सात प्रतिमाओं में से जो साधु किसी प्रतिमा को स्वीकार करता है, वह इस प्रकार न कहे-मैं उग्राचारी हूँ, दूसरे शिथिलाचारी हूँ, इत्यादि शेष समस्त वर्णन पिण्डैषणा में किए गए वर्णन के अनुसार जान लेना।

### सूत्र - ४९६

हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने उन भगवान से इस प्रकार कहते हुए सूना है कि इस जिन प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने पाँच प्रकार का अवग्रह बताया है, देवेन्द्र-अवग्रह, राजावग्रह, गृहपति-अवग्रह, सागारिक-अवग्रह और साधर्मिक अवग्रह। यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का समग्र आचार है, जिसके लिए वह अपने सभी ज्ञानादि आचारों एवं समितियों सहित सदा प्रयत्नशील रहे।

## अध्ययन-७का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### प्रथमा चूलिका का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## [चूलिका-२]

## अध्ययन-८ (१) – स्थानसप्तिका

## सूत्र - ४९७

साधु या साध्वी यदि किसी स्थान में ठहरना चाहे तो तो वह पहले ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश में पहुँचे । वहाँ पहुँच कर वह जिस स्थान को जाने कि यह अंडों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है, तो उस प्रकार के स्थान को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे । इसी प्रकार यहाँ से उदकप्रसूत कंदादि तक का स्थानैषणा सम्बन्धी वर्णन शय्यैषणा में निरूपित वर्णन के समान जान लेना ।

इन पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण कर्मोपादानरूप दोषस्थानों को छोड़कर साधु इन (आगे कही जाने वाली) चार प्रतिमाओं का आश्रय लेकर किसी स्थान में ठहरने की ईच्छा करे-

प्रथम प्रतिमा है-मैं अपने कायोत्सर्ग के समय अचित्तस्थान में निवास करूँगा, अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा तथा हाथ-पैर आदि सिकोड़ने-फैलाने के लिए परिस्पन्दन आदि करूँगा, तथा वहीं थोड़ा-सा सविचार पैर आदि से विचरण करूँगा ।

दूसरी प्रतिमा है-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूँगा और अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा तथा हाथ-पैर आदि सिकोड़ने-फैलाने के लिए परिस्पन्दन आदि करूँगा, किन्तु पैर आदि से थोड़ा-सा भी विचरण नहीं करूँगा ।

तृतीय प्रतिमा है-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूँगा, अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा, किन्तु हाथ-पैर आदि का संकोचन-प्रसारण एवं पैरों से मर्यादित भूमि में जरा-सा भी भ्रमण नहीं करूँगा ।

चौथी प्रतिमा है-मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्तस्थान में स्थित रहूँगा । उस समय न तो शरीर से दीवार आदि का सहारा लूँगा, न हाथ-पैर आदि का संकोचन-प्रसारण करूँगा और न ही पैरों से मर्यादित भूमि में जरा-सा भी भ्रमण करूँगा । मैं कायोत्सर्ग पूर्ण होने तक अपने शरीर के प्रति भी ममत्व का व्युत्सर्ग करता हूँ । केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम और नख आदि के प्रति भी ममत्व विसर्जन करता हूँ और कायोत्सर्ग द्वारा सम्यक् प्रकार से काया का निरोध करके इस स्थान में स्थित रहूँगा ।

साधु इन चार प्रतिमाओं से किसी एक प्रतिमा को ग्रहण करके विचरण करे । परन्तु प्रतिमा ग्रहण न करने वाले अन्य मुनि की निंदा न करे, न अपनी उत्कृष्टता की डींग हाँके । इस प्रकार की कोई भी बात न कहे ।

## अध्ययन-८ (१) का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

**अध्ययन-९ - निषीधिका-सप्तिका-२****सूत्र - ४९८**

जो साधु या साध्वी प्रासुक-निर्दोष स्वाध्याय-भूमि में जाना चाहे, वह यदि ऐसी स्वाध्याय-भूमि को जाने, जो अण्डों, जीव-जन्तुओं यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो तो उस प्रकार की निषीधिका को अप्रासुक एवं अनैषणीय समझकर मिलने पर कहे कि मैं इसका उपयोग नहीं करूँगा। जो साधु या साध्वी यदि ऐसी स्वाध्याय-भूमि को जाने, जो अंडों, प्राणियों, बीजों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त न हो, तो उस प्रकार की निषीधिका को प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होने पर कहे कि मैं इसका उपयोग करूँगा। निषीधिका के सम्बन्ध में यहाँ से लेकर उदक-प्रसूत तक का समग्र वर्णन शय्या अध्ययन अनुसार जानना।

यदि स्वाध्यायभूमि में दो-दो, तीन-तीन, चार-चार या पाँच-पाँच के समूह में एकत्रित होकर साधु जाना चाहते हों तो वे वहाँ जाकर एक दूसरे के शरीर का परस्पर आलिंगन न करें, न ही विविध प्रकार से एक दूसरे से चिपटें, न वे परस्पर चुम्बन करें, न ही दाँतों और नखों से एक दूसरे का छेदन करें। यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का आचार सर्वस्व है; जिसके लिए वह सभी प्रयोजनों, आचारों से तथा समितियों से युक्त होकर सदा प्रयत्नशील रहे और इसी को अपने लिए श्रेयस्कर माने। -ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-१० - उच्चारप्रसवण-सप्तिका-३****सूत्र - ४९९**

साधु या साध्वी को मल-मूत्र की प्रबल बाधा होने पर अपने पादपुञ्जनक के अभाव में साधर्मिक साधु से उसकी याचना करे ।

साधु या साध्वी ऐसी स्थण्डिल भूमि को जाने, जो कि अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है, तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर मल-मूत्र विसर्जन न करे । साधु या साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो प्राणी, बीज, यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं, तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर मल-मूत्र विसर्जन कर सकता है ।

साधु या साध्वी यह जाने कि किसी भावुक गृहस्थ ने निर्ग्रन्थ निष्परिग्रही साधुओं को देने की प्रतिज्ञा से एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से, या बहुत से साधर्मिक साधुओं के उद्देश्य से, अथवा एक साधर्मिणी साध्वी के उद्देश्य से या बहुत-सी साधर्मिणी साध्वीओं के उद्देश्य से स्थण्डिल, अथवा बहुत-से श्रमण ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र या भिखारियों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से समारम्भ करके स्थण्डिल बनाया है तो इस प्रकार का स्थण्डिल पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत, यावत् बाहर नीकाला हुआ हो, अथवा अन्य किसी उस प्रकार के दोष से युक्त स्थण्डिल हो तो वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो किसी गृहस्थ ने बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, भिखारी या अतिथियों के उद्देश्य से समारम्भ करके औद्देशिक दोषयुक्त बनाया है, तो उस प्रकार के अपुरुषान्तरकृत यावत् काम में नहीं लिया गया हो तो उस में या अन्य किसी एषणादि दोष से युक्त स्थण्डिल में मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

यदि वह यह जान ले कि पूर्वोक्त स्थण्डिल पुरुषान्तरकृत यावत् अन्य लोगों द्वारा उपभुक्त है, और अन्य उस प्रकार के दोषों से रहित स्थण्डिल है तो साधु या साध्वी उस पर मल-मूत्र विसर्जन कर सकते हैं ।

यदि इस प्रकार का स्थण्डिल जाने, जो निर्ग्रन्थ साधुओं को देने की प्रतिज्ञा से किसी ने बनाया है, बनवाया है या उधार लिया है, छप्पर छाया है या छत डाली है, उसे घिसकर सम किया है, कोमल, या चिकना बना दिया है, उसे लीपापोता है, संवारा है, धूप आदि से सुगन्धित किया है, अथवा अन्य भी इस प्रकार के आरम्भ-समारम्भ करके उसे तैयार किया है तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर वह मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

**सूत्र - ५००**

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जान कि गृहपति या उसके पुत्र कन्द, मूल यावत् हरी जिसके अंदर से बाहर ले जा रहे हैं, या बाहर से भीतर ले जा रहे हैं, अथवा उस प्रकार की किन्हीं सचित्त वस्तुओं को इधर-उधर कर रहे हैं, तो वहाँ साधु-साध्वी मल-मूत्र विसर्जन न करे । ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो कि स्कन्ध पर, चौकी पर, मचान पर, ऊपर की मंजिल पर, अटारी पर या महल पर या अन्य किसी विषम या ऊंचे स्थान पर बना हुआ है तो वहाँ वह मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो कि सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध पृथ्वी पर, सचित्त रज से लिप्त या संसृष्ट पृथ्वी पर सचित्त मिट्टी से बनाई हुई जगह पर, सचित्त शिला पर, सचित्त पथर के टुकड़ों पर, घुन लगे हुए काष्ठ पर या दीमक आदि द्वीन्द्रियादि जीवों से अधिष्ठित काष्ठ पर या मकड़ी के जालों से युक्त है तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे । यदि ऐसे स्थण्डिल के सम्बन्ध में जाने कि यहाँ पर गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्रों ने कंद, मूल यावत् बीज आदि इधर-उधर फैके हैं या फैक रहे हैं, अथवा फैकेंगे, तो ऐसे अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी दोषयुक्त स्थण्डिल में मल-मूत्रादि का त्याग न करे ।

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल के सम्बन्ध में जाने कि यहाँ पर गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्रों ने शाली, ग्रीहि, मूँग, उड़द, तिल, कुलत्थ, जौ और ज्वार आदि बोए हुए हैं, बो रहे हैं या बोएंगे, ऐसे अथवा अन्य इसी प्रकार के बीज बोए स्थण्डिल में मल-मूत्रादि का विसर्जन न करे । यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ कचरे के ढेर हों, भूमि फटी हुई या पोली हो, भूमि पर रेखाएं पड़ी हुई हों, कीचड़ हों, ढूँठ अथवा खीले गाड़े हुए हों, किले की दीवार या प्राकार आदि हो, सम-

विषम स्थान हों, ऐसे अथवा अन्य इसी प्रकार के ऊबड़-खाबड़ स्थण्डिल पर मल-मूत्र न करे ।

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ मनुष्यों के भोजन पकाने के चूल्हे आदि सामान रखे हों, तथा भैंस, बैल, घोड़ा, मूर्गा या कुत्ता, लावक पक्षी, बतक, तीतर, कबूतर, कर्पीजल आदि के आश्रय स्थान हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के किसी पशु-पक्षी के आश्रय स्थान हों, तो इस प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र विसर्जन न करे

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ फाँसी पर लटकने के स्थान हों, गृद्धपृष्ठमरण के-स्थान हों, वृक्ष पर से गिरकर या पर्वत से झंपापात करके मरने के स्थान हों, विषभक्षण करने के या दौड़कर आग में गिरने के स्थान हों, ऐसे और अन्य इसी प्रकार के मृत्युदण्ड देने या आत्महत्या करने के स्थान वाले स्थण्डिल हों तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे । यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जैसे कि बगीचा, उद्यान, वन, वनखण्ड, देवकुल, सभा या प्याऊ, अथवा अन्य इसी प्रकार का पवित्र या रमणीय स्थान हो, तो वहाँ वह मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी ऐसे किसी स्थण्डिल को जाने, जैसे-कोट की अटारी हों, किले और नगर के बीच में मार्ग हों, द्वार हों, नगर के मुख्य द्वार हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के सार्वजनिक आवागमन के स्थल हों, तो ऐसे स्थण्डिल में मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ तिराहे हों, चौक हों, चौहट्टे या चौराहे हों, चतुर्मुख स्थान हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के सार्वजनिक जनपथ हों, ऐसे स्थण्डिल में मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ लकड़ियाँ जलाकर कोयले बनाए जाते हों, जो काष्ठादि जलाकर राख बनाने के स्थान हों, मुर्दे जलाने के स्थान हों, मृतक के स्तूप हों, मृतक के चैत्य हों, ऐसा तथा इसी प्रकार का कोई स्थण्डिल हो, तो वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो कि नदी तट पर बने तीर्थस्थान हो, पंकबहुल आयतन हो, पवित्र जलप्रवाह वाले स्थान हों, जलसिंचन करने के मार्ग हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के जो स्थण्डिल हों, उन पर मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो कि मिट्टी की नई खान हों, नई गोचर भूमि हों, सामान्य गायों के चारागाह हों, खानें हों, अथवा अन्य उसी प्रकार का कोई स्थण्डिल हो तो उसमें उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन न करे । यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, वहाँ डालप्रधान, पत्रप्रधान, मूली, गाजर आदि के खेत हैं, हस्तंकुर वनस्पति विशेष के क्षेत्र हैं, उनमें तथा उसी प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ बीजक वृक्ष का वन है, पटसन का वन है, धातकी वृक्ष का वन है, केवड़े का उपवन है, आम्रवन है, अशोकवन है, नागवन है, या पुन्नाग वृक्षों का वन है, ऐसे तथा अन्य उस प्रकार के स्थण्डिल, जो पत्रों, पुष्पों, फलों, बीजों की हरियाली से युक्त हों, उनमें मल-मूत्र विसर्जन न करे ।

### सूत्र - ५०१

संयमशील साधु या साध्वी स्वपात्रक या परपात्रक लेकर एकान्त स्थान में चला जाए, जहाँ पर न कोई आता-जाता हो और न कोई देखता हो, या जहाँ कोई रोक-टोक न हो, तथा जहाँ द्वीन्द्रिय आदि जीव-जन्तु, यावत् मकड़ी के जाले भी न हों, ऐसे बगीचे या उपाश्रय में अचित्त भूमि पर साधु या साध्वी यतनापूर्वक मल-मूत्र विसर्जन करे ।

उसके पश्चात् वह उस (भरे हुए पात्रक) को लेकर एकान्त स्थान में जाए, जहाँ कोई न देखता हो और न ही आता-जाता हो, जहाँ पर किसी जीवजन्तु की विराधना की सम्भावना न हो, यावत् मकड़ी के जाले न हों, ऐसे बगीचे में या दग्धभूमि वाले स्थण्डिल में या उस प्रकार के किसी अचित्त निर्दोष पूर्वोक्त निषिद्ध स्थण्डिलों के अतिरिक्त स्थण्डिल में साधु यतनापूर्वक मल-मूत्र परिष्ठापन करे ।

यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का आचार सर्वस्व है, जिसके आचरण के लिए उसे समस्त प्रयोजनों से ज्ञानादि सहित एवं पाँच समितियों से समित होकर सदैव-सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

## अध्ययन-१० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-११ – शब्दसप्तिका-४

## सूत्र - ५०२

साधु या साध्वी मृदंगशब्द, नंदीशब्द या झलरी के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य वितत शब्दों को कानों से सूनने के उद्देश्य से कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे । साधु या साध्वी कई शब्दों को सूनते हैं, जैसे कि वीणा के शब्द, विपंची के शब्द, बद्धीसक के शब्द, तूनक के शब्द या ढोल के शब्द, तुम्बवीणा के शब्द, ढंकुण के शब्द, या इसी प्रकार के तत-शब्द, किन्तु उन्हें कानों से सूनने के लिए कहीं भी जाने का विचार न करे ।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि ताल के शब्द, कंसताल के शब्द, लतिका के शब्द, गोधिका के शब्द या बाँस की छड़ी से बजने वाले शब्द, इसी प्रकार के अन्य अनेक तरह के तालशब्दों को कानों से सूनने की दृष्टि से किसी स्थान में जाने का मन में संकल्प न करे । साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि शंख के शब्द, वेणु के शब्द, बाँस के शब्द, खरमुही के शब्द, बाँस आदि की नली के शब्द या इसी प्रकार के अन्य शुषिर शब्द, किन्तु उन्हें कानों से श्रवण करने के प्रयोजन से किसी स्थान में जाने का संकल्प न करे ।

## सूत्र - ५०३

वह साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द श्रवण करते हैं, जैसे कि-खेत की क्यारियों में तथा खाईयों में होने वाले शब्द यावत् सरोवरों में, समुद्रों में, सरोवर की पंक्तियों या सरोवर के बाद सरोवर की पंक्तियों के शब्द, अन्य इसी प्रकार के विविध शब्द, किन्तु उन्हें कानों से श्रवण करने के लिए जाने के लिए मन में संकल्प न करे ।

साधु या साध्वी कतिपय शब्दों को सूनते हैं, जैसे कि नदी तटीय जलबहुल प्रदेशों (कच्छों) में, भूमिगृहों या प्रच्छन्न स्थानों में, वृक्षों में, सघन एवं गहन प्रदेशों में, वनों में, वन के दुर्गम प्रदेशों में, पर्वतों या पर्वतीय दुर्गों में तथा इसी प्रकार के अन्य प्रदेशों में, किन्तु उन शब्दों को कानों से श्रवण करने के उद्देश्य से गमन करने का संकल्प न करे ।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द श्रवण करते हैं, जैसे-गाँवों में, नगरों में, निगमों में, राजधानी में, आश्रम, पत्तन और सन्निवेशों में या अन्य इसी प्रकार के नाना रूपों में होने वाले शब्द किन्तु साधु-साध्वी उन्हें सूनने की लालसा से न जाए ।

साधु या साध्वी के कानों में कई प्रकार के शब्द पड़ते हैं, जैसे कि-आरामगारों में, उद्यानों में, वनों में, वन-खण्डों में, देवकुलों में, सभाओं में, प्याऊओं में, या अन्य इसी प्रकार के स्थानों में, किन्तु इन शब्दों को सूनने की उत्सुकता से जाने का संकल्प न करे ।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि-अटारियों में, प्राकार से सम्बद्ध अट्टालयों में, नगर के मध्य में स्थित राजमार्गों में; द्वारों में या नगर-द्वारों तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में, किन्तु इन शब्दों को सूनने के हेतु किसी भी स्थान में जाने का संकल्प न करे ।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि-तिराहों पर, चौको में, चौराहों पर, चतुर्मुख मार्गों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में, परन्तु इन शब्दों को श्रवण करने के लिए कहीं भी जाने का संकल्प न करे । साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द श्रवण करते हैं, जैसे कि- भैंसों के स्थान, वृषभशाला, घुड़साल, हस्तिशाला यावत् कपिंजल पक्षी आदि के रहने के स्थानों में होने वाले शब्दों या इसी प्रकार के अन्य शब्दों को, किन्तु उन्हें श्रवण करने हेतु कहीं जाने का मन में विचार न करे ।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि-जहाँ भैंसों के युद्ध, साँड़ों के युद्ध, अश्व युद्ध, यावत् कपिंजल-युद्ध होते हैं तथा अन्य इसी प्रकार के पशु-पक्षियों के लड़ने से या लड़ने के स्थानों में होने वाले शब्द, उनको सूनने हेतु जाने का संकल्प न करे ।

साधु या साध्वी के कानों में कई प्रकार के शब्द पड़ते हैं, जैसे कि-वर-वधू युगल आदि के मिलने के स्थानों में या वरवधू-वर्णन किया जाता है, ऐसे स्थानों में, अश्वयुगल स्थानों में, हस्तियुगल स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य कुतूहल एवं मनोरंजक स्थानों में, किन्तु ऐसे श्रव्य-गेयादि शब्द सूनने की उत्सुकता से जाने का संकल्प न करे ।

**सूत्र - ५०४**

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द-श्रवण करते हैं, जैसे कि कथा करने के स्थानों में, तोल-माप करने के स्थानों में या घुड़-दौड़, कुश्ती प्रतियोगिता आदि के स्थानों में, महोत्सव स्थलों में, या जहाँ बड़े-बड़े नृत्य, नाट्य, गीत, वाद्य, तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, वार्दित्र, ढोल बजाने आदि के आयोजन होते हैं, ऐसे स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य शब्द, मगर ऐसे शब्दों को सूनने के लिए जाने का संकल्प न करे।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सूनते हैं, जैसे कि-जहाँ कलह होते हों, शत्रु सैन्य का भय हो, राष्ट्र का भीतरी या बाहरी विप्लव हो, दो राज्यों के परस्पर विरोधी स्थान हों, वैर के स्थान हों, विरोधी राजाओं के राज्य हों, तथा इसी प्रकार के अन्य विरोधी वातावरण के शब्द, किन्तु उन शब्दों को सूनने की दृष्टि से गमन करने का संकल्प न करे।

साधु या साध्वी कई शब्दों को सूनते हैं, जैसे कि-वस्त्राभूषणों से मण्डित और अलंकृत तथा बहुत-से लोगों से घिरी हुई किसी छोटी बालिका को घोड़े आदि पर बिठाकर ले जाया जा रहा हो, अथवा किसी अपराधी व्यक्ति को वध के लिए वधस्थान में ले जाया जा रहा हो, तथा अन्य किसी ऐसे व्यक्ति की शोभायात्रा नीकाली जा रही हो, उस संयम होने वाले शब्दों को सूनने की उत्सुकता से वहाँ जाने का संकल्प न करे।

साधु या साध्वी अन्य नाना प्रकार के महास्रवस्थानों को इस प्रकार जाने, जैसे कि जहाँ बहुत-से शकट, बहुत से रथ, बहुत से म्लेच्छ, बहुत से सीमाप्रान्तीय लोग एकत्रित हुए हों, वहाँ कानों से शब्द-श्रवण के उद्देश्य से जाने का मन में संकल्प न करे।

साधु या साध्वी किन्हीं नाना प्रकार के महोत्सवों को यों जाने कि जहाँ स्त्रियाँ, पुरुष, वृद्ध, बालक और युवक आभूषणों से विभूषित होकर गीत गाते हों, बाजे बजाते हों, नाचते हों, हँसते हों, आपस में खेलते हों, रतिक्रीड़ा करते हों तथा विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों का उपभोग करते हों, परस्पर बाँटते हों या परोसते हों, त्याग करते हों, परस्पर तिरस्कार करते हों, उनके शब्दों को तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत-से महोत्सवों में होने वाले शब्दों का कान से सूनने की दृष्टि से जाने का मन में संकल्प न करे।

साधु या साध्वी इहलौकिक एवं पारलौकिक शब्दों में, श्रुत-या अश्रुत-शब्दों में, देखे हुए या बिना देखे हुए शब्दों में, इष्ट और कान्त शब्दों में न तो आसक्त हो, न गृद्ध हो, न मोहित हो और न ही मूर्च्छित या अत्यासक्त हो।

यही (शब्द-श्रवण विवेक ही) उस साधु या साध्वी का आचार-सर्वस्व है, जिसमें सभी अर्थो-प्रयोजनों सहित समित होकर सदा वह प्रयत्नशील रहे। ऐसा मैं कहता हूँ।

**अध्ययन-११ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-१२ – रूप सप्तिका-(५)****सूत्र - ५०५**

साधु या साध्वी अनेक प्रकार के रूपों को देखते हैं, जैसे-गूँथे हुए पुष्पों से निष्पन्न, वस्त्रादि से वेष्टित या निष्पन्न पुतली आदि को, जिनके अन्दर कुछ पदार्थ भरने से आकृति बन जाती हो, उन्हें, संघात से निर्मित चोलका-दिकों, काष्ठ कर्म से निर्मित, पुस्तकर्म से निर्मित, चित्रकर्म से निर्मित, विविध मणिकर्म से निर्मित, दंतकर्म से निर्मित, पत्रछेदन कर्म से निर्मित, अथवा अन्य विविध प्रकार के वेष्टनों से निष्पन्न हुए पदार्थों को तथा इसी प्रकार के अन्य नाना पदार्थों के रूपों को, किन्तु इनमें से किसी को आँखों से देखने की ईच्छा से साधु या साध्वी उस ओर जाने का मन में विचार न करे ।

इस प्रकार जैसे शब्द सम्बन्धी प्रतिमा का वर्णन किया गया है, वैसे ही यहाँ चतुर्विध आतोद्यवाद्य को छोड़कर रूपप्रतिमा के विषय में भी जानना चाहिए ।

**अध्ययन-१२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-१३ – परक्रिया सप्तिका-६****सूत्र - ५०६**

पर (गृहस्थ के द्वारा) आध्यात्मिकी मुनि के द्वारा कायव्यापार रूपी क्रिया (सांश्लेषिणी) कर्मबन्धन जननी है, (अतः) मुनि उसे मन से भी न चाहे, न उसके लिए वचन से कहे, न ही काया से उसे कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ धर्म-श्रद्धावश मुनि के चरणों को वस्त्रादि से थोड़ा-सा पोंछे अथवा बार-बार पोंछ कर, साधु उस परक्रिया को मन से न चाहे तथा वचन और काया से भी न कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ मुनि के चरणों को सम्मर्दन करे या दबाए तथा बार-बार मर्दन करे या दबाए, यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों को फूँक मारने हेतु स्पर्श करे, तथा रंगे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए ।

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों को तेल, घी या चर्बी से चुपड़े, मसले तथा मालिश करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न वचन व काया से उसे कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के चरणों को लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण से उबटन करे अथवा उपलेप करे तो साधु मन से भी उसमें रस न ले, न वचन एवं काया से उसे कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के चरणों को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से प्रक्षालन करे अथवा अच्छी तरह से धोए तो मुनि उसे मन से न चाहे, न वचन और काया से कराए । यदि कोई गृहस्थ साधु के पैरों का इसी प्रकार के किन्हीं विलेपन द्रव्यों से एक बार या बार-बार आलेपन-विलेपन करे तो साधु उसमें मन से भी रुचि न ले, न ही वचन और शरीर से उसे कराए ।

यदि कोई गृहस्थ साधु के पैरों में लगे हुए खूँटे या काँटे आदि को नीकाले या उसे शुद्ध करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए ।

यदि कोई गृहस्थ साधु के पैरों में लगे रक्त और मवाद को नीकाले या उसे नीकाल कर शुद्ध करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए ।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को एक या बार-बार पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न वचन और काया से कराए ।

मुनि के शरीर को दबाए तथा मर्दन करे, तो साधु उसे मन से भी न चाहे न वचन और काया से कराए ।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर तेल, घी आदि चुपड़े, मसले या मालिश करे तो साधु न तो उसे मन से ही चाहे, न वचन और काया से कराए ।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण का उबटन करे, लेपन करे तो साधु न तो उसे मन से ही चाहे और न वचन और काया से कराए ।

साधु के शरीर को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से प्रक्षालन करे या अच्छी तरह धोए तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न वचन और काया से कराए ।

साधु के शरीर पर किसी प्रकार के विशिष्ट विलेपन का एक बार लेप करे या बार-बार लेप करे तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न उसे वचन और काया से कराए ।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को किसी प्रकार के धूप से धूपित करे या प्रधूपित करे तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न वचन और काया से कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को एक बार पोंछे या बार-बार अच्छी तरह से पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से न चाहे न वचन और काया से उसे कराए । कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को दबाए या अच्छी तरह मर्दन करे तो साधु उसे मन से न चाहे न वचन और काया से कराए ।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए व्रण के ऊपर तेल, घी या वसा चुपड़े मसले, लगाए या मर्दन करे

तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न कराए। साधु के शरीर पर हुए व्रण के ऊपर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण आदि विलेपन द्रव्यों का आलेपन-विलेपन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को प्रासुक शीतल या उष्ण जल से धोए तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी प्रकार के शस्त्र से छेदन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न ही उसे वचन और काया से कराए।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा या विशेष रूप से छेदन करके, उसमें से मवाद या रक्त नीकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से न चाहे न ही वचन एवं काया से कराए। कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को एक बार या बार-बार पपोल कर साफ करे तो साधु उसे मन से न चाहे, न ही वचन और शरीर से कराए।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को दबाए या परिमर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न ही वचन और काया से कराए।

यदि कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर पर तेल, घी, वसा चुपड़े, मले या मालीश करे तो साधु उसे मन से न चाहे, न ही वचन और काया से कराए। यदि कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण का थोड़ा या अधिक विलेपन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न ही वचन और काया से कराए।

यदि कोई गृहस्थ, मुनि के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को प्रासुक शीतल और उष्ण जल से थोड़ा या बहुत बार धोए तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न ही वचन और काया से कराए।

यदि कोई गृहस्थ, मुनि के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा छेदन करे या विशेष छेदन करे, मवाद या रक्त नीकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न ही वचन और काया से कराए।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के शरीर से पसीना, या मैल से युक्त पसीने को मिटाए या साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, और न ही वचन एवं काया से कराए।

यदि कोई साधु के आँख का, कान का, दाँत का, या नख का मैल नीकाले या उसे साफ करे, तो साधु उसे मन से न चाहे, न ही वचन और काया से कराए।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के सिर के लंबे केशों, लंबे रोमों, भौहों एवं कांख के लंबे रोमों, गुह्य रोमों को काटे अथवा संवारे, तो साधु उसे मन से न चाहे, न ही वचन और काया से कराए। यदि कोई गृहस्थ, साधु के सिर से जूँ या लीख नीकाले या सिर साफ करे, तो साधु मन से न चाहे न ही वचन और काया से ऐसा कराए।

यदि कोई गृहस्थ, साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवा कर उसके चरणों को वस्त्रादि से एक बार या बार-बार भलीभाँति पोंछकर साफ करे; साधु इसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए। इसके बाद चरणों से सम्बन्धित नीचे के पूर्वोक्त ९ सूत्रों में जो पाठ कहा गया है, वह सब पाठ यहाँ भी कहना चाहिए।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवा कर उसको हार, अर्द्ध-हार, वक्षस्थल पर पहनने योग्य आभूषण, गले का आभूषण, मुकूट, लम्बी माला, सुवर्णसूत्र बाँधे या पहनाए तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न वचन और काया से उससे ऐसा कराए। यदि कोई गृहस्थ साधु को आराम या उद्यान में ले जाकर उसके चरणों को एक बार पोंछे, बार-बार अच्छी तरह पोंछे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, और न वचन व काया से कराए।

इसी प्रकार साधुओं की अन्योन्यक्रिया-पारस्परिक क्रिया के विषयमें भी ये सब सूत्र पाठ समझ लेने चाहिए।

**सूत्र - ५०७**

यदि कोई शुद्ध वाग्बल से अथवा अशुद्ध मंत्रबल से साधु की व्याधि उपशान्त करना चाहे, अथवा किसी रोगी साधु की चिकित्सा सचित्त कंद, मूल, छाल या हरी को खोदकर या खींचकर बाहर नीकाल कर या नीकलवा कर चिकित्सा करना चाहे, तो साधु उसे मन से पसंद न करे, न ही वचन से या काया से कराए ।

यदि साधु के शरीर में कठोर वेदना हो तो समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व अपने किये हुए अशुभ कर्मों के अनुसार कटुक वेदना का अनुभव करते हैं । यही उस साधु या साध्वी का समग्र आचार सर्वस्व है, जिसके लिए समस्त इहलौकिक-पारलौकिक प्रयोजनों से युक्त तथा ज्ञानादि-सहित एवं समितियों से समन्वित होकर सदा प्रयत्नशील रहे और इसी को अपने लिए श्रेयस्कर समझे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-१३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण****अध्ययन-१४ – अन्योन्यक्रिया-सप्तिका-९****सूत्र - ५०८**

साधु या साध्वी की अन्योन्यक्रिया जो कि परस्पर में सम्बन्धित है, कर्मसंश्लेषजननी है, इसलिए साधु या साध्वी इसको मन से न चाहे न वचन एवं काया से करने के लिए प्रेरित करे । साधु या साध्वी परस्पर एक दूसरे के चरणों को पोंछकर एक बार या बार-बार अच्छी तरह साफ करे तो मन से भी इसे न चाहे, न वचन और काया से करने की प्रेरणा करे । इस अध्ययन का शेष वर्णन तेरहवें अध्ययन के समान जानना चाहिए ।

यही उस साधु या साध्वी का समग्र आचार है; जिसके लिए वह समस्त प्रयोजनों, यावत् उसके पालन में प्रयत्नशील रहे । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-१४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण****चूलिका-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

## [चूलिका-३]

## अध्ययन-१५ – भावना

## सूत्र - ५०९

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए । भगवान का उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में देवलोक से च्यवन हुआ, च्यवकर वे गर्भ में उत्पन्न हुए । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ से गर्भान्तर में संहरण किये गए । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में भगवान का जन्म हुआ । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही मुण्डित होकर आगार त्यागकर अनगार-धर्म में प्रव्रजित हुए । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में भगवान को सम्पूर्ण-प्रतिपूर्ण, निर्व्याघात, निरावरण, अनन्त और अनुत्तर प्रवर केवलज्ञान केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ । स्वाति नक्षत्र में भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

## सूत्र - ५१०

श्रमण भगवान महावीर ने इस अवसर्पिणी काल के सुषम-सुषम नामक आरक, सुषम आरक और सुषम-दुषम आरक के व्यतीत होने पर तथा दुषम-सुषम नामक आरक के अधिकांश व्यतीत हो जाने पर और जब केवल ७५ वर्ष साढ़े आठ माह शेष रह गए थे, तब ग्रीष्म ऋतु के चौथे मास, आठवे पक्ष, आषाढ़ शुक्ला षष्ठी की रात्रि को; उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर महाविजयसिद्धार्थ पुष्पोत्तरवर पुण्डरीक, दिक्स्वस्तिक वर्द्धमान महाविमान से बीस सागरोपम की आयु पूर्ण करके देवायु, देवभव और देवस्थिति को समाप्त करके वहाँ से च्यवन किया । च्यवन करके इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष के दक्षिणाब्द्ध, भारत के दक्षिण-ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश में कुडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधर गोत्रीया देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी की कुक्षि में सिंह की तरह गर्भ में अवतरित हुए ।

श्रमण भगवान महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे । वे यह जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्यवकर मनुष्यलोक में जाऊंगा । मैं वहाँ से च्यवकर गर्भ में आया हूँ, परन्तु वे च्यवन समय को नहीं जानते थे, क्योंकि वह काल अत्यन्त सूक्ष्म होता है ।

देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आने के बाद श्रमण भगवान महावीर के हीत और अनुकम्पा से प्रेरित होकर 'यह जीत आचार है', यह कहकर वर्षाकाल के तीसरे मास, पंचम पक्ष अर्थात्-आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, ८२ वी रात्रिदिन के व्यतीत होने पर और ८२ वे दिन की रात को दक्षिण ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश से उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश में ज्ञातवंशीय क्षत्रियों में प्रसिद्ध काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ठगोत्रीय पत्नी त्रिशला के अशुभ पुद्गलों को हटाकर उनके स्थान पर शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षि में गर्भ को स्थापित किया और त्रिशला का गर्भ लेकर दक्षिणब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश में कुडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधरगोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रखा ।

आयुष्मन् श्रमणों! श्रमण भगवान महावीर गर्भावासमें तीन ज्ञानसे युक्त थे। मैं इस स्थान से संहरण किया जाऊंगा, यह वे जानते थे, मैं संहृत किया जा चूका हूँ, यह भी जानते थे, यह भी जानते थे कि मेरा संहरण हो रहा है ।

उस काल और उस समय में त्रिशला क्षत्रियाणी ने अन्यदा किसी समय नौ मास साढ़े सात अहोरात्र प्रायः पूर्ण व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष में अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर सुखपूर्वक (श्रमण भगवान महावीर को) जन्म दिया । जिस रात्रि को त्रिशला क्षत्रियाणीने सुखपूर्वक जन्म दिया, उसी रात्रि में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों के स्वर्ग से आने और मेरुपर्वत पर जाने-यों ऊपर-नीचे आवागमन से एक महान् दिव्य देवोद्योत हो गया, देवों के एकत्र होने से लोकमें एक हलचल मच गई, देवों के परस्पर हास परिहास के कारण सर्वत्र कलकल नाद व्याप्त हो गया ।

जिस रात्रि त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्वस्थ श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों ने एक बड़ी भारी अमृतवर्षा, सुगन्धित पदार्थों की वृष्टि और सुवासित चूर्ण, पुष्प, चाँदी और सोने की वृष्टि की ।

जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्यसम्पन्न श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों ने श्रमण भगवान महावीर का कौतुक मंगल, शुचिकर्म तथा तीर्थकराभिषेक किया ।

जब से श्रमण भगवान महावीर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में आए, तभी से उस कुल में प्रचुर मात्रा में चाँदी, सोना, धन, धान्य, माणिक्य, मोती, शंख, शिला और प्रवाल (मूँगा) आदि की अत्यंत अभिवृद्धि होने लगी ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के माता-पिता ने भगवान महावीर के जन्म के दस दिन व्यतीत हो जाने के बाद ग्यारहवे दिन अशुचि निवारण करके शुचीभूत होकर, प्रचुर मात्रा में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थ बनवाए उन्होंने अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धी-वर्ग को आमंत्रित किया । उन्होंने बहुत-से शाक्य आदि श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, भिक्षाचरों, भिक्षाभोजी, शरीर पर भस्म रमाकर भिक्षा माँगने वालों आदि को भी भोजन कराया, उनके लिए भोजन सुरक्षित रखाया, कई लोगों को भोजन दिया, याचकों में दान बाँटा । अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धीजन आदि को भोजन कराया । पश्चात् उनके समक्ष नामकरण के सम्बन्ध में कहा-जिस दिन से यह बालक त्रिशलादेवी की कुक्षि में गर्भ रूप में आया, उसी दिन से हमारे कुल में प्रचुर मात्रा में चाँदी, सोना, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंख, शिला, प्रवाल आदि पदार्थों की अतीव अभिवृद्धि हो रही है । अतः इस कुमार का गुण-सम्पन्न नाम 'वर्द्धमान' हो ।

जन्म के बाद श्रमण भगवान महावीर का लालन-पालन पाँच धाय माताओं द्वारा होने लगा । जैसे कि-क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मंडनधात्री, क्रीडाधात्री, और अंकधात्री । वे इस प्रकार एक गोद से दूसरी गोद में संहत होते हुए एवं मणिमण्डित रमणीय आँगन में (खेलते हुए) पर्वतीय गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष की तरह कुमार वर्द्धमान क्रमशः सुखपूर्वक बढ़ने लगे ।

भगवान महावीर बाल्यावस्था को पार कर युवावस्था में प्रविष्ट हुए । उनका परिणय सम्पन्न हुआ और वे मनुष्य सम्बन्धी उदार शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से युक्त पाँच प्रकार के कामभोगों का उदासीनभाव से उपभोग करते हुए त्यागभाव पूर्वक विचरण करने लगे ।

### सूत्र - ५११

श्रमण भगवान महावीर के पिता काश्यप गोत्र के थे । उनके तीन नाम कहे जाते हैं, सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी । श्रमण भगवान महावीर की माता वाशिष्ठ गोत्रीया थीं । उनके तीन नाम कहे जाते हैं-त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी । चाचा 'सुपार्श्व' थे, जो काश्यप गोत्र के थे । ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्द्धन थे, जो काश्यप गोत्रीय थे । बड़ी बहन सुदर्शना थी, जो काश्यप गोत्र की थी । पत्नी 'यशोदा' थी, जो कौण्डिन्य गोत्र की थी । पुत्री काश्यप गोत्र की थी उसके दो नाम इस प्रकार कहे जाते हैं, जैसे कि-१. अनोज्जा, (अनवद्या) और २. प्रियदर्शना ।

श्रमण भगवंत महावीर की दौहित्री कौशिक गोत्र की थी । उसके दो नाम इस प्रकार कहे जाते हैं, जैसे कि-१. शेषवती तथा २. यशस्वती ।

### सूत्र - ५१२

श्रमण भगवान महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ भगवान के अनुयायी थे, दोनों श्रावक-धर्म का पालन करने वाले थे । उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावक-धर्म का पालन करके षड्जीवनिकाय के संरक्षण के निमित्त आलोचना, आत्मनिन्दा, आत्मगर्हा एवं पाप दोषों का प्रतिक्रमण करके, मूल और उत्तर गुणों के यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करके, कुश के संस्तारक पर आरूढ़ होकर भक्तप्रत्याख्यान नामक अनशन स्वीकार किया । आहार-पानी का प्रत्याख्यान करके अन्तिम मारणान्तिक संलेखना से शरीर को सूखा दिया । फिर कालधर्म का अवसर आने पर आयुष्य पूर्ण करके उस शरीर को छोड़कर अच्युतकल्प नामक देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए । तदनन्तर देव सम्बन्धी आयु, भव, (जन्म) और स्थिति का क्षय होने पर वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में चरम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत्त होंगे और वे सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

**सूत्र - ५१३**

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर, जो कि ज्ञातपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो चूके थे, ज्ञात कुल से विनिवृत्त थे, देहासक्ति रहित थे, विदेहजनों द्वारा अर्चनीय थे, विदेहदत्ता के पुत्र थे, सुकुमार थे । भगवान महावीर तीस वर्ष तक विदेह रूप में गृह में निवास करके माता-पिता के आयुष्य पूर्ण करके देवलोक को प्राप्त हो जाने पर अपनी ली हुई प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने से, हिरण्य, स्वर्ण, सेना, वाहन, धन, धान्य, रत्न, आदि सारभूत, सत्वयुक्त, पदार्थों का त्याग करके याचकों को यथेष्ट दान देकर, अपने द्वारा दानशाला पर नियुक्त जनों के समक्ष सारा धन खुला करके, उसे दान रूप में देने का विचार प्रकट करके, अपने सम्बन्धी जनों में सम्पूर्ण पदार्थों का यथायोग्य विभाजन करके, संवत्सर दान देकर हेमन्तऋतु के प्रथम मास एवं प्रथम मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में, दशमी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान ने अभिनिष्क्रमण करने का अभिप्राय किया।

**सूत्र - ५१४**

श्री जिनवरेन्द्र तीर्थकर भगवान का अभिनिष्क्रमण एक वर्ष पूर्ण होते ही होगा, अतः वे दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले सांवत्सरिक-वर्षी दान प्रारम्भ कर देते हैं । प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर दिन चढ़ने तक उनके द्वारा अर्थ का दान होता है ।

**सूत्र - ५१५, ५१६**

प्रतिदिन सूर्योदय से एक प्रहर पर्यन्त, जब तक वे प्रातराश नहीं कर लेते, तब तक, एक करोड़ आठ लाख से अन्यून स्वर्णमुद्राओं का दान दिया जाता है ।

इस प्रकार वर्ष में कुल तीन अरब, ८८ करोड़, ८० लाख स्वर्णमुद्राओं का दान भगवान ने दिया ।

**सूत्र - ५१७**

कुण्डलधारी वैश्रमणदेव और महान् ऋद्धिसम्पन्न लोकान्तिक देव पंद्रह कर्मभूमियों में (होने वाले) तीर्थकर भगवान को प्रतिबोधित करते हैं ।

**सूत्र - ५१८**

ब्रह्म (लोक) कल्प में आठ कृष्णराजियों के मध्य आठ प्रकार के लोकान्तिक विमान असंख्यात विस्तार वाले समझने चाहिए ।

**सूत्र - ५१९**

ये सब देव निकाय (आकर) भगवान वीर-जिनेश्वर को बोधित (विज्ञप्त) करते हैं-हे अर्हन् देव ! सर्व जगत के लिए हितकर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन करें ।

**सूत्र - ५२०**

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर के अभिनिष्क्रमण के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव एवं देवियाँ अपने-अपने रूप से, अपने-अपने वस्त्रों में और अपने-अपने चिह्नों से युक्त होकर तथा अपनी-अपनी समस्त ऋद्धि, द्युति और समस्त बल-समुदाय सहित अपने-अपने यान-विमानों पर चढ़ते हैं फिर सब अपने यान में बैठकर जो भी बादर पुद्गल हैं, उन्हें पृथक् करते हैं । बादर पुद्गलों को पृथक् करके सूक्ष्म पुद्गलों को चारों ओर से ग्रहण करके वे ऊंचे उड़ते हैं । अपनी उस उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरित और दिव्य देव गति से नीचे ऊतरते क्रमशः तिर्यक्लोक में स्थित असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लौघते हुए जहाँ जम्बूद्वीप है, वहाँ आते हैं । जहाँ उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश है, उसके निकट आ जाते हैं । उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश के ईशानकोण दिशा भाग में शीघ्रता से उतर जाते हैं ।

देवों के इन्द्र देवराज शक्र ने शनैः शनैः अपने यान को वहाँ ठहराया । फिर वह धीरे धीरे विमान से ऊतरा । विमान से उतरते ही देवेन्द्र सीधा एक ओर एकान्त में चला गया । उसने एक महान् वैक्रिय समुद्घात करके इन्द्र ने अनेक मणि-स्वर्ण-रत्न आदि से जटित-चित्रित, शुभ, सुन्दर, मनोहर कमनीय रूप वाले एक बहुत बड़े देवच्छंदक का

विक्रिया द्वारा निर्माण किया। उस देवच्छन्दक के ठीक मध्य-भाग में पादपीठ सहित एक विशाल सिंहासन की विक्रिया की, जो नाना मणि-स्वर्ण-रत्न आदि की रचना से चित्र-विचित्र, शुभ, सुन्दर और रम्य रूप वाला था। फिर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वह वहाँ आया। उसने भगवान की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर को लेकर वह देवच्छन्दक के पास आया। तत्पश्चात् भगवान को धीरे-धीरे देवच्छन्दक में स्थित सिंहासन पर बिठाया और उनका मुख पूर्व दिशा की ओर रखा।

यह सब करने के बाद इन्द्र ने भगवान के शरीर पर शतपाक, सहस्रपाक तेलों से मालिश की, तत्पश्चात् सुगन्धित काषाय द्रव्यों से उनके शरीर पर उबटन किया फिर शुद्ध स्वच्छ जल से भगवान को स्नान कराया। बाद उनके शरीर पर एक लाख के मूल्य वाले तीन पट को लपेट कर साधे हुए सरस गोशीर्ष रक्त चन्दन का लेपन किया। फिर भगवान को, नाक से नीकलने वाली जरा-सी श्वास-वायु से उड़ने वाला, श्रेष्ठ नगर के व्यावसायिक पत्तन में बना हुआ, कुशल मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, अश्व के मुँह की लार के समान सफेद और मनोहर चतुर शिल्पाचार्यों द्वारा सोने के तार से विभूषित और हंस के समान श्वेत वस्त्रयुगल पहनाया। तदनन्तर उन्हें हार, अर्द्धहार, वक्षस्थल का सुन्दर आभूषण, एकावली, लटकती हुई मालाएं, कटिसूत्र, मुकुट और रत्नों की मालाएं पहनाईं। ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम और संघातिम-पुष्पमालाओं से कल्पवृक्ष की तरह सुसज्जित किया।

उसके बाद इन्द्र ने दुबारा पुनः वैक्रियसमुद्घात किया और उससे तत्काल चन्द्रप्रभा नाम की एक विराट सहस्रवाहिनी शिबिका का निर्माण किया। वह शिबिका ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षिगण, बन्दर, हाथी, रुरु, सरभ, चमरी गाय, शार्दूलसिंह आदि जीवों तथा वनलताओं से चित्रित थी। उस पर अनेक विद्याधरों के जोड़े यंत्रयोग से अंकित थे। वह शिबिक सहस्र किरणों से सुशोभित सूर्य-ज्योति के समान देदीप्यमान थी, उसका चम-चमाता हुआ रूप भलीभाँति वर्णनीय था, सहस्र रूपों में भी उसका आकलन नहीं किया जा सकता था, उसका तेज नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाला था। उसमें मोती और मुक्ताजाल पिरोये हुए थे। सोने के बने हुए श्रेष्ठ कन्दु-काकार आभूषण से युक्त लटकती हुई मोतियों की माला उस पर शोभायमान हो रही थी। हार, अर्द्धहार आदि आभूषणों से सुशोभित थी, दर्शनीय थी, उस पर पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता आदि तथा अन्य अनेक वनमालाएं चित्रित थीं। शुभ, मनोहर, कमनीय रूप वाली पंचरंगी अनेक मणियों, घण्टा एवं पताकाओं से उसका अग्रशिखर परिमण्डित था। वह अपने आप में शुभ, सुन्दर और अभिरूप, प्रासादीय, दर्शनीय और अति सुन्दर थी।

### सूत्र - ५२१

जरा-मरण से विमुक्त जिनवर महावीर के लिए शिबिका लाई गई, जो जल और स्थल पर उत्पन्न होने वाले दिव्यपुष्पों और देव निर्मित पुष्पमालाओं से युक्त थी।

### सूत्र - ५२२

उस शिबिका के मध्य में दिव्य तथा जिनवर के लिए श्रेष्ठ रत्नों की रूपराशि से चर्चित तथा पादपीठ से युक्त महामूल्यवान् सिंहासन बनाया गया था।

### सूत्र - ५२३

उस समय भगवान महावीर श्रेष्ठ आभूषण धारण किये हुए थे, यथास्थान दिव्य माला और मुकुट पहने हुए थे, उन्हें क्षौम वस्त्र पहनाए थे, जिसका मूल्य एक लक्ष स्वर्णमुद्रा था। इन सबसे भगवान का शरीर देदीप्यमान हो रहा था।

### सूत्र - ५२४

उस समय प्रशस्त अध्यवसाय से, षष्ठ भक्त प्रत्याख्यान की तपश्चर्या से युक्त शुभ लेश्याओं से विशुद्ध भगवान उत्तम शिबिका में बिराजमान हुए।

### सूत्र - ५२५

जब भगवान शिबिका में स्थापित सिंहासन पर बिराजमान हो गए, तब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र उसके दोनों ओर खड़े होकर मणि-रत्नादि से चित्र-विचित्र हत्थे-डंडे वाले चामर भगवान पर ढुलाने लगे।

**सूत्र - ५२६**

पहले उन मनुष्यों ने उल्लासवश वह शिबिका उठाई, जिनके रोमकूप हर्ष से विकसित हो रहे थे। तत्पश्चात् सूर, असुर, गरुड़ और नागेन्द्र आदि देव उसे उठाकर ले चले।

**सूत्र - ५२७**

उस शिबिका को पूर्वदिशा की ओर से सूर (वैमानिक देव) उठाकर ले चलते हैं, जबकि असुर दक्षिण दिशा की ओर से, गरुड़ देव पश्चिम दिशा की ओर से और नागकुमार देव उत्तर दिशा की ओर से उठाकर ले चलते हैं।

**सूत्र - ५२८**

उस समय देवों के आगमन से आकाशमण्डल वैसा ही सुशोभित हो रहा था, जैसे खिले हुए पुष्पों से वनखण्ड, या शरत्काल में कमलों के समूह से पद्म सरोवर।

**सूत्र - ५२९**

उस समय देवों के आगमन से गगनतल भी वैसा ही सुहावना लग रहा था, जैसे सरसों, कचनार या कनेर या चम्पकवन फूलों के झुण्ड से सुहावना प्रतीत होता है।

**सूत्र - ५३०**

उस समय उत्तम ढोल, भेरी, झांझ, शंख आदि लाखों वाद्यों का स्वर-निनाद गगनतल और भूतल पर परम-रमणीय प्रतीत हो रहा था।

**सूत्र - ५३१**

वहीं पर देवगण बहुत से-शताधिक नृत्यों और नाट्यों के साथ अनेक तरह के तत, वितत, घन और शुषिर, यों चार प्रकार के बाजे बजा रहे थे।

**सूत्र - ५३२**

उस काल और उस समय में, जबकि हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मास का कृष्णपक्ष की दशमी तिथि के सुव्रत के विजय मुहूर्त्त में, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, पूर्व गामिनी छाया होने पर, द्वीतिय पौरुषी प्रहर के बीतने पर, निर्जल षष्ठभक्त-प्रत्याख्यान के साथ एकमात्र (देवदूष्य) वस्त्र को लेकर भगवान महावीर चन्द्रप्रभा नाम की सहस्रवाहिनी शिबिका में बिराजमान हुए थे; जो देवों, मनुष्यों और असुरों की परीषद् द्वारा ले जाई जा रही थी। अतः उक्त परीषद् के साथ वे क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश के बीचोंबीच-मध्यभाग में से होते हुए जहाँ ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, उसके निकट पहुँचे। देव छोटे से हाथ-प्रमाण ऊँचे भूभाग पर धीरे-धीरे उस सहस्रवाहिनी चन्द्रप्रभा शिबिका को रख देते हैं। तब भगवान उसमें से शनैः शनैः नीचे उतरते हैं; और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर अलंकारों को उतारते हैं। तत्काल ही वैश्रमणदेव घुटने टेककर श्रमण भगवान महावीर के चरणों में झुकता है और भक्तिपूर्वक उनके उन आभरणालंकारों को हंसलक्षण सदृश श्वेत वस्त्र में ग्रहण करता है।

पश्चात् भगवान ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बाएं हाथ से बाईं ओर के केशों का पंचमुष्टिक लोच किया। देवराज देवेन्द्र शक्र श्रमण भगवान महावीर के समक्ष घुटने टेक कर चरणोंमें झुकता है और उन केशों को हीरे के थाल में ग्रहण करता है। भगवान ! आपकी अनुमति है, यों कहकर उन केशों को क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर देता है

इधर भगवान दाहिने हाथ से दाहिनी और बाएं हाथ से बाईं ओर के केशों का पंचमुष्टिक लोच पूर्ण करके सिद्धों को नमस्कार करते हैं; और आज से मेरे लिए सभी पापकर्म अकरणीय है; यों उच्चारण करके सामायिक चारित्र अंगीकार करते हैं। उस समय देवों और मनुष्यों-दोनों की परीषद् चित्रलिखित-सी निश्चेष्ट-स्थिर हो गई थी।

**सूत्र - ५३३**

जिस समय भगवान चारित्र ग्रहण कर रहे थे, उस समय शक्रेन्द्र के आदेश से शीघ्र ही देवों के दिव्य स्वर, वाद्य के निनाद और मनुष्यों के शब्द स्थगित कर दिये।

**सूत्र - ५३४**

भगवान चारित्र अंगीकार करके अहर्निश समस्त प्राणियों और भूतों के हित में संलग्न हो गए। सभी देवों ने यह सूना तो हर्ष से पुलकित हो उठे।

**सूत्र - ५३५**

श्रमण भगवान महावीर को क्षायोपशमिक सामायिकचारित्र ग्रहण करते ही मनःपर्यवज्ञान समुत्पन्न हुआ; वे अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में स्थित पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय, व्यक्त मन वाले जीवों के मनोगत भावों को स्पष्ट जानने लगे। उधर श्रमण भगवान महावीर ने प्रव्रजित होते ही अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन-सम्बन्धी वर्ग को प्रतिवि-सर्जित करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया कि, "मैं आज से बारह वर्ष तक अपने शरीर का व्युत्सर्ग करता हूँ। इस अवधि में दैविक, मानुषिक या तिर्यच सम्बन्धी जो कोई भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सब समुत्पन्न उपसर्गों को मैं सम्यक् प्रकार से या समभाव से सहूँगा, क्षमाभाव रखूँगा, शान्ति से झेलूँगा।" इस प्रकार का अभिग्रह धारण करने के पश्चात् काया का व्युत्सर्ग एवं काया के प्रति ममत्व का त्याग किये हुए श्रमण भगवान महावीर दिन का मुहूर्त्त शेष रहते कर्मार ग्राम पहुँच गए।

उसके पश्चात् काया का व्युत्सर्ग एवं देहाध्यास का त्याग किये हुए श्रमण भगवान महावीर अनुत्तर वसति के सेवन से, अनुपम विहार से, एवं अनुत्तर संयम, उपकरण, संवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, संतुष्टि, समिति, गुप्ति, कायोत्सर्गादि स्थान, तथा अनुपम क्रियानुष्ठान से एवं सुचरित के फलस्वरूप निर्वाण और मुक्ति मार्ग के सेवन से युक्त होकर आत्मा को प्रभावित करते हुए विहार करने लगे।

इस प्रकार विहार करते हुए त्यागी श्रमण भगवान महावीर को दिव्य, मानवीय और तिर्यचसम्बन्धी जो कोई उपसर्ग प्राप्त होते, वे उन सब उपसर्गों के आने पर उन्हें अकलुषित, अव्यथित, अदीनमना एवं मन-वचन-काया की त्रिविध प्रकार की गुप्तियों से गुप्त होकर सम्यक् प्रकार के समभावपूर्वक सहन करते, उपसर्गदाताओं को क्षमा करते, सहिष्णुभाव धारण करते तथा शान्ति और धैर्य से झेलते थे।

श्रमण भगवान महावीर को इस प्रकार से विचरण करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए, तेरहवें वर्ष के मध्य में ग्रीष्म ऋतु में दूसरे मास और चौथे पक्ष से अर्थात् वैशाख सुदी में, दशमी के दिन, सुव्रत नामक दिवस में विजय मुहूर्त्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर, पूर्वगामिनी छाया होने पर दिन के दूसरे प्रहर में जम्भकग्राम नगर के बाहर ऋजुबालिका नदी के उत्तर तट पर श्यामाकगृहपति के काष्ठकरण क्षेत्र में वैयावृत्यचैत्य के ईशानकोण में शालवृक्ष से न अति दूर, न अति निकट, उत्कटुक होकर गोदोहासन से सूर्य की आतापना लेते हुए, निर्जल षष्ठभक्त से युक्त, ऊपर घुटने और नीचा सिर करके धर्मध्यानयुक्त, ध्यानकोष्ठ में प्रविष्ट हुए जब शुक्ल-ध्यानान्तरिका में प्रवर्तमान थे, तभी उन्हें अज्ञान दुःख से निवृत्ति दिलाने वाले, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण अव्याहत निरावरण अनन्त अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

वे अब भगवान अर्हत्, जिन, ज्ञायक, केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी हो गए। अब वे देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समस्त लोक के पर्यायों को जानने लगे। जैसे कि जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, उनके भुक्त और पीत सभी पदार्थों को तथा उनके द्वारा कृत प्रतिसेवित, प्रकट एवं गुप्त सभी कर्मों को तथा उनके द्वारा बोले हुए, कहे हुए तथा मन के भावों को जानते, देखते थे। वे सम्पूर्ण लोक में स्थित सब जीवों के समस्त भावों को तथा समस्त परमाणु पुद्गलों को जानते-देखते हुए विचरण करने लगे। जिस दिन श्रमण भगवान महावीर को अज्ञान-दुःख-निवृत्तिदायक सम्पूर्ण यावत् अनुत्तर केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, उस दिन भवन-पति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं विमानवासी देव और देवियों के आने-जाने से एक महान दिव्य देवोद्योत हुआ, देवों का मेला-सा लग गया, देवों का कल-कल नाद होने लगा, वहाँ का सारा आकाशमंडल हलचल से व्याप्त हो गया।

तदनन्तर अनुत्तर ज्ञान-दर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर ने केवलज्ञान द्वारा अपनी आत्मा और लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर पहले देवों को, तत्पश्चात् मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया। तत्पश्चात् केवलज्ञान-केवलदर्शन

के धारक श्रमण भगवान महावीर ने गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को भावना सहित पंच-महाव्रतों और षड् जीवनिकायों के स्वरूप का व्याख्यान किया। सामान्य-विशेष रूप से प्ररूपण किया।

### सूत्र - ५३६

भन्ते ! मैं प्रथम महाव्रत में सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान-करता हूँ। मैं सूक्ष्म-स्थूल और त्रस-स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा और न प्राणातिपात करने वालों का अनुमोदन-करूँगा; मैं यावज्जीवन तीन करण से एवं मन-वचन-काया से इस पाप से निवृत्त होता हूँ। हे भगवन् ! मैं उस पूर्वकृत पाप (हिंसा) का प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ और गहाँ करता हूँ, अपनी आत्मा से पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ।

उस प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएं होती हैं-पहली भावना यह है-निर्ग्रन्थ-ईर्यासमिति से युक्त होता है, ईर्यासमिति से रहित नहीं। केवली भगवान कहते हैं-ईर्यासमिति से रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करता है, धूल आदि से ढकता है, दबा देता है, परिताप देता है, चिपका देता है, या पीड़ित करता है। इसलिए निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त होकर रहे, ईर्यासमिति से रहित होकर नहीं।

दूसरी भावना यह है-मन को जो अच्छी तरह जानकर पापों से हटाता है, जो मन पापकर्ता, सावद्य है, क्रियाओं से युक्त है, आस्रवकारक है, छेदन-भेदनकारी है, क्लेश-द्वेषकारी है, परितापकारक है, प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला और जीवों का उपघातक है, इस प्रकार के मन को धारण न करे। मन को जो भलीभाँति जानकर पापमय विचारों से दूर रखता है वही निर्ग्रन्थ है। जिसका मन पापों से रहित है।

तृतीय भावना यह है-जो साधक वचन का स्वरूप भलीभाँति जानकर सदोष वचनों का परित्याग करता है, वह निर्ग्रन्थ है। जो वचन पापकारी, सावद्य, क्रियाओं से युक्त, यावत् जीवों का उपघातक है; साधु इस प्रकार के वचन का उच्चारण न करे। जो वाणी के दोषों को भलीभाँति जानकर सदोष वाणी का परित्याग करता है, वही निर्ग्रन्थ है। उसकी वाणी पापदोष रहित हो।

चौथी भावना यह है-जो आदानभाण्डमात्रनिक्षेपण-समिति से युक्त है, वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ आदानभाण्डनिक्षेपणसमिति से रहित है, वह प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का अभिघात करता है, यावत् पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए जो आदानभाण्ड (मात्र) निक्षेपणासमिति से युक्त है, वही निर्ग्रन्थ है, जो आदानभाण्ड निक्षेपणासमिति से रहित है, वह नहीं।

पाँचवी भावना यह है-जो साधक आलोकित पान-भोजन-भोजी होता है, वह निर्ग्रन्थ होता है। अनालो-कितपानभोजन-भोजी नहीं। केवली भगवान कहते हैं-जो बिना देखे-भाले ही आहार-पानी सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को हनन करता है यावत् उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। अतः जो देखभाल कर आहार-पानी का सेवन करता है, वही निर्ग्रन्थ है, बिना देखे-भाले आहार-पानी करने वाला नहीं।

इस प्रकार पंचभावनाओं से विशिष्ट तथा प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम महाव्रत का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श करने पर, पालन करने पर गृहीत महाव्रत को पार लगाने पर, कीर्तन करने पर उसमें अवस्थित रहने पर, भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है। हे भगवन् ! यह प्राणातिपातविरमण रूप प्रथम महाव्रत है।

### सूत्र - ५३७

इसके पश्चात् भगवन् ! मैं द्वीतीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ। आज मैं इस प्रकार से मृषावाद और सदोष-वचन का सर्वथा प्रत्याख्यान करता हूँ। साधु क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से न तो स्वयं मृषा बोले, न ही अन्य व्यक्ति से असत्य भाषण करो और जो व्यक्ति असत्य बोलता है, उसका अनुमोदन भी न करे। इस प्रकार तीन करणों से तथा मन-वचन-काया से मृषावाद का सर्वथा त्याग करे। इस प्रकार मृषावादविरमण रूप द्वीतीय महाव्रत स्वीकार करके हे भगवन् ! मैं पूर्वकृत मृषावाद रूप पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, आलोचना करता हूँ, आत्मनिन्द करता हूँ, गहाँ करता हूँ, जो अपनी आत्मा से मृषावाद का सर्वथा व्युत्सर्ग करता हूँ।

उस द्वीतिय महाव्रत की ये पाँच भावनाएं हैं। उन पाँचों में से पहली भावना इस प्रकार है-चिन्तन करके बोलता है, वह निर्ग्रन्थ है, बिना चिन्तन किये बोलता है, वह निर्ग्रन्थ नहीं। केवली भगवान कहते हैं-बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थ को मिथ्याभाषण का दोष लगता है। अतः चिन्तन करके बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, बिना चिन्तन किये बोलने वाला नहीं।

इसके पश्चात् दूसरी भावना इस प्रकार है-क्रोध का कटुफल जानता है। वह निर्ग्रन्थ है। इसलिए साधु को क्रोधी नहीं होना चाहिए। केवली भगवान कहते हैं-क्रोध आने पर क्रोधी व्यक्ति आवेशवश असत्य वचन का प्रयोग कर देता है। अतः जो साधक क्रोध का अनिष्ट स्वरूप जानता है, वही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, क्रोधी नहीं।

तदनन्तर तृतीय भावना यह है-जो साधक लोभ का दुष्परिणाम जानता है, वह निर्ग्रन्थ है; अतः साधु लोभग्रस्त न हो। केवली भगवान का कथन है कि लोभ प्राप्त व्यक्ति लोभावेशवश असत्य बोल देता है। अतः जो साधक लोभ का अनिष्ट स्वरूप जानता है, वही निर्ग्रन्थ है, लोभाविष्ट नहीं।

इसके बाद चौथी भावना यह है-जो साधक भय का दुष्फल जानता है, वह निर्ग्रन्थ है। अतः साधक को भयभीत नहीं होना चाहिए। केवली भगवान का कहना है-भयप्राप्त भीरु व्यक्ति भयाविष्ट होकर असत्य बोल देता है अतः जो साधक भय का यथार्थ अनिष्ट स्वरूप जानता है, वही निर्ग्रन्थ है, न कि भयभीत।

इसके अनन्तर पाँचवी भावना यह है-जो साधक हास्य के अनिष्ट परिणाम को जानता है, वह निर्ग्रन्थ है। अतएव निर्ग्रन्थ को हंसोड़ नहीं होना चाहिए। केवली भगवान का कथन है-हास्यवश हंसी करने वाला व्यक्ति असत्य भी बोल देता है। इसलिए जो मुनि हास्य का अनिष्ट स्वरूप जानता है, वह निर्ग्रन्थ है, न कि हंसी-मजाक करने वाला।

इस प्रकार इन पंच भावनाओं से विशिष्ट तथा स्वीकृत मृषावाद-विरमणरूप, द्वीतिय सत्यमहाव्रत का काया से सम्यक्स्पर्श करने, पालन करने, गृहीत महाव्रत को पार लगाने, कीर्तन करने एवं अन्त तक अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधक हो जाता है। भगवन्! यह मृषावादविरमणरूप द्वीतिय महाव्रत है।

### सूत्र - ५३८

भगवन्! इसके पश्चात् अब मैं तृतीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ, इसके सन्दर्भ में मैं सब प्रकार से अदत्ता-दान का प्रत्याख्यान करता हूँ। वह इस प्रकार-वह (ग्राह्य पदार्थ) चाहे गाँव में हो, नगर में हो या अरण्य में हो, थोड़ा हो या बहुत, सूक्ष्म हो या स्थूल, सचेतन हो या अचेतन; उसे उसके स्वामी के बिना दिये न तो स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरे से ग्रहण कराऊँगा और न ही अदत्त-ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करूँगा, यावज्जीवन तीन करणों से तथा मन-वचन-काया से यह प्रतिज्ञा करता हूँ। साथ ही मैं पूर्वकृत अदत्तादानरूप पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्मनिन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा से अदत्तादान पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ।

उस तीसरे महाव्रत की ये पाँच भावनाएं हैं-

उसमें प्रथम भावना इस प्रकार है-जो साधक पहले विचार करके परिमित अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, किन्तु बिना विचार किये परिमित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। केवली भगवान कहते हैं-जो बिना विचार किये मितावग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ अदत्त ग्रहण करता है। अतः तदनुरूप चिन्तन करके परिमित अवग्रह की याचना करने वाला साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है, न कि बिना विचार किये मर्यादित अवग्रह की याचना करने वाला।

इसके अनन्तर दूसरी भावना यह है-गुरुजनों की अनुज्ञा लेकर आहार-पानी आदि सेवन करने वाला निर्ग्रन्थ होता है, अनुज्ञा लिये बिना आहार-पानी आदि का उपभोग करने वाला नहीं। केवली भगवान कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ गुरु आदि की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना पान-भोजनादि का उपभोग करता है, वह अदत्तादान का सेवन करता है। इसलिए जो अनुज्ञा प्राप्त करके आहार-पानी आदि का उपभोग करता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है, अनुज्ञा ग्रहण किये बिना आहार-पानी आदि का सेवन करने वाला नहीं।

अब तृतीय भावना इस प्रकार है-निर्ग्रन्थ साधु को क्षेत्र और काल के प्रमाणपूर्वक अवग्रह की याचना करनी

चाहिए। केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ इतने क्षेत्र और इतने काल की मर्यादापूर्वक अवग्रह की अनुज्ञा नहीं करता, वह अदत्त का ग्रहण करता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु क्षेत्र काल की मर्यादा खोल कर अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने वाला होता है, अन्यथा नहीं।

इसके अनन्तर चौथी भावना यह है-निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने के पश्चात् बार-बार अवग्रह अनुज्ञा-ग्रहणशील होना चाहिए। क्योंकि केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर बार-बार अवग्रह की अनुज्ञा नहीं लेता, वह अदत्तादान दोष का भागी होता है। अतः निर्ग्रन्थ को एक बार अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर भी पुनः पुनः अवग्रहानुज्ञा ग्रहणशील होना चाहिए।

इसके पश्चात् पाँचवी भावना यह है-जो साधक साधर्मिकों से भी विचार करके मर्यादित अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे परिमित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। केवली भगवान का कथन है-बिना विचार किये जो साधर्मिकों से परिमित अवग्रह की याचना करता है, उसे साधर्मिकों का अदत्त ग्रहण करने का दोष लगता है। अतः जो साधक साधर्मिकों से भी विचारपूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है, वही निर्ग्रन्थ कहलाता है। बिना विचारे साधर्मिकों से मर्यादित अवग्रहयाचक नहीं।

इस प्रकार पंच भावनाओं से विशिष्ट एवं स्वीकृत अदत्तादान-विरमणरूप तृतीय महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, यावत् अंत तक अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा का सम्यक् आराधक हो जाता है।

भगवन्! यह अदत्तादान-विरमणरूप तृतीय महाव्रत है।

### सूत्र - ५३९

इसके पश्चात् भगवन्! मैं चतुर्थ महाव्रत स्वीकार करता हूँ, समस्त प्रकार के मैथुन-विषय सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ। देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी और तिर्यच-सम्बन्धी मैथुन का स्वयं सेवन नहीं करूँगा, न दूसरे से मैथुन-सेवन कराऊँगा और न ही मैथुनसेवन करने वाले का अनुमोदन करूँगा। शेष समस्त वर्णन अदत्तादान-विरमण महाव्रत में यावत् व्युत्सर्ग करता हूँ तक के पाठ अनुसार समझना।

उस चतुर्थ महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं-उन में पहली भावना यह है-निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की कामजनक कथा न कहे। केवली भगवान कहते हैं-बार-बार स्त्रियों की कथा कहने वाला निर्ग्रन्थ साधु शान्तिरूप चारित्र का और शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है, तथा शान्तिरूप केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु को स्त्रियों की कथा बार-बार नहीं करनी चाहिए।

इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है-निर्ग्रन्थ साधु काम-राग से स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को सामान्य रूप से या विशेषरूप से न देखे। केवली भगवान कहते हैं-स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों का कामराग-पूर्वक सामान्य या विशेष रूप से अवलोकन करने वाला साधु शान्तिरूप चारित्र का नाश तथा शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करता है, तथा शान्तिरूप केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ को स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों का कामरागपूर्वक सामान्य या विशेष रूप से अवलोकन नहीं करना चाहिए।

इसके अनन्तर तीसरी भावना इस प्रकार है कि निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति एवं पूर्व काम क्रीड़ा का स्मरण न करे। केवली भगवान कहते हैं कि स्त्रियों के साथ में की हुई पूर्वरति पूर्वकृत-कामक्रीड़ा का स्मरण करने वाला साधु शान्तिरूप चारित्र का नाश तथा शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा शान्तिरूप धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति एवं कामक्रीड़ा का स्मरण न करे।

चौथी भावना है-निर्ग्रन्थ अतिमात्रा में आहार-पानी का सेवन न करे, और न ही सरस स्निग्ध-स्वादिष्ट भोजन का उपभोग करे। केवली भगवान कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ प्रमाण से अधिक आहार-पानी का सेवन करता है तथा स्निग्ध-सरस-स्वादिष्ट भोजन करता है, वह शान्तिरूप चारित्र का नाश करने वाला, यावत् भ्रष्ट हो सकता है। इसलिए अतिमात्रा में आहार-पानी का सेवन या सरस स्निग्ध भोजन नहीं करना चाहिए।

इसके अनन्तर पंचम भावना है-निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन

न करे। केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ स्त्री-पशु-नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन करता है, वह शान्तिरूप चारित्र को नष्ट कर देता है, यावत् भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ को स्त्री-पशु-नपुंसक संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार इन पंच भावनाओं से विशिष्ट एवं स्वीकृत मैथुन-विरमण रूप चतुर्थ महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने यावत् भगवदाज्ञा के अनुरूप सम्यक् आराधक हो जाता है। भगवन्! यह मैथुन-विरमण रूप चतुर्थ महाव्रत है।

### सूत्र - ५४०

इसके पश्चात् हे भगवन्! मैं पाँचवे महाव्रत को स्वीकार करता हूँ। पंचम महाव्रत के संदर्भ में मैं सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करता हूँ। आज से मैं थोड़ा या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, न दूसरों से ग्रहण कराऊँगा, और न परिग्रहण करने वालों का अनुमोदन करूँगा। यावत् परिग्रह का व्युत्सर्ग करता हूँ, तक का सारा वर्णन पूर्ववत् समझना।

उस पंचम महाव्रत की पाँच भावनाएं हैं-उनमें से प्रथम भावना यह है-श्रोत से यह जीव मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्दों को सूनता है, परन्तु वह उसमें आसक्त न हो, रागभाव न करे, गृद्ध न हो, मोहित न हो, अत्यन्त आसक्ति न करे। केवली भगवान कहते हैं-जो साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में आसक्त होता है, रागभाव रखता है, यावत् अत्यधिक आसक्त हो जाता है, वह शान्तिरूप चारित्र का नाश करता है, शान्ति को भंग करता है, शान्तिरूप केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

कर्ण प्रदेशमें आए हुए शब्द-श्रवण न करना शक्य नहीं है, किन्तु उनके सूनने पर उनमें जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, भिक्षु उसका परित्याग करे। अतः श्रोत से जीव प्रिय और अप्रिय सभी प्रकार के शब्दों को सूनकर उनमें आसक्त, आरक्त, गृद्ध, मोहित, मूर्च्छित एवं अत्यासक्त न हो और न राग-द्वेष द्वारा अपने आत्मभाव नष्ट न करे।

इसके अनन्तर द्वीतिय भावना है-चक्षु से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के रूपों को देखता है, किन्तु साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में न आसक्त हो, न आरक्त हो, यावत् आत्मभाव को नष्ट करे। केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों को देखकर आसक्त, यावत् अपने आत्मभाव को खो बैठता है, वह शान्तिरूप चारित्र को विनष्ट करता है, यावत् भ्रष्ट हो जाता है। नेत्रों के विषय में बने हुए रूप को न देखना तो शक्य नहीं है, वे दिख ही जाते हैं; किन्तु उनके देखने पर जो राग-द्वेष उत्पन्न होता है, भिक्षु उनका परित्याग करे। अतः नेत्रों से जीव मनोज्ञ रूपों को देखता है, किन्तु निर्ग्रन्थ भिक्षु उनमें आसक्त यावत् अपने आत्मभाव का विघात न करे।

इसके बाद तीसरी भावना है-नासिका से जीव प्रिय और अप्रिय गन्धों को सूँघता है, किन्तु भिक्षु मनोज्ञ या अमनोज्ञ गंध पाकर आसक्त न हो, न अनुरक्त हो यावत् अपने आत्मभाव का विघात न करे। केवली भगवान कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ या अमनोज्ञ गंध पाकर आसक्त, यावत् अपने आत्मभाव को खो बैठता है, वह शान्तिरूप चारित्र को नष्ट कर डालता है, यावत् भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि नासिका-प्रदेश के सान्निध्य में आए हुए गन्ध के परमाणु पुद्गल सूँघे न जाएं, किन्तु उनको सूँघने पर उनमें जो राग-द्वेष समुत्पन्न होता है, भिक्षु उनका परित्याग करे। अतः नासिका से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के गन्धों को सूँघता है, किन्तु प्रबुद्ध भिक्षु को उन पर आसक्त, यावत् अपने आत्मभाव का विनाश नहीं करना चाहिए।

इसके अनन्तर चौथी भावना यह है-जिह्वा से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों का आस्वादन करता है, किन्तु भिक्षु को चाहिए कि वह मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में न आसक्त हो, न रागभावादिष्ट हो, यावत् अपने आत्मभाव का घात करे। केवली भगवान का कथन है कि जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में आसक्त, यावत् अपना आत्मभाव खो बैठता है, वह शान्ति नष्ट कर देता है, यावत् भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा तो हो नहीं सकता कि रस जिह्वाप्रदेश में आए और वह उसको चखे नहीं; किन्तु उन रसों के प्रति जो राग-द्वेष उत्पन्न होता है, भिक्षु उसका परित्याग करे। अतः जिह्वा से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के रसों का आस्वादन करता है, किन्तु भिक्षु को उनमें आसक्त, यावत् आत्मभाव

का विघात नहीं करना चाहिए ।

पंचम भावना यों है-स्पर्शनेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों का संवेदन करता है, किन्तु भिक्षु उन मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों में न आसक्त हो, न आरक्त हो, न गृह्य हो, न मोहित-मूर्च्छित और अत्यासक्त हो, और न ही इष्टानिष्ट स्पर्शों में राग-द्वेष करके अपने आत्मभाव का नाश करे । केवली भगवान् कहते हैं-जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर आसक्त, यावत् आत्मभाव का विघात कर बैठता है, वह शान्ति को नष्ट कर डालता है, शान्ति भंग करता है, तथा स्वयं केवलीप्ररूपित शान्तिमय धर्म से भ्रष्ट हो जाता है ।

स्पर्शनेन्द्रिय-विषय प्रदेश में आए हुए स्पर्श का संवेदन न करना किसी तरह संभव नहीं है, अतः भिक्षु उन मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर उत्पन्न होने वाले राग या द्वेष का त्याग करे, यही अभीष्ट है । अतः स्पर्शनेन्द्रिय से जीव प्रिय-अप्रिय अनेक स्पर्शों का संवेदन करता है; किन्तु भिक्षु को उन पर आसक्त, यावत् अपने आत्मभाव का विघात नहीं करना चाहिए ।

इस प्रकार पंच भावनाओं से विशिष्ट तथा साधक द्वारा स्वीकृत परिग्रह-विरमण रूप पंचम महाव्रत का काया से सम्यक् स्पर्श करने, पालन करने, स्वीकृत महाव्रत को पार लगाने, कीर्तन करने तथा अन्त तक उसमें अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधक हो जाता है । भगवन् ! यह है-परिग्रह-विरमण रूप पंचम महाव्रत ।

इन (पूर्वोक्त) पाँच महाव्रतों और उनकी पच्चीस भावनाओं से सम्पन्न अनगार यथाश्रुत, यथाकल्प और यथामार्ग, इनका काया से सम्यक् प्रकार से स्पर्श कर, पालन कर, इन्हें पार लगाकर, इनके महत्त्व का कीर्तन करके भगवान् की आज्ञा के अनुसार इनका आराधक बन जाता है । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

## चूलिका-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## चूलिका-४

## अध्ययन-१६ - विमुक्ति

## सूत्र - ५४१

संसार के समस्त प्राणी जिन शरीर आदि में आत्माएं आवास प्राप्त करती हैं, वे सब स्थान अनित्य हैं। सर्वश्रेष्ठ मौनीन्द्र प्रवचन में कथित यह वचन सूनकर गहराई से पर्यालोचन करे तथा समस्त भयों से मुक्त बना हुआ विवेकी पुरुष आगारिक बंधनों का व्युत्सर्ग कर दे, एवं आरम्भ और परिग्रह का त्याग कर दे।

## सूत्र - ५४२

उस तथाभूत अनन्त (एकेन्द्रियादि जीवों) के प्रति सम्यक् यतनावान अनुपसंयमी आगमज्ञ विद्वान एवं आगमानुसार एषणा करने वाले भिक्षु को देखकर मिथ्यादृष्टि असभ्य वचनों के तथा पथ्यर आदि प्रहार से उसी तरह व्यथित कर देते हैं, जिस तरह संग्राम में वीर योद्धा, शत्रु के हाथी को बाणों की वर्षा से व्यथित कर देता है।

## सूत्र - ५४३

असंस्कारी एवं असभ्य जनों द्वारा कथित आक्रोशयुक्त शब्दों तथा-प्रेरित शीतोष्णादि स्पर्शों से पीड़ित ज्ञानवान भिक्षु प्रशान्तचित्त से सहन करे। जिस प्रकार वायु के प्रबल वेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता, वैसे मुनि भी विचलित न हो।

## सूत्र - ५४४

माध्यमस्थभाव का अवलम्बन करता हुआ वह मुनि कुशल-गीतार्थ मुनियों के साथ रहे। त्रस एवं स्थावर सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय लगता है। अतः उन्हें दुःखी देखकर, किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथ्वी की भाँति सब प्रकार के परीषहोपसर्गों को सहन करने वाला महामुनि त्रिजगत्-स्वभाववेत्ता होता है। इसी कारण उसे सुश्रमण कहा गया है।

## सूत्र - ५४५

अनुत्तर श्रमणधर्मपद में प्रवृत्ति करने वाला जो विद्वान्-कालज्ञ एवं विनीत मुनि होता है, उस तृष्णारहित, धर्मध्यान में संलग्न समाहित-मुनि के तप, प्रज्ञा और यश अग्निशिखा के तेज की भाँति निरंतर बढ़ते रहते हैं।

## सूत्र - ५४६

षट्काय के त्राता, अनन्त ज्ञानादि से सम्पन्न राग-द्वेष विजेता, जिनेन्द्र भगवान से सभी एकेन्द्रियादि भाव-दिशाओं में रहने वाले जीवों के लिए क्षेम स्थान, कर्म-बन्धन से दूर करने में समर्थ महान गुरु-महाव्रतों का उनके लिए निरूपण किया है। जिस प्रकार तेज तीनों दिशाओं के अन्धकार को नष्ट करके प्रकाश कर देता है, उसी प्रकार महाव्रत रूप तेज भी अन्धकार रूप कर्मसमूह को नष्ट करके प्रकाशक बन जाता है।

## सूत्र - ५४७

भिक्षु कर्म या रागादि निबन्धनजनक गृहपाश से बंधे हुए गृहस्थों के साथ आबद्ध-होकर संयम में विचरण करे तथा स्त्रियों के संग का त्याग करके पूजा-सत्कार आदि लालसा छोड़े। इहलोक तथा परलोक में निःस्पृह होकर रहे। कामभोगों के कटुविपाक का देखने वाला पण्डित मुनि मनोज्ञ-शब्दादि कामगुणों को स्वीकार न करे।

## सूत्र - ५४८

तथा सर्वसंगविमुक्त, परिज्ञा आचरण करने वाले, धृतिमान-दुःखों को सम्यक् प्रकार से सहन करने में समर्थ, भिक्षु के पूर्वकृत कर्ममल उसी प्रकार विशुद्ध हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि द्वारा चाँदी का मैल अलग हो जाता है।

## सूत्र - ५४९

जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचा-कांचली को त्याग कर उससे मुक्त हो जाता है, वैसे ही जो भिक्षु परिज्ञा-सिद्धान्त में प्रवृत्त रहता है, लोक सम्बन्धी आशंसा से रहित, मैथुनसेवन से उपरत तथा संयम में विचरण करना, वह नरकादि दुःखशय्या या कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

**सूत्र - ५५०**

कहा है-अपार सलिल-प्रवाह वाले समुद्र को भुजाओं से पार करना दुस्तर है, वैसे ही संसाररूपी महासमुद्र को भी पार करना दुस्तर है । अतः इस संसार समुद्र के स्वरूप को जानकर उसका परित्याग कर दे । इस प्रकार पण्डित मुनि कर्मों का अन्त करने वाला कहलाता है ।

**सूत्र - ५५१**

मनुष्यों ने इस संसार के द्वारा जिस रूप से-प्रकृति-स्थिति आदि रूप से कर्म बांधे हैं, उसी प्रकार उन कर्मों का विमोक्ष भी बताया गया है । इस प्रकार जो विज्ञाता मुनि बन्ध और विमोक्ष का स्वरूप यथातथ्य रूप से जानता है, वह मुनि अवश्य ही संसार का या कर्मों का अंत करने वाला कहा गया है ।

**सूत्र - ५५२**

इस लोक, परलोक या दोनों लोकों में जिसका किंचिन्मात्र भी रागादि बन्धन नहीं है, तथा जो साधक निरालम्ब है, एवं जो कहीं भी प्रतिबद्ध नहीं है, वह साधु निश्चय ही संसार में गर्भादि के पर्यटन के प्रपंच से विमुक्त हो जाता है । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

**चूलिका-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण****श्रुतस्कन्ध-२ का हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**(१) आचार-प्रथम अङ्गसूत्र का  
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

नमो नमो निम्मलदंसणस्स  
पूज्यपाद् श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

१

**आचार**  
**आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद**

[अनुवादक एवं संपादक]

**आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी**

[ M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि ]

वेब साईट:- (1) [www.jainelibrary.org](http://www.jainelibrary.org) (2) [deepratnasagar.in](http://deepratnasagar.in)

ईमेल ऐड्रेस:- [jainmunideepratnasagar@gmail.com](mailto:jainmunideepratnasagar@gmail.com) मोबाईल 09825967397